CC0.[redacted] Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❋ श्री वर्धमानायनमः ❋

१५.५

आगम मार्ग प्रकाशक

5202

अरहंत भासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुयणाण महोवहिं सिरसा ।

ग्रन्थकारः—
श्री पं० मक्खनलाल शास्त्री तिलक
जैनदर्शनाचार्य

लागत मूल्य ३) ०० रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमान् धर्मवीर जैनरत्न रायसाहेब
सेठ चांदमल जी पांड्या महोदय
के करकमलों में सादर भेंट
मक्खनलाल शास्त्री

६/८/५३
मोरेना

आचार्य
गो० दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय
मोरेना (म. प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

13

* श्री वर्धमानायनमः *

आगम मार्ग प्रकाशक

प्रमाण नय और सम्यग्दर्शन का विशद स्वरूप

मुनि धर्म तथा श्रावक धर्म का स्वरूप निरूपण

सैद्धान्तिक शंकाओं का सप्रमाण समाधान

तथा

श्री ग्रन्थराज पंचाध्यायी का परिशिष्ट

5202

ग्रन्थकार-

श्री पं० मक्खनलाल शास्त्री तिलक जैनदर्शनाचार्य

विद्वत्तिलक, न्यायालंकार, विद्यावारिधि, धर्मवीर, वादीभ केशरी, न्यायदिवाकर

प्राचार्य-गो० दि० जैन सिद्धान्त महाविद्यालय मोरेना (म. प्र.)

प्रकाशिका-

श्रीमती विदुषी ब्र० चित्राबाई जी

संघ व्यवस्थापिका

परमपूज्य चारित्र चूड़ामणि श्री १०८ आचार्य विमलसागर महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुद्रक—
सन्तोषीलाल बांदिल
जनता प्रिन्टिंग प्रेस
सदर बाजार, मुरेना (मध्यप्रदेश)

श्रुत पंचमी श्री वीर नि० सं० २४९९

प्रथमावृत्ति १,००० प्रतियां

लागत कीमत ३[illegible] रु०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री क्षु. राजुलमति श्राविकाश्रम
१९७, बुधवार पेठ, सोलापूर.

इस ग्रंथ प्रकाशन के खर्च का विवरण

ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या–		४२६ पेज	
फार्म संख्या (१६ पेज का १ फार्म)		२६ $\frac{३}{४}$ फार्म	
कुल कागज–	प्रिंटिंग पेपर	२६ रिम ३८९ शीट	
	आर्ट पेपर	१ रिम ३ दस्ता	
	कवर पेपर (१८×२२)	२५३ शीट	
एक रिम कागज का मूल्य		३८)००	
कागज का खर्च (आर्टपेपर कवर पेपर सहित)			१२०४)०३
छपाई खर्च प्रति फार्म ३८) रु० के हिसाब से (ब्लाक तथा मुख पृष्ठ की छपाई सहित)			१०३२)००
जिल्द बंधाई (बाइंडिंग) सामान सहित			७९६)५४
इस ग्रन्थ का कुल खर्च–			३०३२)५७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
	चित्र-परिचय	
१	आचार्य विमलसागर जी महाराज और उनका जीवन परिचय	ग्रन्थ के प्रारम्भ में
२	आचार्य सुधर्मसागर जी महाराज और उनका स्तवन	
३	आचार्य शान्तिसागर जी महाराज और उनका स्तवन	
४	पं० मक्खनलाल जी शास्त्री तथा उनका जीवन परिचय	
५	धर्मरत्न पं० लालाराम जी शास्त्री और उनके लिए ग्रन्थ समर्पण	
	ग्रन्थकर्ता का नम्र निवेदन (अवश्य पढ़िये)	
	प्रथम अध्याय	
६	प्रमाण का विशद स्वरूप तथा चन्द्रलोक में राकेटों के पहुँचने का खण्डन	११ से ३२ पृष्ठ तक
	द्वितीय अध्याय	
७	नयों का विशद विवेचन	३३ से ४६ तक
८	निश्चय एकान्त का खंडन (सप्रमाण)	४७ से ७९ तक
	तृतीय अध्याय	
९	चतुर्थ गुण स्थान में सम्यक चारित्र का सद्भाव तथा व्यवहार सम्यग्दर्शन में ही अष्टमूल गुणों का पालन अनिवार्य है	८१ से ९७ तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थ अध्याय

१० सम्यग्दर्शन के साथ स्वरूपाचरण चारित्र का सद्भाव चतुर्थ गुण स्थान में अनिवार्य एवं शास्त्र सम्मत है। — ९९ से १३४ तक

पंचम अध्याय

११ चतुर्थ गुण स्थान में ज्ञान चेतना का सद्भाव और स्वरूपाचरण चारित्र का सद्भाव अविनभावी (सहभावी) है तथा सम्यग्दृष्टि के शुद्धोपयोग भी एक देश होता है। — १३५ से १४६ तक

१२ स्वरूपाचरण चारित्र के (चतुर्थ गुण स्थान में) सद्भाव के समर्थन में पूज्य त्यागियों एवं विशिष्ट विद्वानों का अभिमत — १४६ से १५४ तक

छटवां अध्याय

१३ श्रावक धर्म — १५५ से १५८ तक

१४ स्त्रियों द्वारा अभिषेक करने का शास्त्र विधान — १५९ से १७३ तक

१५ पंचामृताभिषेक का विधान — १७४ से १८२ तक

१६ तेरह पंथ बीस पंथ दोनों कल्पित नाम हैं दोनों पक्ष देव-गुरु-शास्त्र के श्रद्धानी और धर्मात्मा हैं। तथा भगवान के चरणों में केशर पुष्प चढ़ाने का विधान है। वर्तमान गृहस्थ भगवान के माता पिता बनने के सर्वथा पात्र नहीं हैं। — १८२ से १९७ तक

१७ यज्ञोपवीत संस्कार आवश्यक है तथा चारों अनुयोग शास्त्र अध्यात्म शास्त्र है — १९८ से २०७ तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सातवां अध्याय

१८ वर्तमान मुनियों का भाव लिंग चतुर्थ काल के मुनियों के समान है उनके ज्ञान की मन्दता उनके उत्कृष्ट चरित्र में वाधक नहीं है। मुनियों द्वारा कष्ट आपत्ति और विघ्न बाधाओं को दूर करने के लिए मन्त्र बताना धर्म विरुद्ध नहीं हैं। किंतु धर्म साधक है मुनि के साथ चलने वाले श्रावकों के बाहनों की समस्या। २०१ से २३० तक

आठवां अध्याय

१९ सर्वज्ञ का ज्ञेय विषय त्रिकालवर्ती पर्यायों को पूर्ण एवं साक्षात् प्रत्यक्ष करता है तथा सिद्धों में चारित्र का सद्भाव है २३१ से २४७ तक

नववां अध्याय

२० पंचाध्यायी का परिशिष्ठ सैद्धान्तिक शंकाओं का सप्रमाण समाधान २४९ से २६४ तक

दशवां अध्याय

२१ ग्रन्थराज पंचाध्यायी के कर्ता पं० राजमल जी सिद्ध नहीं हो सकते हैं किन्तु आचार्य मुकुट अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध हो सकते हैं। इसके समर्थन में अनेक प्रमाण और तुलनात्मक भाव साम्य और शब्द साम्य २६५ से २९१ तक

ग्यारहवां अध्याय

२२ पंचाध्यायी की पं० फूलचन्दजी शास्त्री द्वारा बनाई गई हिन्दी टीका में मूल २९३ से ३१८ तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	ग्रन्थ का परिवर्तन तथा वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था कर्म सिद्धांत और अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजन के विरोध का सप्रमाण खण्डन	
२३	पद्मावती क्षेत्रपाल आदि शासन देव सम्यग्दृष्टि होते हैं इसका सप्रमाण समर्थन	३१६ से ३३४ तक

बारहवां अध्याय

२४	स्याद्वाद (कथञ्चित बाद) व्यावहारिक कार्यों में नहीं लग सकता। है इसका स्पष्टीकरण तथा सभी मिथ्या मतों का समूह ही अनेकान्त धर्म है इसका खण्डन	३३५ से ३५४ तक
२५	छात्रों के धार्मिक संस्कार एवं उनमें दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न करने वाली वीर प्रार्थना	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोरेना महाविद्यालय के स्नातक बनने के पश्चात् आचार्य पद धारण कर महाविद्यालय का महान गौरव बढ़ाने वाले तथा अनेक मुनि, आर्यिका, क्षुल्लक, क्षुल्लिका बना कर धर्म एवं समाज का महान् कल्याण करने वाले, महान् विद्वान एवं तपस्वी साधु

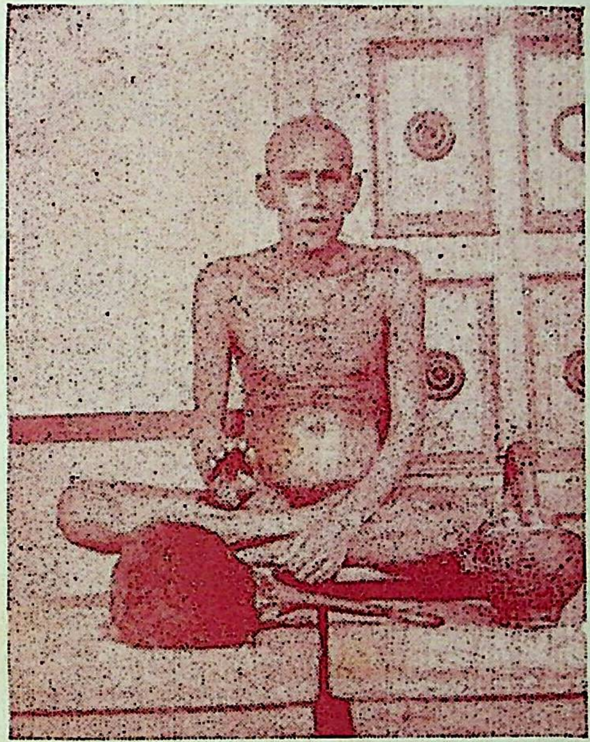

परमपूज्य चारित्रचूड़ामणि श्री १०८

आचार्य विमलसागर महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री वीतरागायनमः

श्रीमत्परमपूज्य चारित्र चूड़ामणि

श्री १०८ आचार्य प्रवर श्री बिमलसागरजी महाराज

का

संक्षिप्त जीवन परिचय

लेखिका—
श्रीमती विदुषी रत्न पूज्य आर्यिका
श्री १०५ विजयमती माताजी
न्याय तीर्थ, शस्त्री बी० ए० (आचार्य संघस्थ)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार असार है, क्षणभंगुर है, परिवर्तनशील है और है सतत सुखाभास का अभिनय। इसमें बिरले ही मनुष्य आध्यात्म्य खोजी होते हैं। महात्माओं का जीवन निराला होता है। उनकी दृष्टि संसार के किंपाकफल स्वभाव से ऊपर उठ जाती है और खोज करती है आत्मा को परमात्मा बना लेने के उपायों की ससार शरीर भोगों में उन्हें रस नहीं मिलता, इनमें वे लुभाते नहीं शरीर पुष्टि के साधनों को हेय समझते हैं। त्याग और वैराग्य ही उनका अवलम्बन होता है। ऐसे ही महात्माओं में हैं हमारे चरित्रनायक श्री १०८ आचार्य प्रवर बिमलासागरजी गुरुदेव।

वि० सम्वत् १९७३ आश्विन वदी ७मी के दिन आपने श्री बिहारीलालजी की सुयोग्य धर्म पत्नी श्री सौ० कटोरीबाईजी की अंक (गोदी) को अलंकृत किया (जन्म लिया) सभी नगरी निहाल होगई। होनहार बिरवान के होत चीकने पात की कहावत आपके शैशव जीवन में पूर्णतः चरितार्थ होती थी। आपका नाम नेमीचन्द रक्खा जो वास्तव में आगे चलकर नेमि साक्षात् धर्म की धुरी सिद्ध हुआ। विधि का विधान बड़ा विचित्र होता है। सौ० कटोरीबाई हर्ष से फूली न समाई किन्तु वह इस आनन्द की गहरी अमराई में अधिक समय न विता सकी। छः माह के वालक को पालने में भूलता छोड़कर दिवंगत (स्वर्गवासी) हो गई।

"ललना के पांव पलना में दीखते हैं" कहावत को चरितार्थ करते हुए आप दौज के चन्द्रमा की भांति वढ़ने लगे। दिन, माह और वर्ष बीतने लगे और सुकुमार बाल मातृ बियोग से क्षुभित हो बढ़ने लगा अपनी बूआ श्री दुर्गाबाई की गोद में आपकी आयु के साथ-साथ ज्ञान, गुण, वैराग्य भाव की वृद्धि को प्राप्त होने लगे। आपकी बचपन की शिक्षा कोसमा गांव में ही हुई। पुनः लगभग १० वर्ष की अवस्था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में श्री १०८ आचार्य शांतिसागरजी आदि की शुभ प्रेरणा—

छात्रावस्था में नेमीचन्द जी मोरेना महाविद्यालय में अध्ययन करने आये और प्रवेशिका से लेकर शास्त्री कक्षा तक अनवरत रूप से अध्ययन किया। आपके साथ अध्ययन करने वाले श्री पं० लालवहादुरजी शास्त्री, श्री पं० कुन्जीलालजी शास्त्री, श्री पं० श्यामसुन्दरलालजी शास्त्री, श्री पं० भागचन्दजी शास्त्री आदि सहाध्यायी रहे।

महाविद्यालय के प्राचार्य श्रीमान् पं० मक्खनलालजी शास्त्री के सान्निध्य में आपने अध्ययन के साथ ही साथ निर्मल संस्कार भी प्राप्त किये और सिद्धान्त एवं न्याय ग्रन्थों का शास्त्री तक उच्च कोटिका अनुभव पूर्ण अध्ययन किया।

आपका अंतःकरण तो त्यागी वैरागी जनों की खोज में लगा था। कुछ समय पीछे श्री १०८ आ० प्रवर शांतिसागरजी महराज का संघ फिरोजावाद पधारा जिसमें मुनि श्री वीरसागर जी मुनि श्री १०८ सुधर्मसागरजी आदि थे। आपने इन मुनि रत्नों की पवित्र प्रेरणा से श्री १०८ आचार्य शान्तिसागरजी के समीप अष्टमूल गुण धारण किये तथा जनेऊ धारण कर पक्के श्रावक बन गये। कुछ समय बाद ही श्री १०८ आचार्य कल्प चन्द्रसागर जी के सानिध्य में शूद्र जल का त्याग किया। अब आप संघ में ही रहकर अवागढ़ में श्री १०५ आर्यिका धर्ममतीजी को अध्ययन कराने लगे।

आर्थिक समस्या से बाध्य होकर आप सकरौली (एटा) में आकर ३ वर्ष तक अध्यापक रहे। तदनन्तर ३ वर्ष पर्यन्त पुरवालियान में ३ वर्ष चौमू (जयपुर) में १।। वर्ष (नावां) कुचा मनरोड में अध्यापक रहें। यहीं पर श्री १०८ वीरसागरजी के दर्शन हुए आपने दूसरी प्रतिमा के व्रत धारण किये महावीर जयन्ती के दिन। पुनः कुचामन में ही इन्हीं मुनि श्री से बैशाख सुदी ३ सं० २००६ में सप्तम प्रतिमा के व्रत धारण कर बाल ब्रह्मचारी हुए। अनन्तर श्री १०८ आचार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री महावीर कीर्तिजी गुरुदेव से प्रथम आषाढ़ वदी ५मी को सं० २००७ बडवानीसिद्ध क्षेत्र में क्षुल्लक दीक्षा धारण कर उत्कृष्ट श्रावक बन गये आपका नाम वृषभ सागरजी रक्खा। पुनः धर्मपुरी धर्म क्षेत्र में श्री आचार्य प्रवर महावीर कीर्तिजी से ही माघ सुदी १३ सं० २००७ में ऐलक दीक्षा धारण कर सुधर्मसागर जी कहलाये। आपकी सिंह वृत्ति जाग्रत थी उत्तरोत्तर वैराग्य सिन्धु उमड़ रहा था। अस्तु लंगोटी परिग्रह भी आपके लिए सिर दर्द प्रतीत होता था। इन्दौर एवं भोपाल के चातुर्मास के बाद आप श्री सोनागिरजी सिद्ध क्षेत्र में पधारे वहीं पर श्री १०८ आ० महावीर कीर्तिजी के पास अपने अंतिम मुनि दीक्षा फाल्गुन शुक्ला १३ सं० २००९ में धारण की। आपका मंगलमय नाम करण गुरुदेव ने श्री बिमलसागरजी रक्खा।

आपने प्रथम चातुर्मास गुनौर में अकेले ही किया। यहां पर हिंसा का बहुत जोर था। भैंसों की बलि चढ़ाई जाती थी। दयालु गुरु का हृदय करुणा से ओत-प्रोत हो गया। भला जो एकेन्द्रिय घास-पात का भी बध सहन न कर सके वह भैंसों की बलि किस प्रकार देख सकता है। आपने अपने त्याग का पूर्ण प्रयोग कर कह दिया जब तक बलि बन्द नहीं होगी हम अन्न जल ग्रहण नहीं कर सकते। हिंसकों के हृदय कांप गये उनकी क्रूरता दया के दरिया में बहने लगी। फलतः सभी लोगों ने बलि का त्याग किया और गुरुदेव के चरणों में अहिंसाणुव्रत धारण किया। आचार्य श्री के निर्मल परिणामों की साधना का यह ज्वलन्त निदर्शन है। इसके अनन्तर क्रमशः ईशरी, पावापुर, मिर्जापुर, इन्दौर, फलटन, पन्ना, टूंडला में चतुर्मास हुए। टूंडला में सन् १९६० में चातुर्मास हुआ। यहां विद्वान जन समुदाय ने आपके शौर्य, धैर्य और पराक्रम को देखकर आपसे आचार्य पद स्वीकार करने की प्रार्थना की। आपने अपने दीक्षा गुरु के आदेशानुसार शुभ मिती मंगसिर वदी २ को शुभ लग्न में न्यायाचार्य पं०माणिकचंद जी कौन्देय, धर्मरत्न श्री पं० लालाराम जी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राम जी शास्त्री एवं विशाल जन समुदाय के समक्ष प्रदत्त आचार्य पद ग्रहण किया इस पुनीत अवसर पर आपने २ क्षुल्लक दीक्षाऐं दीं।

आचार्य श्री ने अब यहां से बिहार कर व्रज भूमि को उज्ज्वल किया। श्री १००८ मथुरा चौरासी सिद्ध भूमि में महती प्रभावना के साथ केशलोंच किया। विहार कर कामां (भरतपुर स्टेट) में श्री पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा में पधारे। यहां पर आपने श्री ब्र० शांति कुमार को क्षुल्लक दीक्षा प्रदान की। और शांतिकुमार से आदि सागर बना दिया। कुम्हेर, डीग आदि स्थानों में मुनि विहार का यह वर्षों बाद विहार हुआ था जिससे लोगों में विशेष जाग्रति हुई। इस प्रकार बड़ी प्रभावना और जैन धर्म के अकाट्य सिद्धांतों के प्रचार के साथ-साथ आपका मंगल विहार होता रहा। इस अर्से में अनेकों चमत्कार हुए। आपने आचार्य पद धारण करने के पूर्व ही मिर्जापुर चातुर्मास में क्षुल्लक दीक्षा देकर जिनसागर नाम रक्खा। गढ़ गिरनार की वन्दना कर बड़वानी में ब्र० सोनाबाईजी को क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान की और चन्द्रमती जी नामकरण किया। पुनः इन्दोर से मांगीतूंगीजी में क्षुल्लिका चन्द्रमती जी को आर्यिका दीक्षा दी सिद्धमती नाम धरा। यहाँ से श्री वाहुवल स्वामी (श्रवण बेल गोल) की यात्रा की। यहां से कोल्हापुर आदि में विहार किया। यहां से श्री चित्राबाई जी को संध संचालक का भार देकर संघ सम्मिलित किया। अब आपका चातुर्मास फल्टन में हुआ। यहा पर श्री बालप्पा को सप्तम प्रतिमा के व्रत धारण कराये। श्री सम्मेद शिखर में ३ क्षुल्लक दीक्षायें दीं। पन्ना चातुर्मास कर सोनागिर जी पधारे उस समय २ मुनि दीक्षायें दीं। १ क्षुल्लक दीक्षा। मेरठ चातुर्मास में १ क्षुल्लक दीक्षा दी। यहां १ मुनि श्री सूवर्णसागर जी की समाधि सिद्ध कराई। यहां बाहुवली क्षुल्लक को मुनि दीक्षा दी नामकरण पार्श्वसागर जी रखा। पुनः बड़ौत में क्षु० सिद्धसागर को मुनि अरहसागर जी बनाया। इसके पूर्व कम्पिला जी क्षेत्र में ब्र० नन्हींबाई, ब्र० मैंनाबाई जी को क्षुल्लिका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीक्षा दी। क्रमशः क्षु० वीरमती जी क्षु० बिमलमती जी नाम घोषित किया था। मेरठ चातुर्मास में श्री ब्र० ॐप्रकाश जी को क्षु० नेमिसागर जी बनाया। दुवारा सोनागिर चतुर्मास में क्षु० जिनसागर क्षु० नेमिसागर जी को मुनि दीक्षा दी।

मेरठ चातुर्मास कर आप आगरा पधारे। यहां पर ब्र० शरवती देवी को चैत्र वदी ३ सं० २०१८ में आर्यिका दीक्षा प्रदान कर विजयमती बनाया विहार कर ईशरी में चातुर्मास किया। मार्ग में पुरलिया गांव में आप पर घोर उपसर्ग हुआ किन्तु आप तो निर्भीक दृढ़ प्रतिज्ञ थे श्री सम्मेद शिखर की यात्रा कर ईशरी आडटे। यहां पर भी ब्र० चिरंजीलाल जी ब्र० जिनेन्द्रसागर जी को क्षुल्लक दीक्षायें दी। जो क्रमशः निर्वाणसागर और जिनेन्द्रसागर नाम से प्रसिद्ध हुए। ब्र०उग्रसेन को क्षु० आदिसागर बनाया। चातुर्मास समाप्त कर श्री सम्मेदाचल पधारे यहां श्री क्षु० नेमिसागर क्षु० आदिसागर जी को निर्ग्रन्थ दीक्षा से अलंकृत कर मुनि श्री १०८ संभवसागर जी मुनि श्री १०८ सन्मति सागर जी (जो आज श्री १०८ आचार्य श्री महावीर कीर्ति जी के पट्ट शिष्य हैं) नाम से प्रसिद्ध किया। यहां से बाराबंकी चातुर्मास किया जहां ब्र० मोहनलाल को ऐलक दीक्षा प्रदान दी। पुनः बडवानी (बाबन गजा) में आपने दीक्षा गुरु श्री १०८ आ० महावीर कीर्ति जी के साथ चातुर्मास किया। यहां १ एलक महाराज को मुनि दीक्षा देकर श्री १०८ मुनि वीरसागर जी बनाया। ब्र० चन्द्रभान को क्षु० श्रेयाँससागर बनाया। इसके पूर्व मरसलगंज में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराकर इस अतिशय क्षेत्र को चमत्कृत बनाया। बडवानी से विहार कर मार्ग में मुक्तागिरी में ३ आर्यिका दीक्षायें दीं। तथा २ क्षुल्लक दीक्षा प्रदान कीं। बम्बई होते हुए कोल्हापुर चातुर्मास किया वहां २ क्षुल्लक दीक्षायें दीं। शोलापुर में २ क्षुल्लक और १ मुनि दीक्षा दी। गिरनारि में १ मुनि ३ क्षुल्लिका, ईडर में १ क्षुल्लक दीक्षा, सुजानगढ़ में युगल दम्पति को क्रमशः क्षुल्लक क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान की। देहली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में २ क्षुल्लिका १ एलक दीक्षा, सम्मेदगिर पर १ मुनि दीक्षा, राजगिर में १ मुनि दीक्षा, १ आर्यिका १ क्षुल्लिका दीक्षा पुनः यहीं ४ मुनि दीक्षा ५ आर्यिका दीक्षायें हुईं। पद्मपुरी में १ क्षुल्लक वृषभसागर मथुरा में क्षु० जम्बू स्वामी कोडा जैनावाद में १ क्षुल्लक दीक्षा हुई। इस प्रकार अनेकों दीक्षायें देकर आपने इन भव्यात्माओं को मोक्षमार्ग पर आरूढ़ किया। सभी को ज्ञान ध्यान तप में लीन रखते हैं। आपके कोमल स्वभाव और करुणार्द्र हृदय के अन्दर शिष्यों का संग्रह, रक्षण और संवर्द्धन करने की अपूर्व क्षमता है। "शिष्यानुग्रह कुशलाः" विशेषण आचार्य का प्रधान गुण है जो आपके अन्दर मूर्तिमान विद्यमान है। आपकी वाणी में मिश्री सा माधुर्य दृष्टि में आकर्षक शक्ति और व्यवहार में अनोखा जादू भरा है। यही कारण है कि आप भक्त मण्डली से घिरे ही रहते हैं।

आपका धैर्य आत्मबल बड़ा ही अपूर्व है। अनेकों उपसर्ग और परीषहों को हंसते हंसते पार कर दिया। और पावापुर क्षेत्र में ब्राह्मण महावीरप्रसाद को सप्तम प्रतिमा के व्रत दिये। वहाँ से विहार कर जाते समय सम्मेद शिखर की यात्रा कर डालटेन गंज से मिरजापुर जाते समय चैत्र वदी २ को एक अद्भुत घटना घटी। आप निसंकोच शौच के लिए गये वहां पर भयंकर शेर बैठा हुआ था आप उसी के अति निकट शौच को बैठ गये उठने पर लक्ष्य गया तो शेर देखा सामने। आपने आत्मबल के साथ णमोकार मन्त्र राज का ध्यान किया। मन ही मन सकल सन्यास उपसर्ग निवारण पर्यन्त के लिए ले लिया। आप तो ध्यानस्थ हो गये आपके साथ एक श्रावक जो बेचारा भय से कप-कपाता आपके पीछे छुपा था उसने देखा कि वह सिंहराज मुनिराज के समक्ष आया और मस्तक झुकाकर छलांग मार कर चला गया। उसके द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उपसर्ग टला जान, गुरुदेव ने आंखें खोलीं और मुस्करा कर चल दिये।

कुछ समय के अनन्तर चिती (अजगर) सामने से मुंह फाड़े

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आडटा किन्तु आप तनिक भी विचलित नहीं हुए। दूसरे साथी भक्त घवड़ाये उन्हें आपने आश्वासन दिया और आत्म साधना की प्रखर ज्योति से अभिभूत कर उसे भगा दिया।

आपकी गोद में सर्प तो कई बार घंटों क्रीड़ा करते थे। एक बार मिर्जापुर से अयोध्या के लिए विहार कर रहे थे कि भयंकर विषधर सर्प आया और ध्यानस्थ मुनिराज की गोद में खेलने लगा। वह भुजंग घन्टों क्रीड़ा करता रहा मानों दुलारा सुपुत्र अपने पिता की गोद में अठखेलिया करता हो। देखने वाले सभी हैरान थे क्या करें। यथेच्छ खेल कूद कर वह सर्प मुनि श्री की प्रदिक्षणा दे नमस्कार कर अपने स्थान को चला गया। दर्शक जन दंग रह गये।

आपका बौद्धिक और मांत्रिक चमत्कार भी कम नहीं है। बंधा गांव में तथा भूड़ापानी गांव (चांइबासा के पास) में सूखे निर्जल कुओं को बात की बात में जल से लवालव भर दिया। कितनी जगह खारे जल को मधुर सुपेय बना दिया। वात्सल्य मूर्ति गुरुवर दु:खियों के दु:ख दूर करने में सतत प्रयत्नशील रहते हैं। परोपकार आपका विशेष महत्वपूर्ण है। आपने अब तक लाखों व्यक्तियों को शूद्र जल का त्याग कराया। अनेकों मांसाहारियों को शाकाहारी ननाया। कई सौ श्रावकों को त्यागी बनाया। ब्रती ब्रह्मचारी क्षुल्लक क्षुल्लिका एलक मुनि आर्यिका तो बनाया ही है अब भी निरन्तर साधु सन्तों को उत्पन्न करने में लगे हुए हैं। आपके स्वर्गस्थ गुरुदेव श्री १०८ आचार्य महावीर कीर्ति जी कहा करते थे कम से कम सवा लाख मुनि महाराज और होना चाहिये। मुझे ऐसा लगता है सुयोग्य पुत्र सुयोग्य सन्तान के समान आप उनकी भावना को पूरा करके रहेंगे। जो हो आपको त्याग और संयम में प्रगाढ़ रुचि और प्रीति है आप हर व्यक्ति को स्त्री हो या पुरुष संयमी के रूप में ही देखना चाहते हैं। प्राणीमात्र के आत्म कल्याण की भावना आपके हृदय में कूट कूट कर भरी है। परम वत्सल श्रद्धेय पूज्य अभिनन्दनीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुरुदेव शतायु रहकर प्राणियों का आत्म कल्याण कर मेरी समाधि सिद्ध करायें यह मेरी वीतराग प्रभु और महापवित्र सर्वोत्तम सम्मेद शिखर महाराज के चरणों में प्रार्थना है। अनन्त नमोस्तु के साथ यह संक्षिप्त परिचय समाप्त करती हूँ। ॐ शान्ति ३।

आचार्य श्री और चातुर्मास

स्थान	सन	सम्वत	दीक्षा पद
बड़वानी	१९५०	२००७	क्षुल्लक
इन्दौर	१९५१	२००८	ऐलक
भोपाल	१९५२	२००९	ऐलक
गुनौर	१९५३	२०१०	मुनि
ईशरी	१९५४	२०११	,,
पावापुर	१९५५	२०१२	,,
मिर्जापुर	१९५६	२०१३	,,
इन्दौर	१९५७	२०१४	,,
फल्टन	१९५८	२०१५	,,
पन्ना	१९५९	२०१६	,,
टूंडला	१९६०	२०१७	आचार्य
मेरठ	१९६१	२०१८	,,
ईशरी	१९६२	२०१९	,,
बारावंकी	१९६३	२०२०	,,
बडवानी	१९६४	२०२१	,,
कोल्हापुर	१९६५	२०२२	,,
शोलापुर	१९६६	२०२३	,,
ईडर	१९६७	२०२४	,,
सुजानगढ़	१९६८	२०२५	,,
पहाड़ीधीरज देहली	१९६९	१०२६	,,
सम्मेद शिखर	१९७०	२०२७	,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजगृही	१६७१	२०२८	"
सम्मेद शिखर	१६७२	२०२६	"

आपने विभिन्न स्थानों पर चातुर्मास स्थापित कर जैन धर्म की महती प्रभावना की है। आपका निमित्त ज्ञान भी अति निर्मल है। मनुष्य के चहरे को देखकर ही उसके अन्तःकरण की भावना का अनुमान कर लेते हैं। प्रायः सत्य ही निकलता है। ऐसे विद्वान तपस्वी रत्न आचार्य श्री चिरायु रहें।

आचार्य महोदय अत्यन्त सरल और अत्यन्त शान्त परिणामी महान् तपस्वी महान् विद्वान् साधु रत्न हैं। उनके द्वारा समाज और राष्ट्र का बहुत कल्याण हो रहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमती ब्र० चित्राबाईजी रामचंद्र दिगे

कोल्हापुर का

संक्षिप्त जीवन परिचय

श्रीमती ब्र० चित्राबाई जी कोल्हापुर की रहने वाली हैं और वर्तमान में आप परम पूज्य श्री १०८ आचार्य बिमलसागर महाराज के संघ की व्यवस्थापिका हैं। आप धर्म परायण हैं और आपकी गुरु भक्ति प्रशंसनीय है।

आपका जन्म स्थान हुपरी (दक्षिण) है, आपके पिता का नाम पारसा महोदय तथा माता का नाम श्रीमती कृष्णाबाई गड़करी था। आपकी छोटेपन से ही धर्म में विशेष लगन थी, आपकी शादी कोल्हापुर निवासी आणप्पा गड़करी श्रीमती के पुत्र श्री रामचन्द्र दिगे के साथ हुई थी। आप केवल एक सन्तान के होने पर ही वैधव्य को प्राप्त होगई, उस समय अपनी सन्तान को पढ़ाना और साधुओं की सेवा करना यही आपका कर्तव्य था। आपने अपने पुत्र को पढ़ाकर रत्नाकर बैंक में सर्विस पर लगा दिया, आपके पुत्र का नाम आदिनाथ (सुकमाल) रामचन्द्र दिगे है। श्री आदिनाथ की पत्नी का नाम सुनन्दा है। आपके पौत्र (श्री आदिनाथ के सुपुत्र पुत्री) का नाम मृत्युंजयकुमार, संजयकुमार पुत्री कुमारी पद्मा और कुमारी संगीता है

श्रीमती ब्र० चित्राबाई जी लगभग १५ वर्ष से परम पूज्य आचार्य बिमलसागर महाराज के संघ का संचालन बड़ी योग्यता और तत्परता से कर रही हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

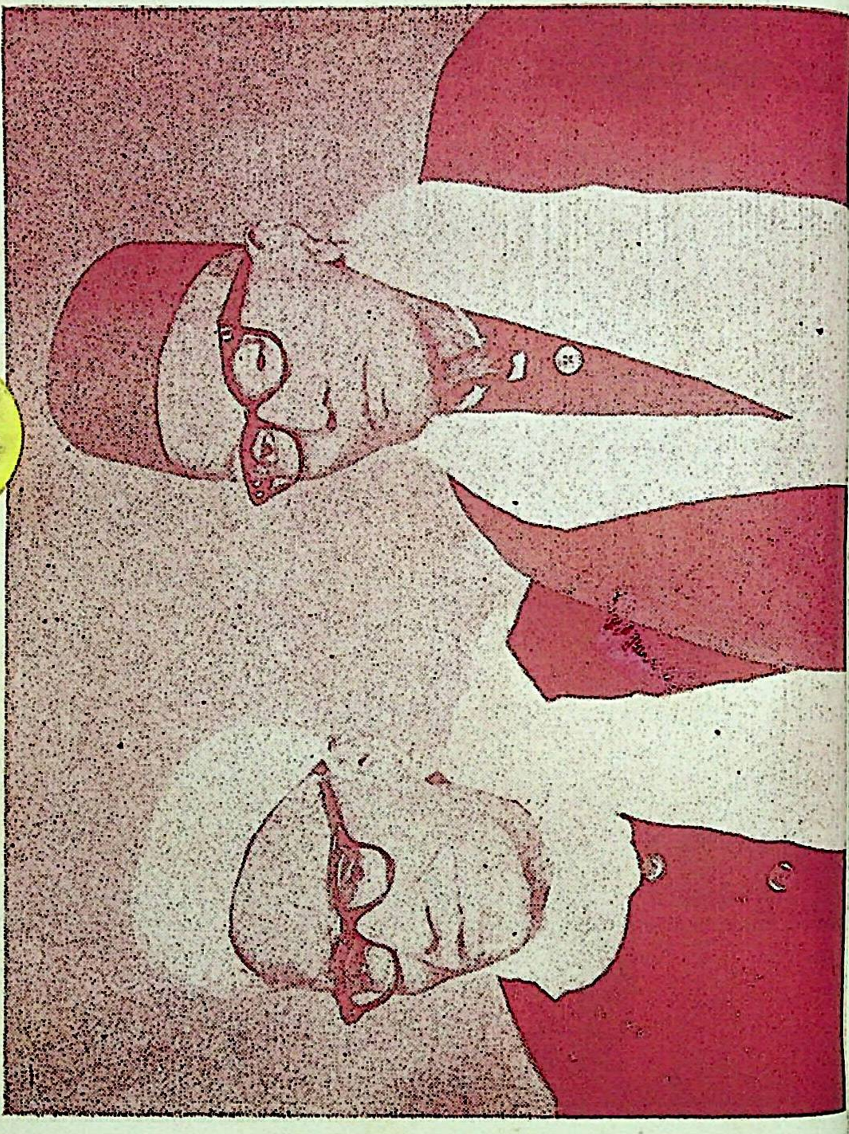

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री तत्वार्थ राजवार्तिकालंकार, ग्रन्थराज पंचाध्यायी, पुरुषार्थ सिद्युपाय इन गम्भीर संस्कृत शास्त्रों के टीकाकार तथा अनेक सैद्धान्तिक पुस्तकों (ट्रैक्टों) के प्रामाणिक लेखक और
अनेक उद्भट विद्वानों को तैयार करने वाले विद्वान
विद्यावारिधि, न्यायालंकार, विद्वत्तिलक, वादीभकेशरी, न्याय दिवाकर, धर्मवीर

श्री पं० मक्खनलाल जी शास्त्री तिलक महोदय प्राचार्य महाविद्यालय मोरेना (म० प्र०)

चावली (आगरा) निवासी तथा वर्तमान में जयपुर रहने वाले वहां के जौहरियों में
प्रामाणिक एवं प्रतिष्ठा प्राप्त जवाहरात के व्यापारी

धर्मपरायण श्रीमान् बाबू श्रीलाल जी तिलक जौहरी, जयपुर (राज०)

(श्री पं० मक्खनलाल जी शास्त्री के सहोदर लघुभ्राता)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ श्री वर्धमानाय नमः ॥

विद्यावारिधि वादीभकेसरी, विद्धत्तिलक, न्यायालंकार न्याय दिवाकर धर्मवीर श्रीमान् पं० मक्खनलालजी शास्त्री का स्वयं उनकी कलम से लिखा हुआ उनका

जीवन परिचय

प्रणम्य वीरं सर्वज्ञं वीतरागं जगद्धितम्
लिखामि जीवनीं स्वस्य प्रेरितोऽहं सधर्मिभिः

जीवन परिचय के पात्र

जीवन परिचय के मुख्य पात्र तो वे संसार एवं वासनाओं से सर्वथा विरक्त बंदनीय मुनिराज हैं जिन्होंने अपना जीवन स्वात्म साधन एवं पर कल्याण में लगा रक्खा है उन्हीं का जीवन परमादर्श एवं अनुकरणीय है। मैंने कोई ऐसा असाधारण सर्वहितकारी कार्य तो नहीं किया है किन्तु अणुव्रत पालते हुए जो कुछ थोड़ी सी धर्म एवं समाज सेवा में अपना योग देता रहा हूं उन्हीं कार्यों का दिग्दर्शन मेरा जीवन परिचय है। वह इस प्रकार है :—

जन्म जाति एवं पारिवारिक नामोल्लेख

आगरा जिला के अन्तर्गत चावली ग्राम में मेरा जन्म हुआ है पदमावती पुरवाल मेरी जाति है और तिलक मेरा गोत्र है। मेरे पूज्य पिता लाला श्री तोतारामजी थे माता का नाम मेवारानी था। दोनों बहुत धर्मात्मा थे व्रत, उपवास पूजन, स्वाध्याय में तत्पर रहते थे किराना (पंसारी) की दुकान थी। पिताजी वैद्य थे वे गांव के रोगियों को देखते थे और बिना मूल्य औषधि देते थे फीस भी नहीं लेते थे। गांव में उनका बहुत आदर और प्रतिष्ठा थी उनके छह पुत्र (सगे हम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ भाई) हुए। सबसे बड़े भाई रामलालजी थे। उन्होंने बहुत आग्रह करने पर भी विवाह नहीं किया। बाल ब्रह्मचारी रहकर धर्म साधन और व्यापार में योग देते रहे। उनसे छोटे भाई मिट्ठनलालजी थे। रुई का व्यापार करते थे उनसे छोटे भ ई धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर श्री पं० लालारामजी शास्त्री थे समाज उनसे सुपरिचित है। उन्होंने संस्कृत के गंभीर ग्रन्थों की सरल टीकाएं बनाई हैं। मूलशास्त्र के विरुद्ध उन्होंने एक भी बात नहीं लिखी है अतः उनकी टीकायें ग्रंथानुरूप पूर्ण प्रमाण मानी जाती हैं उन्होंने करीब (१००) एक सौ ग्रन्थों की टीकायें रचने के साथ भक्ताभर शतद्वयी आदि स्वतंत्र संस्कृत ग्रन्थ भी रचे हैं। भा० दि० जैन महासभा के वे स० महामंत्री भी थे। परम पूज्य आचार्य शान्तिसागर महाराज से उन्होंने दूसरी प्रतिमा के व्रत लिये थे। पीछे सातवी प्रतिमा तक (गृह निरत) के व्रतों का अभ्यस्थ रूप में वे पालन करते थे। मैनपुरी में उनकी सर्राफे की दुकान थी उनके पुत्र पौत्र हैं।

श्री पं० नंदनलालजी शास्त्री (आचार्य सुधर्म सागर महाराज)

श्री धर्मरत्न पं० लालारामजी शास्त्री से छोटे और मुझसे बड़े भाई श्री पं० नन्दनलालजी शास्त्री थे, वे उच्च कोटि के सिद्धांत वेत्ता विद्वान बने, वैद्य भी थे बम्बई में वैद्यक भी करते थे और वहां के सरस्वती भवन की सम्हाल भी करते थे। बम्बई के प्रसिद्ध जौहरी श्री सेठ घासीलालजी पूनमचंदजी से भाई साहब पं० नन्दनलालजी शास्त्री ने कहा कि परमपूज्य आचार्य शांति सागर जी को दक्षिण से उत्तर में बिहार कराना अत्यन्त लाभदायक होगा अतः आप संघ भक्त बनकर समाज शिरोमणि बनो इसके लिये ३–४ लाख रुपये खर्च करने का संकल्प करलो। जौहरी जी ने भाई साहब की आग्रह पूर्ण बात स्वीकार करली तब जौहरी जी और पण्डित नन्दनलालजी दोनों ने दक्षिण जाकर आचार्य महाराज से प्रार्थना की दोनों ने कहा कि महाराज उत्तर प्रान्त में जनेऊ धारण करने की प्रथा भी बहुत कम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रह गई है जल भी अशुद्ध बहुभाग में ग्रहण होने लगा है अतः आपके विहार से सब सुधार होगा। तब महाराज ने कहाकि जौहरी घासीलालजी की भक्ति भी प्रशंसनीय है परन्तु तुम्हारे सरीखा विद्वान संघ में नहीं रहेगा तब तक उत्तर में हम विहार नहीं करेंगे। इतना सुनते ही भाई साहब ने तुरंत सप्तम प्रतिमा महाराज से लेली। उन्होंने अपने पुत्र और हम सब भाइयों का मोह छोड़कर संघ में वे साथ रहे पीछे पं० नन्दनलाल जी शास्त्री मुनि हुए फिर बहुत वर्षों पीछे आचार्य पद भी उन्होंने आचार्य शांति सागर महाराज की आज्ञा से ग्रहण किया। मुनि पद में उनका नाम सुधर्म सागर जी रखा गया। परमपूज्य आचार्य सुधर्म सागर जी ने परमपूज्य मुनिराज कुंथुसागरजी मुनिचन्द्र सागर जी मुनिवीर सागर जी, मुनि नेमि सागर जी आदि सबों को संस्कृत का अध्ययन कराया और सुधर्म ध्यान प्रदीप, सुधर्म श्रावकाचार जिन चतुर्विंशतिका आदि संस्कृत ग्रन्थों की रचना की उन ग्रन्थों की सरल हिन्दी टीका सरस्वती दिवाकर पं० लालारामजी शास्त्री ने की है। आचार्य सुधर्म सागर महाराज ने समाज का बहुत कल्याण किया साथ ही हमारी जाति और हमारे धार्मिक घराने को अत्यन्त महत्वशाली बना दिया है। गृहस्थावस्था के उनके पुत्र पं० जयकुमारजी आयुर्वेदाचार्य और शास्त्री हैं उनके भी कई पुत्र हैं।

मुझसे छोटे भाई श्री चिरन्जीव बाबू श्रीलालजी जौहरी हैं जो बहुत वर्षों से जयपुर में सपरिवार रहते हैं जवाहरात का व्यापार करते हैं वहां के जौहरीयों में उनकी बहुत प्रतिष्ठा और सम्मान हैं। उनके कई पुत्र पौत्र हैं। उनके दो पुत्र जवाहरात का व्यापार करते हैं ३ बाकी के पुत्र बैंक आदि में सर्विस करते हैं। पदमावती पुरवाल जाति में और समाज में हमारा घराना धार्मिक एवं प्रतिष्ठित माना जाता है।

मेरा यह अनुभव है कि जिस घराने में माता पिता एवं कुटुम्बी जनों का आचार विचार खान पान एवं धार्मिक श्रद्धा आदि व्यवहार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उज्जवल है उस घराने में सन्तान परम्परा भी उत्तम बनती है। संसर्गजा दोष गुणा भवन्ति, यह नीति वाक्य यथार्थ है।

मेरा संक्षिप्त परिचय

मैंने अपने जन्म स्थान चावली (आगरा) ग्राम में छठी कक्षा तक स्कूल में शिक्षा पाई है। दि० जैन महाविद्यालय मथुरा तथा सहारनपुर में संस्कृत का अध्ययन किया था मेरा विचार वैद्यक पढ़ने का हुआ था अतः मैं पीलीभीत-बरेली के प्रसिद्ध आयुर्वेद विद्यालय में प्रविष्ट होगया परंतु वहां जिन मंदिर नहीं होने से तीसरे ही दिन चला आया। और बनारस पहुंच गया। यह अच्छा ही हुआ अन्यथा में शास्त्रीय बोध से शून्य ही रह जाता साथ ही मेरा उद्देश्य एवं लक्ष्य ही बदल जाता। बनारस में न्याय स्तम्भ पं० अंबादास जी शास्त्री के पास पढ़कर मैंने नव्य न्याय की मध्यमा परीक्षा संस्कृत क्वींन्स कालेज बनारस से पास की तथा बंगीय संस्कृत एसोसियेशन कलकत्ता की साहित्य मध्यमा पास की, उस समय पूज्य पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी भी उक्त शास्त्री जी से अध्ययन करते थे। मैं न्याय तीर्थ ग्रन्थों का अध्ययन कर रहा था इसी बीच बनारस से मोरेना आकर श्री पूज्य पं० गोपालदासजी वरैया से मैंने अपने सहाध्याइओं के साथ सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन किया।

मेरे पठित ग्रन्थ

सिद्धान्त ग्रन्थों में:—रत्नकरंड, द्रव्य संग्रह तत्वार्थ सूत्र सागार धर्मामृत सर्वार्थ सिद्धि, गोम्मटसार जीवकाण्ड, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, राजवार्तिकालंकार, त्रिलोकसार पंचाध्यायी इन ग्रन्थों में परीक्षा देकर मैंने उत्तीर्णता प्राप्त की है।

दि० जैन न्याय ग्रन्थों में:–प्रमेय रत्न माला आप्त परीक्षा, प्रमेय कमल मार्तंड, अष्ट सहस्त्री, श्लोक वार्तिक इन अत्यन्त गहन गम्भीर ग्रन्थों में परीक्षा देकर उत्तीर्णता मैंने प्राप्त की है। इनके सिवा चरणा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नुयोग के शास्त्र, प्रायश्चित ग्रन्थ, समयसारादि द्रव्यानुयोग शास्त्र और प्रथमानुयोग के शास्त्रों का भी वाचन मैंने किया है। बारामती (दक्षिण) में परम पूज्य आचार्य शांति सागर महाराज एवं उनके संघ में एक माह रह कर महाराज की इच्छा एवं उनकी आज्ञा से धवल सिद्धांत का भी वाचन संघ को सुनाया था। उस समय शोलापुर, कोल्हापुर, फलटड़ आदि के अनेक पुरुष भी सुनने वैठते थे।

मोरेना महाविद्यालय का संचालन

श्री पं० गोपालदास जी वरैया के स्वर्गवास होने के बाद, कुछ वर्ष मोरेना महाविद्यालय का संचालन न्यायाचार्य पं० माणिकचन्दजी पं० बंशोधर जी न्यायालंकार पं० देवकीनन्दन जी करते रहे उक्त तीनों विद्वान जब मुरेना से चले गये और संस्था की आर्थिक दशा वहुत कमजोर हो गई तथा पठन-पाठन व्यवस्था भी अच्छी नहीं रही तब उस समय के अधिष्ठाता श्री पं० धन्नालाल जी काशीवाल तथा मन्त्री श्री पं० खूबचन्द जी शास्त्री ने पत्र व्यवहार द्वारा मुझे मोरेना वुलाने के लिये बार-वार प्रेरित किया, छह माह तक उनका भारी आग्रह रहा कि इस संस्था को आकर सम्हालो अन्यथा यह पण्डित गोपालदास जी का कीर्ति स्तंभ समाप्त होता है। उस समय कलकत्ता में मेरी कपड़े की दुकान अच्छे रूप में चल रही थी, मैं उसे छोड़ना नहीं चाहता था, कलकत्ता के प्रसिद्ध व्यापारी श्री पं० जयदेव जी पं० वल्देवदास जी सेठ चेनसुखदास जी पांड्यया आदि सज्जनों का यह आग्रह था कि कलकत्ता में ही रहो, परन्तु संस्था के मन्त्री तथा अधिष्ठाता महोदय की अत्यधिक प्रेरणा होने से मुझे मोरेना आने के लिये बाध्य होना पड़ा, सन् १९२७ में मैं मोरेना आगया और महाविद्यालय का समस्त कार्यभार (बागडोर) मुझे सौंप दिया गया। तब से आज तक ४४ वर्षों से मोरेना महाविद्यालय का संचालन मैंने किया है, इस समय मेरी आयु करीव ७७-७८ वर्ष की है। मैं अभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रौढ़ावस्था के समान एवं सोत्साह सोल्लास ७ घण्टा कार्य करता हूं। मेरी दिन चर्या इस प्रकार है—

प्रातः ३—३॥ बजे उठ जाता हूँ सामायिक एवं स्त्रोत्र पाठ करता हूँ १ घण्टा उपयोगी लेख लिखता हूं फिर स्नानादि करके मन्दिर में पंचामृताभिषेक एवं पूजन करता हूँ, १॥ घण्टा समय पूजन में लगाता हूँ। भोजन के बाद समाचार पत्र और आई हुई डाँक देखता हूँ। मध्य का सामायक करके ५ घन्टे महाविद्यालय में काम करता हूं। और आवश्यक पत्र एवं आगत शंकाओं का समाधान लिखाता हूं। रात्रि में सामायिक करके ८॥-९ बजे शयन के लिये खाट पर लेट जाता हूँ।

प्रति रविवार मैं छात्रों को धर्मिक मर्यादा, शुद्धि एवं धार्मिक संस्कार वनाने आदि बातें बताता हूं यही मेरी नियमित दिन चर्या है।

इन ४४ वर्षों में मैंने संस्था में क्या किया

उस समय स्कूल कालेज में अंग्रेजी पढ़ने छात्र नहीं जाते थे केवल धर्म सिद्धांत ग्रन्थ और संस्कृत का ही पठन-पाठन होता था और उस समय दक्षिण में संस्कृत संस्थायें नहीं थीं अतः दक्षिण के भी अनेक छात्र मोरेना पढ़ने आते थे, मेरे समय में करीब ५० छात्र छात्रावास में रहते थे। अनेक सिद्धांत के ज्ञाता आगम में दृढ़ श्रद्धा तथा आचार-विचार रखने वाले शास्त्री, न्यायतीर्थ विद्वान् मैंने तैयार किये हैं जो आज समाज में प्रतिष्ठित तथा सम्मानित हैं और समाज को सन्मार्ग बता रहे हैं। उनमें कतिपय उत्तर के प्रमुख विद्वान्—श्री पं० लालबहादुर जी शास्त्री न्यायतीर्थ साहित्याचार्य एम० ए० पी० एच० डी०, श्री पं० कुन्जीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ, न्यायतीर्थ एम० ए०, श्री पं० श्यामसुन्दरलाल जी शास्त्री, श्री पं० भागचन्द जी शास्त्री न्यायतीर्थ काव्यतीर्थ, पं० फूलचन्द जी शास्त्री सिरगन, पं० फूलचन्द जी शास्त्री न्यायतीर्थ, सकरौली आदि हैं। दक्षिण जैन वद्री, मूलब्रद्री, मद्रास, मैसूर, बंगलौर के श्री पं० मल्लि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाथ जी शास्त्री न्यायतीर्थ, श्री पं० जिनचन्द जी शास्त्री न्यायतीर्थ श्री पं० जिनराज जी शास्त्री न्यायतीर्थ, श्री पं० श्रेयांसकुमार जी शास्त्री काव्यतीर्थ, श्री पं० पदमराज जी शास्त्री न्यायतीर्थ, श्री पं० नागराज जी शास्त्री, श्री पं० धर्मचक्रवर्ती जी शास्त्री आदि हैं। और भी अनेक शास्त्री विद्वान् मैंने तैयार किये हैं।

मेरा विशेष सौभाग्य

परम पूज्य आचार्य विमलसागर जी, मुनिराज पार्श्वसागर जी मुनिराज प्रबोधसागर जी, ये शास्त्री एवं न्यायतीर्थ तक मेरे पास छात्रावस्था में पढ़ कर आज लोक पूज्य हैं और स्व-पर हित साधन में लगे हुए हैं। छात्रावस्था में वे सब मेरे पैर पड़ते थे, मेरा बहुत विनय रखते थे आज में रत्नत्रय धारक उन आचार्य और मुनियों पवित्र चरणों में अपना मस्तक रखता हूँ और पढ़ाने के परिश्रम को उत्तम पात्र तैयार होने से सफल मानता हूं तथा अपना सौभाग्य एवं गौरव मानता हूँ पूस्य भट्टारक स्वस्ति श्री लक्ष्मीसेन जी नरसिंहपुरा पट्टाधीश तथा स्वस्ति श्री भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति जी हुमच पदमावती शास्त्री तक मेरे पास पढ़े हैं। इन पूज्य भट्टारकों के महान कार्य दक्षिण समाज के सामने है। इस संस्था में दिये जाने वाले धार्मिक संस्कारों का ही ये उत्तम फल है।

संस्था को आर्थिक सहायता

जब मैं मुरेना आया था तब थोड़ा सा द्रव्य संस्था में रह गया था तब मैंने तीन डेप्युटेशन निकालें। दो बार कलकत्ता और आसाम का और एक बार शोलापुर कोल्हापुर सांगली का। कलकत्ता के प्रसिद्ध फर्मों के श्रीमानों ने सहर्ष चन्दा भरा जो करीब ७००००) हजार हो गया। इसी प्रकार हवाई जहाज से मैं आसाम भी गया वहाँ भी अच्छा चन्दा हुआ डेप्युटेशन में मेरे साथ कलकत्ता से कई प्रसिद्ध फर्मों के श्रीमान् थे, संस्था के मन्त्री श्री पं० तनसुखलाल जी काला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी थे। दूसरी बार भी डेप्युटेशन मैंने निकाला, तव भी कलकत्ता आसाम से अच्छी रकम प्राप्त हुई। दक्षिण शोलापुर कोल्हापुर सांगली आदि नगरों से भी अच्छी धनराशि प्राप्त हुई, मैं देहली भी गया था वहां से भी अच्छी राशि मिली कुल लगभग २०००००) दो लाख रुपयों की सहायता मोरेना संस्था को आगई। यह सब मोरेना संस्था के प्रति समाज की सहायता एवं सहयोग का ही फल है। मैंने तो कुछ नहीं किया है।

श्रीमन्त महाराजा ग्वालियर से विना मूल्य पक्के वारह बीघा जमीन संस्था को मिली है उसी बगीचे में इस धनराशि से कई मकान मैंने बनवा दिये हैं जिनसे किराये के स्थायी रूप से ७५०) साढ़े सात सौ रुपये माहवार संस्था को मिलते हैं। दक्षिण की कुछ रकमें नहीं आसकती है संभव है वहां जाने से आजाय।

अन्य आवश्यक निर्माण

संस्था की ऊपरी मंजिल में दातारों की द्रव्य से एक सुन्दर वर्धमान चैत्यालय भी मैंने बनवा दिया है उसमें मनोज्ञ पांच प्रतिमायें धातु और पाषाण की अपनी ओर से विराजमान करादी हैं। इस चैत्यालय में मेरे साथ सभी छात्र पंचामृताभिषेक पूर्वक पूजन आरती आदि प्रति दिन करते हैं। नगर निवासी भी दर्शन करते हैं। अन्य भी कई आवश्यक निर्माण मैंने संस्था के द्रव्य से करा दिये हैं। गजपंथ सिद्ध क्षेत्र पर मैंने अपनी ओर से पाँचो परमेष्ठियों की ढाई ढाई फुट की पांच प्रतिमायें विराजमान कराई हैं। एक प्रतिमा देहली में भी विराजमान कराई है। छत्र भी स्वर्ण मिश्रित बनवाया है और भी अपने द्रव्य का उपयोग धार्मिक कार्यों में यथाशक्ति मैं करता रहता हूँ। एक बहुमूल्य स्फटिक की प्रतिमा मैंने अपनी ओर से मोरेना के पंचायती मन्दिर में विराजमान करदी है। तथा अपनी कृतज्ञता प्रगट करने के लिए श्रद्धेय गुरु गोपालदास जी बरैया का अतीव सुन्दर साढ़े

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीन फुट का पद्मासन स्टेचू महाविद्यालय भवन में मैंने अपने द्रव्य से बनवाकर लगवा दिया है।

राज्य गौरव

मेरे विशेष प्रयत्न से इस संस्था में हिज हाइनैस महाराजा ग्वालियर एवं अन्य अन्य समय में राज्य के अनेक मिनिस्टर महोदय संस्था में पधारते रहे हैं इसलिये महाविद्यालय की प्रख्याति एवं गौरव राज्य सरकार में भी अच्छा है।

जब माननीय सर सेठ हुकमचन्द जी इन्दौर से पधारे थे तब उन्होंने संस्था के कार्य से प्रसन्न होकर १५००) रु० दान देने की घोषणा की। बीच में मैंने कहा कि आप देरहे हैं तो ५०००) तो दीजिये तब सरसेठ जी ने कहा कि पं० जी के कहने से पांच हजार संस्था को देता हूं सभी ने हर्ष ध्वनि की।

आनरेरी मजिस्ट्रेट

मोरेना में करीब १५-१६ वर्षों तक राज्य की ओर से मुझे आनरेरी मजिस्ट्रेट भी बनाया गया था, छह माह की सजा और २००) रुपया जुर्माना एक साथ करने का मुझे अधिकार था मेरे सभी फैसले बहाल रहे। मेरे जिन फैसलों को सेशन जजी से खारिज किया गया, हाईकोर्ट में अपील होने पर मेरे फैसले बहाल किये गये।

सेशन जज के साथ फौजदारी केशों में ३ जूरी और बैठते हैं उनमें एक मैं भी रहा हूं

ओकाफ कमेटी में जिला कलेक्टर के साथ नगर के चार प्रतिष्ठित पुरुष और नियत किये जाते हैं उनमें से एक मैं भी बहुत वर्षों तक रहा हूँ। यह कमेटी लाखों करोड़ों रुपयों के राज्य के अधीन धर्मायतन है उनकी सम्हाल एवं व्यवस्था करती है। राज्य से मुझे सम्मान एवं प्रमाण पत्र भी मिले हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्त ग्रन्थों की टीका

उच्च कोटि के महान् सिद्धान्त ग्रन्थराज वार्तिकालंकार ग्रन्थ-राज पंचाध्यायी और पुरुषार्थ सिद्धुपाय इन ग्रन्थों की मैंने हिन्दी टीकायें की हैं। ये टीकायें पूज्य त्यागियों एवं विद्वत्समाज में प्रशंसनीय सिद्ध हुई है।

अनेक गम्भीर विस्तृत ट्रैक्ट
(संजद पद का निर्णय)

धवल सिद्धान्त के ६३वें सूत्र में जोड़े गये "संजद" पद पर ३।४ वर्ष तक विवाद चलता रहा उस समय मैंने एक बड़ा ट्रैक्ट (पुस्तक) लिखा उसका नाम– "सिद्धान्त सूत्र समन्वय" रक्खा उसमें मैंने राजवार्तिक, गोमटसार, धवल सिद्धान्त आदि शास्त्रों के प्रमाणों को देकर यह सिद्ध कर दिया कि उस सूत्र में संजद पद रहने से श्वेताम्बर मत की मान्यता सिद्धान्त शास्त्र से स्वीकार करनी पडेगी। विरोध वढ़ने पर मैंने एक दूसरा ट्रैक्ट "सिद्धान्त विरोध परिहार" और लिखा। उन ट्रैकों को सुनकर और स्वयं धवल शास्त्र का मनन कर परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी ने गज पंथ सिद्ध क्षेत्र पर जीर्णोद्धार कमेटी के सामने यह निर्णय दे दिया कि वह द्रव्य प्रकरण है उसके रहने से स्त्री मुक्ति और सवस्त्र मुक्ति सिद्ध होगी अतः संजद पद उस सूत्र में नहीं रक्खा जाय। मूल प्रति में भी नहीं है। फिर विवाद समाप्त हो गया।

अन्य अनेक ट्रैक्ट

और भी मैंने अनेक ट्रैक्ट सप्रमाण एवं सहेतुक ऐसे लिखे हैं जो सैद्धान्तिक विवाद को दूर करने में सहायक हुएहैं। कुछ ट्रैक्टों के नाम ये हैं–

स्पृश्यास्पृश्य भेद बिचार, चर्चासागर पर शास्त्रीय प्रमाण, जैन धर्म हिन्दू धर्म से भिन्न है, भाव शुद्धि में द्रव्य शुद्धि पहले आवश्यक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, मुनि विहार ऐतिहासिक परम्परा से सिद्ध है। कांजी मत खण्डन, मोक्ष मार्ग विरोधी कांजी भाई, आर्य भ्रम निराकरण आदि।

देहली अम्बाला शास्त्रार्थं

देहली में आर्य समाज के साथ होने वाले शास्त्रार्थ में देहली के प्रसिद्ध आर्य समाजी विद्वान रामचन्द जी देहलवी दोनों ओर के सभापति चुने गये। स्थान और प्रवन्ध भी उन्हीं का रक्खा गया। आर्य समाज की ओर से गुरुकुल कांगड़ी के प्रसिद्ध विद्वान जो मीमांसा चार्य, न्यायाचार्य थे शास्त्रार्थ कर्ता चुने गये जैन समाज की ओर से मैं था। शास्त्रार्थ लगातार ६ दिन तक चला शास्त्रार्थ के दो विषय थे एक जैनियों के तीर्थंकर सर्वज्ञ नहीं हो सकते दूसरा ईश्वर सृष्टि का कर्ता है। १८-२० हजार आदमी दर्शक इकट्ठे होते थे। सहारनपुर अम्बाला जगाधरी शिमला आदि से भी वकील बैरिस्टर और प्रमुख प्रमुख लोग आगये थे। अन्त में मैंने मौखिक एवं लिखित रूप में आर्य समाजी विद्वान का मुंह बन्द कर दिया वे उत्तर देने में असमर्थ हो गये। तव जैन समाज के प्रमुख पुरुषों ने सभापति से शास्त्रार्थ का निर्णय (जजमेंट) मांगा तब सभापति ने घोषणा की कि जैन विद्वान की विजय हुई। यह शास्त्रार्थ "देहली शास्थार्थ" के नाम से छप चुका है दूसरे दिन देहली तथा वाहर नगरों से आये हुए सज्जनों ने एक आम सभा की उसमें "वादीभ केसरी" यह पदवी मुझे सम्मान पूर्वक दी गई।

अम्बाला शास्त्रार्थ

अम्बाला शहर में एक वेदांताचार्य दर्शनाचार्य सनातनी विद्वान थे वे कहते थे जैन धर्म का स्याद्वाद झूंठा है कल्पना मात्र है, मैं अम्बाला जब गया तव वहां के बाबू मुरारीलाल जी जैन एडवोकेट तथा लाला शिब्बामल जी आदि के कहने पर मैंने शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया दो दिन शास्त्रार्थ हुआ। सनातनी विद्वान ने अपनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पराजय मान ली तभी से वे मेरे तथा जैन समाज के मित्र बन गये तव से देहली और उस प्रांत में जैन धर्म के विरुद्ध कोई नहीं बोलता है।

इस विजय को मैं अपनी विद्वता का महत्व नहीं मानता किन्तु दि० जैन धर्म के सर्वज्ञ भाषित एवं गणधरादि बीतराग महर्षियों द्वारा प्रतिपादित अकाट्य एवं सहेतुक सिद्धांतों का ही सर्वोपरि महत्व मानता हूं।

महासभा पर भारी संकट एवं विजय

भा० दि० जैन महासभा के सेढवाल (वेलगांव दक्षिण) अधिवेशन में बालचन्द रामचन्द कोठारी एम० ए० और धावते आदि सुधारकों ने भारी झगड़ा किया था। ८ दिवस पीछे ही महाराष्ट्र के जैन पत्रों में ये समाचार पढ़ने में आये कि–"महासभा हमारे तावे में आगई है उसके सभापति, महामन्त्री, कोषाध्यक्ष अमुक २ बनाये गये हैं अतः महासभा के लिये द्रव्य आदि अमुक २ पते से समाज भेजे" सुधारकों की इस मन गढंत बात को पढ़ पर महासभा के कार्यकर्ता एवं सब लोग चकित होगये। यह कार्यवाही उन्हीं सुधारकों ने की थी।

हम पर मुकद्दमा एवं विजय

उस समय महासभा के मुखपत्र जैन गजट के सम्पादक श्री पं० लालाराम जी शास्त्री थे और मैं स० सम्पादक एवं प्रकाशक था पत्र कलकत्ता से मेरे द्वारा निकलता था। जैन गजट में उन गढन्त बातों का जोरदार प्रतिवाद किया गया। बालचन्द रामचन्द कोठारी एम० ए० ने अपना अपमान समझकर हम दोनों भाइयों पर मानहानि का नोटिस दिया कि दश दश हजार रुपये दो और क्षमा मांगो अन्यथा फौजदारी (डिफीमेशन) केश दोनों पर चलाया जायगा। तदनुसार बेलगांव (दक्षिण) कोर्ट में मुकद्दमा दायर हो गया। हम दोनों भाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी अपनी दुकान को छोड़कर बेलगांव पहुंच गये, वहां पर हम दोनों को दस माह ठहरना पड़ा, वीच वीच में हम दोनों आचार्य शान्तिसागर महाराज के दर्शनार्थ पहुंच जाते थे। महाराज उन दिनों दक्षिण में विहार कर रहे थे। बेलगांव में वहां के श्री गरगट्टे महोदय आदि प्रसिद्ध व्यापारियों ने हमारे लिये ठहरने आदि की सुव्यवस्था करदी थी। सांगली के प्रसिद्ध एवं प्रमुख व्यापारी श्री सेठ गुलाबचन्द जी खेमचन्द जी शाह अपना व्यापार अपने सुपुत्रों को सौंपकर केश में पैरबी करने के लिये बेलगांव पहुँच गये। प्रसिद्ध बकील मजुमदार के कहने पर कोर्ट में हमें कुर्सी दी गई थी। फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट श्री किणी महोदय ने पहले ही दिन कहा कि आप लोग दूर देश से यहां आये हो, केवल क्षमा मांगकर आप लोग जासकते हो। हमने निवेदन किया कि हमारा कोई स्वार्थ नहीं है। अपने व्यापार में बड़ी हानि उठाकर हम यहां आये है। यदि हम क्षमा मांगकर चले जांय तो धर्म और समाज की सेवा करने वाली यह महासभा समाप्त हो जायगी उससे धर्म को भारी हानि होगी अतः आप केश चलाइये इस केश में शोलापुर, कोल्हापुर, सांगली, पूना, बम्बई आदि के करोड़पति श्रीमानों ने हमारे पक्ष में गवाहियां दीं, दानवीर सेठ रावजी सखाराम दोशी शोलापुर ने बहुत परिश्रम एवं पैरवी की। सेढ़वाल के राजमान्य पाटीलों की गवाही हुई। विरुद्ध पक्ष में बालचन्द रामचन्द कोठारी कोल्हापुर राज्य के दीवान लट्ठे महोदय चौगुले बकील धावते आदि की गवाहियां हुई।

फैसले में न्याय मूर्ति मजिस्ट्रेट किणी महोदय ने लिखा है कि ये दूर देश के विद्वान अपनी निःस्वार्थ वृत्ति से केवल धार्मिक सिद्धांतों की रक्षा एवं धर्म सेवी एक वड़ी सभा की रक्षा के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं, और अपने सिद्धान्त से तिलमात्र भी नहीं हट रहे हैं, दूसरी ओर सुधारवादी फर्यादी लोग समय के साथ दौड़ रहे हैं जो सिद्धान्त से दूर हैं अतः कोर्ट इस केश को खारिज करती है। इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारी विजय से समाज में उत्तर दक्षिण में हर्ष की लहर दौड़ गई।

धर्मरत्न धर्मवीर पदवी

महासभा ने अपने फतेपुर वार्षिक अधिवेशन में जो खुरई के श्रीमन्त सेठ मोहनलाल जी की अध्यक्षता में हुआ था। पूज्य भाई सा. श्री पं० लालाराम जी शास्त्री को धर्मरत्न तथा मुझे धर्मवीर पदवी प्रदान कीं तथा महासभा की रक्षा और विजय का प्रस्ताव पास कर कृतज्ञता प्रकट थी।

सरस्वती दिवाकर और विद्या वारिधि पदवी

दि० जैन शास्त्री परिषद के पैठन (महाराष्ट्र) अधिवेशन के के सभापति श्री पं० लालाराम जी शास्त्री बनाये गये थे। कुशलगढ़ अधिवेशन में उन्हें शास्त्रि परिषद ने "सरस्वती दिवाकर" पदवी दी थी और शास्त्रि परिषद के जयपुर के अधिवेशन में मुझे सभापति बनाया गया था, उस अधिवेशन में जयपुर राज्य के प्रायः सभी मिनिस्टर सा० पधारे थे। और सनातनी विद्वान भी पधारे थे। शास्त्र परिषद ने मुझे "विद्यावारिधि की पदवी प्रदान की थी।

दूसरा सभापतित्व

सिवनी में दिगम्बर जैन शास्त्री परिषद हुई थी उसका सभापति भी मुझे बनाया गया था उस अधिवेशन में अनेक विद्वान इकट्ठे हुए थे उनमें श्री धन्नालाल जी कांसलीवाल श्री पं० गौरीलाल जी सिद्धान्त शास्त्री आदि प्रमुख थे।

दि० जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा का सभापतित्व

शान्तिवीर दि० जैन सिद्धान्त संरक्षिणी सभा ने भी मुझे सभापति बनाया था उसका फरिहा अधिवेशन वहां के पंचकल्याणक के समय बहुत महत्वपूर्ण हुआ था वह प्रतिष्ठा दानवीर जैन रत्न राय साहब सेठ चांदमल जी पांडया ने कराई थी वहां पर परम पूज्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य विमलसागर जी का संघ भी विराजमान था उस समय कई धर्मनिष्ठ महानुभावों को सभा की ओर से पदवियां भी दी गई थीं।

पत्र संपादन

महासभा के मुख पत्र जैन गजट का संपादन मैंने करीब १२ वर्ष तक आनरेरी किया है। जैन गजट केश पर मैंने उसे अर्ध साप्ताहिक भी कुछ समय के लिये कर दिया था। मेरा विशेष उपयोग और समय उसी में लगने से मेरे व्यापार में हानि भी होती थी।

जैन दर्शनः—पत्र का संपादन और सचालन मैंने स्वतन्त्र रूप से पाक्षिक रूप में मोरेना से चालू किया था। कई वर्ष तक चलाया, पीछे बम्बई जाकर मैंने सिद्धांत सरक्षिणी सभा के मन्त्री श्री सेठ निरन्जनलाल जी को सोंप कर उक्त सभा का मुख पत्र उसे बना दिया. संपादन मैं ही करता रहा। मेरे धार्मिक एवं सैद्धान्तिक लेखों को सुन कर परम पूज्य आचार्य शांतिसागर जी महाराज कहते थे कि, जैन दर्शन के लेख धर्म रक्षा के लिये पूर्ण सहायक होते हैं। धर्मवीर दानवीर सेठ राव जी सखाराम दोशी शोलापुर जैन बोधक पत्र के संपादक थे उन्होंने मुझे स० संपादक बनाया, करीव २ वर्ष मैंने उसमें भी योग दिया।

परीक्षालय का मन्त्रित्व

भा० दि० जैन महासभा के परीक्षालय का मन्त्री भी मैं कई वर्ष रहा हूँ। उसकी नई पद्धति से योजनायें मैंने चालू की थी, महासभा सिद्धांत संरक्षिणी सभा, शास्त्रि परिषद इनमें मेरा सदैव योग रहता है। इनका मैं प्रारम्भ से आज तक सदस्य हूं और प्रायः सभी अधिवेशनों में मेरी उपस्थिति के लिये मुझे बाध्य होना पड़ता है।

अन्य पदवियाँ

मोरेना महाविद्यालय से श्लोक वार्तिक आदि जैन दर्शनाचार्य (उपाधि) परीक्षा उत्तीर्ण करने पर गुरुवर श्रद्धेय श्री पं० गोपालदास

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जी बरैया ने संस्था की ओर से मुझे न्यायालंकार, पदवी प्रदान की और मेडिल भी दिया तथा कलकत्ता समाज ने दश लक्षण पर्व में बुलाकर शास्त्र प्रवचनों एवं शंका समाधान से प्रभावित होकर ,'न्याय दिवाकर" पदवी प्रदान की।

लाहौरिया, भीमपुर, वांसबाड़ा की एकत्रित हुई समाज ने "विद्वतिलक" पदवी प्रदान की। मुझे वहां दशलक्षण पर्व में बुलाया गया था।

इन पदवियों का उल्लेख तो मेरे कार्यों और उनके परिणाम प्रसंग में मुझे करना पड़ा है। यह मेरी कलम से मेरी प्रशंसा प्रतीत होती है परन्तु वास्तविक बात तो यह है कि मैं तो एक साधारण व्यक्ति हूं मेरा शास्त्रीय वोध भी साधारण है, जैंन सिद्धान्त अगाध है बहुत सूक्ष्म एवं गम्भीर है मैं कितना जानता हूँ। यह कृतज्ञता एवं पदवी दान, धार्मिक समाज का धार्मिक वात्सल्य एवं धार्मिक निष्ठा का प्रतीक है।

आचार्यों एवं मुनिराजों का आशीर्वाद

परमपूज्य आचार्य शांतिसागर महाराज इस समय में महान तपस्वी वीतराग साधुरत्न हुए हैं। अनेक मुनिराजों का एवं आर्यिकाओं का दर्शन समाज को मिल रहा है यह सब दैन उक्त आचार्य शिरोमणि की है। मेरा यह परम सौभाग्य है कि मुझे प्रतिवर्ष उनके दर्शन एवं पात्रदान का लाभ मिलता रहा है। दक्षिण प्रान्त में शोलापुर, कोल्हापुर, सांगली वारामती आदि नगरों में कईवार मैं उनके दर्शनार्थ गया। उत्तर प्रान्त में अनेकवार उक्त आचार्य महाराज एवं अन्य सभी आचार्यों एवं मुनिराजों को आहार दान देकर मैंने अपने जीवन को सफल माना है। मुरेना में आचार्य शांतिसागर महाराज का संघ वि० सम्वत् ८४ में आया था २५ दिन मोरेना में संघ ठहराया था उस समय बम्बई, कलकत्ता, अजमेर आदि के अनेक श्रीमान् उनके दर्शनार्थ आये थे। ग्वालियर राज्य के कई मिनिस्टर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहब भी आये थे। वहुत प्रभावना हुई थी मुरेना महाविद्यालय के तोरण द्वार पर १०-१० फुट ऊंचे चार पाषाण स्तम्भों पर आचार्य शाँतिसागर महाराज का दक्षिण से उत्तर विहार का इतिहास खुदवा कर मैंने संस्था की ओर से लगवा दिया है। यह अतीव शोभनीय स्थायी इतिहास है। मैं मुनियों में पूर्ण श्रद्धा भक्ति रखता हूँ मुझे सभी साधुओं का मंगलमय आशीर्वाद मिलता रहा है। यह मेरे कल्याण का साधक है।

आचार्य संघ पर घोर संकट

मोरेना से विहार कर जब आचार्य संघ राजाखेड़ा (धौलपुर) पहुँचा तब वहां पर कुछ आततायियों ने संघ पर आक्रमण करने का दुष्प्रयत्न किया। उस समय में वहीं पर था और मेरे छोटे भाई बाबू श्रीलालजी जौहरी भी जयपुर से आगये थे। उन्होंने अपने जीवन की कुछ भी परवा नहीं करके तुरन्त छत से नीचे कूदकर मुख्य आततायी को पकड़ लिया। और पुलिस को सोंप दिया मैंने सब उपद्रव प्रत्यक्ष देखा था अतः मैंने जगह २ कई तार कर दिये और देहली ग्वालियर आदि के प्रसिद्ध करीब २५ महानुभावों का एक डेप्युटेशन धौलपुर नरेश के पास में ले गया। सबों को राजकीय महल में ठहराया गया। दरबार में विचार चला। धौलपुर नरेश के दीवान बाबू कन्नोमलजी एम० ए० के जज भी थे जैन धर्म के भी जानकार थे। मेरा उनसे अच्छा परिचय था। नरेश के सामने कहा कि जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म है अतः किसी को कष्ट नहीं दिया जाय। यह प्रकरण समाप्त कर दिया जाय तो अच्छा है इस कथन पर मैंने तुरंत कहाकि जैन धर्म किसी जीव को मारना नहीं बताता कष्ट देना भी नहीं कहता परन्तु अन्यायी एवं अपराधियों को दण्ड नहीं दिया जाय तो संसार में अपराध और हिंसा वढ़ेगी। आप जज हैं आप दण्ड भी देते हैं। जेल में भेजते हैं तो क्या आप कष्ट देते हैं या हिंसा करते हैं नहीं किन्तु न्याय एवं निरपराध जगत की प्रवृत्ति देखना चाहते हैं। परिणाम यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हुआ कि धौलपुर नरेश की आज्ञानुसार केश चला और अपराधियों को पांच-पांच वर्ष की जेल और १००), १००) जुर्माना किया।

मेरा व्रत ग्रहण

मथुरा चौरासी सिध्द क्षेत्र पर परम पूज्य आचार्य शान्ति सागर महाराज से मोरेना महाविद्यालय के अधिष्ठाता श्री पं० धन्नालाल जी काशलीवाल ने सप्तम प्रतिमा के व्रत लिये थे और मैंने दूसरी प्रतिमा के व्रत लिये थे कुछ समय बाद आचार्य महावीर कीर्ति महाराज से मैंने तीसरी प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये थे। तभी से (करीब ४० वर्षों से) मैं जैनी के हाथ का ही और कुए का ही जल लेता हूं।

प्राण घातक घटना से रक्षा

गरमी के दिन थे मैं बम्बई जारहा था पंजाबमेल झांसी स्टेशन पर २० मिनट ठहरती थी उस दिन सिगनल पर ही २० मिनट रुकी रही। फिर २० मिनट से पहिले भी चलदी। मैं बिस्तर व ट्रंक गाड़ी में ही छोड़कर लोटा डोर ग्लास छन्ना लेकर कूआ पर जल पीने गया वाबू से पूछने पर उसने २० मिनट ठहरेगी ऐसा कह दिया, जल पीकर जब लौटा तो दूर से मैंने देखा कि पंजाब मेल चल दिया है मैं दौड़कर इंजन के पास डिब्बे में डंडा पकड़ कर गाड़ी पर चढ़ गया। थोड़ी देर में मेरा हाथ नीचे सरक गया पैर भी पैंडल से सरक गया फिर दूसरा हाथ और दूसरा पैर भी छूट गया मैं चलती गाड़ी से गिर कर पटरी के निकट लेटा हुआ आपड़ा। गाड़ी आगे चलकर खड़ी हो गई। लोग चिल्ला रहे थे कि मुसाफिर कट गया। गार्ड वगैरह अनेक लोग इकट्ठे हो गये। मैं प्लेट फार्म पर आगया। तब सभी लोगों ने आश्चर्य के साथ मुझसे पूछा और देखा कि शरीर का कोई अंग नहीं कटा है। मेरा सामान उतार लिया गया और रेल्वे के स्पेशल मजिस्ट्रेट के पास मुझे अधिकारी ले गये उन्होंने रिपोर्ट पेश करदी। मजिस्ट्रेट ने कहा कि आप चलती गाड़ी में चढ़े हो। मैंने कहा कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाबू ने २० मिनट समय गाड़ी के ठहरने का बताया था। मेरा कसूर नहीं है। तब उन्होंने कहा कि चलती ट्रेन में चढ़ना ही अपराध है उस पर १००) रु० दण्ड होना चाहिये। परन्तु आपकी पगड़ी देखकर और परिचय पाकर आप विद्वान हैं और सरलता से सही बात आपने कहदी है आप पर केश नहीं चलेगा आप जाइये। दूसरी गाड़ी से जब मैं बम्बई पहुंचा तो एक दिन लेट होने की चर्चा के प्रसंग में रेल से गिरने की बात मैंने कही तब एक महानुभाव बोले कि पंजाब मेल से गिरने पर आपका कोई अंगभंग भी नहीं हुआ, पदमावती देवी ने आपकी रक्षा की है वह अव्रती सम्यग्दृष्टि है। धर्मात्माओं की सेवा सहायता करती है।

दूसरी प्राण घातक घटना तब हुई थी जब कि श्रीगजपंथ सिद्ध क्षेत्र पर परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर महाराज तथा परम पूज्य आचार्य सुधर्मसागर जी आदि संघ ठहरा हुआ था उनके दर्शन कर मैं तथा मेरे छोटे भाई श्रीलाल जी जोहरी दोनों गजपंथ पहाड़ पर ऊपर चढ़ गये। परन्तु यह अनुभव नहीं किया कि सीधे ऊंचे पहाड़ पर चढ़ना नितान्त कठिन एवं पूरा खतरा है। ऊपर से लुढकने का प्रबल प्रसंग आगया। जैसे तैसे णमोकार मन्त्र जपते हुए बच गये तब पूजन किया।

मैंने भेंट कभी नहीं ली

धार्मिक प्रसंगों में समाज मुझे बुलाता है और भेंट करता है। कलकत्ता बम्बई देहली आदि नगरों में ऐसे प्रसंग अनेक बार आये हैं। इन्दौर में वहां के समाज ने पर्व में बुलाया था मैं सर सेठ हुकमचन्द जी के भवन में ठहरा हुआ था, विदा करते समय उन्होंने १०००) रु० एक अंगूठी, एक दुशाला और श्रीफल मुझे भेंट किया सेठ साहब और श्री पं० धन्नालाल जी कासलीवाल ने आग्रह भी किया परन्तु केवल श्रीफल लेकर उनका आदर माना, और कोई भेंट स्वीकार नहीं की। केवल आने जाने का मार्ग व्यय लेलेता हूँ। मैंने प्रारम्भ से भेंट नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेने का संकल्प रखा है। जो विद्वान भेंट लेते हैं वह बुरा नहीं है धार्मिक आदर है परन्तु वर्तमान समय में मेरा यह अनुभव है कि भेंट लेने पर दातार श्रीमान् का कुछ प्रभाव (असर) पड़ता ही है और धर्म की स्पष्ट बात कहने में उस विद्वान को कुछ संकोच होता है।

मोरेना संस्था के बगीचे की थोड़ी सी भूमि अपना मकान बनाने के लिए मैंने संस्था के ट्रस्टियों से मांगी थी. और उसकी कीमत में ४०००) रुपये मैं देता था परन्तु सभी ट्रस्टियों ने लिखा है कि आपने संस्था की बहुत सेवा की है आपको बिना मूल्य भूमि हम देते हैं आप स्वीकार करें उन्होंने पत्रों में आग्रह भी किया परन्तु बिना मूल्य लेना मैंने स्वीकार नहीं किया फिर अन्यत्र मकान खरीद लिया निस्पृह और निःस्वार्थ सेवा में आनन्द मानता हूँ।

सिद्ध क्षेत्रों की बन्दना

अनादि तीर्थ श्री सम्मेद शिखर की बंदना मैंने १०-१२ बार की है। गिरनारी, मांगी तुंगी, बड़वानी सिद्ध क्षेत्रों की वन्दना दो बार की है गजपंथ, सोनागिर क्षेत्रों की वन्दना अनेक बार की है। चम्पापुर पवापुर की बंदना भी दो बार की है।

अतिशय क्षेत्र- श्रवण बेल गोला (जैन विद्री) मूल विद्री, कारकल, देवगढ़, पपौरा, थवोन जी, अहार, कंपिला इन अतिशय क्षेत्रों की वन्दना मैंने दो बार की है।

आचार्य महाराज का अन्तिम आशीर्वाद

कुथलगिर सिद्ध क्षेत्र पर जब आचार्य शांतिसागर महाराज ने सल्लेखना समाधि ग्रहण की थी. तब वहां उनके दर्शनार्थ हजारों भक्त पहुँचे थे। सल्लेखना समाधिमरण के समय मैं वहां पर एक माह ठहरा था, इन दिनों में महाराज ने ३-४ बार मुझे अपने पास बुलाकर कई बात कहीं और मुझसे पूछी। एक दिन महाराज ने मुझसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा कि तुम अपना धर्म साधन करते हुए निर्भीकता से धर्म रक्षा में तत्पर रहते हो, आगम पर अटल श्रद्धा रखते हो तुम्हारा सम्यग्दर्शन दृढ़ है तुम्हारा कल्याण होगा। परमपूज्य आचार्य महाराज से इस अन्तिम आशीर्वाद से मुझे बहुत आनन्द हुआ। उस समय श्री पं० तनसुखलाल जी काला और श्री पं० सुमेरचन्द जी दिवाकर न्यायतीर्थ भी कुंथलगिर में मेरे साथ थे। दिवाकर जी ने तो महाराज जी के निकट बैठकर उनसे पूंछकर अनेक बातें नोट की हैं।

मेरी भावना और मेरा प्रयत्न

मेरी भावना और मेरा प्रयत्न यह रहता है कि दि० जैन समाज में रात्रि भोजन सर्वथा नहीं हो, उससे त्रस जीवों का कलेवर भी प्रच्छन्न रूप से भक्षण में आजाता है। देव दर्शन से आत्मीय गुणों एवं सम्यग्दर्शन का विकास होता है। जो नवयुवक छात्र देव दर्शन नहीं करते हैं उनमें जैनत्व नहीं है।

भावों की शुद्धि के लिए वाह्य (द्रव्य) शुद्धि परमावश्यक है। बिना वाह्य शुद्धि के अंतरंग शुद्धि अशक्य है।

मिथ्या एकान्त प्रचार को रोका जाय अन्यथा एक नया सम्प्रदाय बनकर सिद्धांत एवं धर्म का पूर्ण विघातक होगा वर्तमान मुनि गण भी निर्ग्रन्थता निस्परिग्रहता, निर्ममत्वता पूर्ण त्याग एवं परिषह उपसर्ग सहन करने से तथा सल्लेखना समाधिमरण धारण करने के चतुर्थ काल के मुनियों के समान ही वंदनीय एवं पूज्य है। इस वर्तमान शिथिलाचारी देश काल में प्रथा इस हीन संहनन में भी वे दि० जैन धर्म का सर्वोच्च परमादर्श प्रगट कर रहे हैं उनमें श्रद्धा भक्ति रखता हुआ समाज अपना कल्याण उनके द्वारा करता रहे।

सभी संस्कृत संस्थाओं में धर्म एवं सिद्धान्त के ठोस शिक्षण के साथ छात्रों में धार्मिक संस्कार एवं आचार विचार आगमानुकूल उत्पन्न किये जायें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाज में धार्मिक वातावरण और धार्मिक वात्सल्य बना रहे तथा कौटुम्बिक निर्वाह के लिए लौकिक शिक्षण एवं व्यवहारिक कार्य करते हुए यथा शक्ति आत्मीय हित भी सभी करते रहें। बस यही मेरी भावना है और उसी के लिए मेरा प्रयत्न है।

अन्त में यही मेरी भावना रहती है कि मुझे इस जीवन में देव शास्त्र गुरु की आराधना भक्ति सदैव मिलती रहे और अपना जीवन संसार से विरक्त बनाकर शान्त भाव से मैं अपने आत्म हित में लगा रहूँ। ॐ नमः सिद्धेभ्यः

सर्व मंगल मांगल्यं सर्व कल्याण कारकम्
प्रधानं सर्वधर्माणां जैन जयतु शासनम्

श्रुत पंचमी
५-६-७३

मक्खनलाल शास्त्री तिलक
मोरेना (म०प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारों अनुयोगी गम्भीर संस्कृत शास्त्रों के मर्मज्ञ तथा लगभग
१०० एक सौ संस्कृत शास्त्रों के टीकाकार नैष्ठिक
प्रतिमाधारी, आगमनिष्ठ, महाविद्वान

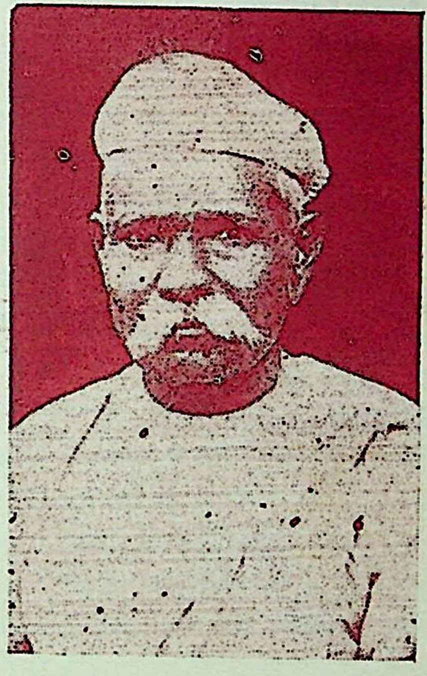

विद्वत् शिरोमणि, धर्मरत्न, सरस्वती दिवाकर स्व०
श्री पं० लालाराम जी शास्त्री महोदय तिलक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❋ श्री वर्धमानायनमः ❋

सविनय समर्पण

धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर श्रद्धेय
श्रीमान् पं० लालाराम जी शास्त्री तिलक

पूज्यवर !

आप मेरे सहोदर बड़े भाई साहब थे इसलिये आपके प्रति मेरा हार्दिक विनय भाव तो पहले से ही था। परंतु आपकी असाधारण गुण गरिमा, नैष्ठिक प्रतिमा पालन रूप उज्ज्वल चारित्र, विद्वानों द्वारा प्रशंसनीय अगाध विद्वत्ता एवं समाज मान्य महती प्रतिष्ठा आदि विशेषताओं से आपके प्रति मेरी श्रद्धा सदैव रही है।

आपने चारों अनुयोगों के लगभग एक शत (एक सौ) संस्कृत गंभीर शास्त्रों की भाव पूर्ण टीकाऐं बनाकर समाज को तत्वबोध तथा मूल ग्रन्थ के आशय के ही अनुकूल जो बहुत हितकारी लाभ दिया है उस महान् उपकार से वह सदैव उपकृत रहेगा।

आप मेरे विद्या गुरू भी थे, शास्त्रों का तल स्पर्शी विशेष अनुभव जो आपने प्राप्त किया था उसी अनुभव की दृढ़ता आपसे मुझे मिली है। इसीलिये विद्वानों का अनेक विषयों में मतभेद होने पर भी शास्त्राधार से पूर्वाचार्यों के वचनों को इस "आगम मार्ग प्रकाशक" ग्रन्थ में मैंने उद्धृत किया है।

पूज्यवर ! आपके द्वारा प्राप्त शास्त्रीय सिद्धान्त की जानकारी का ही परिणाम यह है और आपकी जो पूर्वाचार्यों के वचनों पर अटल एवं दृढ़ श्रद्धा थी, उसी प्रकार मेरी भी है।

अतः बड़ी विनम्रता एवं श्रद्धाभाव से आपके कर कमलों में इस ग्रन्थ को मैं भेंट करता हूँ।

आपका विनम्र

श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

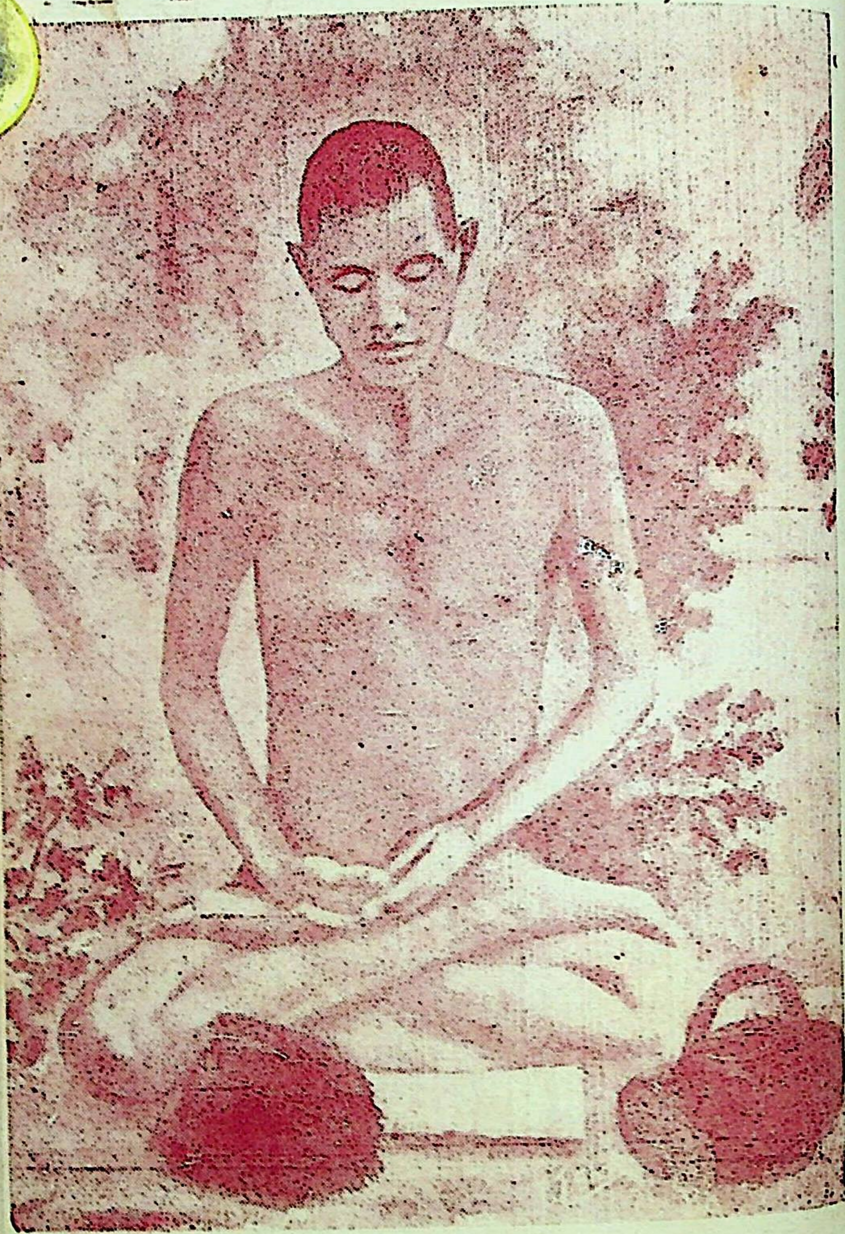

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुधर्मध्यान प्रदीप, सुधर्म श्रावकाचार, जिन चतुर्विशंतिका आदि गम्भीर महान् संस्कृत शास्त्रों के रचयिता तथा परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ति आचार्य शान्तिसागर महाराज का दक्षिण से उत्तर भारत में लाकर विहार कराने वाले और संघस्थ मुनिराजों को संस्कृत का अध्ययन कराने वाले चारों अनुयोगी शास्त्रों के महान् विद्वान्, तपस्वी साधु

परम पूज्य, विद्वत्पूज्य पाद, श्री १०८ स्वर्गीय

आचार्य सुधर्मसागर जी महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

* श्री वर्द्धमानाय नमः *

"स्व० परम पूज्य आचार्य सुधर्म सागर महाराज का स्तवन"

(श्री मक्खनलाल शास्त्री द्वारा रचित)

ऋषि वर सुधर्म सागर, सन्मार्ग तू बताजा ।
पथ भृष्ट हो रहे जो, पथ में उन्हें लगाजा ॥
ऋषि वर सुधर्म०

संस्कार हमसे छूटे, उपदेश पाय भूठे ।
भूले हुए मनुज को, आचार तू सिखाजा ॥
ऋषि वर सुधर्म०

हिंसा, कुशील, चोरी, दुर्व्यसन बढ़ रहे हैं ।
पापों तू लिप्त जन को, सद्धंम से बताजा ॥
ऋषि वर सुधर्म०

विज्ञान घन घटा में, अध्यात्मवाद छूटा ।
तप, त्याग, शांति रस की, धारा सुधा बहाजा ॥
ऋषि वर सुधर्म०

हित कर सु वीर वाणी, ग्रन्थों में तूने गूंथी ।
सब का वही सहारा, मत भेद तू मिटाजा ॥
ऋषि वर सुधर्म०

मुनि दान देव पूजा, करुणा करें सबों पर ।
मक्खन सु बोध दीपक, ज्योती प्रभो जलाजा ॥
ऋषि वर सुधर्म०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

* श्री वर्द्धमानाय नमः *

इस आगम मार्ग-प्रकाशक ग्रन्थ के विषय में हमारा विनम्र

* निवेदन *

कृपा कर इस निवेदन को ध्यान पूर्वक पढ़कर
ही इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करिये ।

कृपया इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने के पहिले इस निवेदन को ध्यान से अवश्य पढ़ लीजिये। परम पूज्य मुनिराजों, पूज्य त्यागियों एवं आगम श्रद्धालु विद्वानों से हमारा यह नम्र निवेदन है कि-इस "आगम मार्ग प्रकाशक" ग्रन्थ में हमने जितने विषय लिखे हैं, तथा सैद्धांतिक शंकाओं का जो समाधान किया है और समाज में धार्मिक पद्धति में जो मतभेद चल रहे हैं उन सभी विषयों पर थोड़ा-थोड़ा प्रकाश डाला है यह सब पूर्वाचार्यों द्वारा रचित शास्त्रों के आधार से ही लिखा है। सभी विषयों के समर्थन में सहेतुक सयुक्ति आगम के प्रमाण हमने दिये हैं। दूसरे शब्दों में यह कहना चाहिये कि यह ग्रन्थ आगम प्रमाणों का ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकलन हैं। इसलिये इस ग्रन्थ का "आगम मार्ग प्रकाशक" यह नाम सार्थक है। इस ग्रन्थ में कोई एक बात भी हमने ऐसी नहीं लिखी है जो आगम के विरुद्ध हो अथवा स्वतंत्र विचारों का प्रतीक हो। वीतराग महर्षियों के प्रति हमारी पूर्ण श्रद्धा है उनके बचनों पर हमारी अटूट दृढ़ता है तत्वों के यथार्थ बोध के लिये तथा जीवों के उद्धार के लिये उनके वचन ही प्रमाण एवं साधक हैं। शास्त्रों के बिरुद्ध एक शब्द कहना भी हम निंद्य समझते हैं।

दि० जैन मात्र को जैनागम एवं महर्षियों का श्रद्धापूर्वक उपकार मानना चाहिये, पूर्वाचार्यों ने बताया है-

अभिमत फल सिद्धे, रभ्युपायः सुबोधः
भवतिहि स्च शास्त्रात्,तस्य चोत्पत्ति राप्तात्
इति भवति सपूज्यः तत्प्रसादात् प्रबुद्धेः
नहि कृत मुपकारं साधवो विस्मरन्ति

अर्थात् अपने कल्याण की प्राप्ति का उपाय सम्यग्ज्ञान का प्राप्त करना है वह सम्यग्ज्ञान दि० जैन शास्त्रों से अर्थात् जिनवाणी से होता है और शास्त्रों की उत्पत्ति आप्त से अर्थात् सर्वज्ञवाणी तथा गणधर श्रुत केवली आदि पूर्वाचार्यों से होती है। इसलिये उन शास्त्रों पर दृढ़ श्रद्धा रखना ही सबों के लिये हितकारी है, उनके महान् उपकारों को कभी नहीं भूलना चाहिये क्योंकि आगम प्रमाण ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमारे सद्‌विचारों एवं धार्मिक प्रवर्तियों का मूलाधार है। उन्हीं आगम प्रमाणों से हमने यह ग्रन्थ लिखा है। आगम प्रमाण ही सर्वोपरि अकाट्य समाधान और श्रद्धान का विषय है।

फिर भी हमारी अजानकारी से त्रुटि एवं भूल हो सकती है क्योंकि–हमारा ज्ञान बहुत थोड़ा है, शास्त्रों का रहस्य अत्यन्त गम्भीर और सूक्ष्म है उसे समझने में बड़े २ ज्ञानी भी अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं। तब हम सरीखे स्वल्प बोध वालों से जो तत्व के स्थूल स्वरूप को समझने में भी नितान्त असमर्थ हैं। भूल एवं त्रुटि हो जाना सहज है।

देखिये आचार्य अनन्तवीर्य स्वामी ने न्याय ग्रन्थ प्रमेय रत्नमाला रची है वे आचार्य अपने गुरु माणिक्यनन्दि के लिये नमस्कार करते हुए कहते हैं—

अकलंक वचोम्बोधे; रुद्दध्रे येन धीमता
न्याय विद्या मृतं तस्मै, नमो माणिक्यनंदि ने

(प्रमेय रत्नमाला)

अर्थात् अकलंकदेव के वचनरूपी समुद्र से जिन्होंने न्याय विद्यारूपी अमृत ग्रहण कर लिया उन माणिक्यनन्दी आचार्य को मैं नमस्कार करता हूं वे ही आचार्य अनन्तवीर्य स्वामी प्रमेय कमल मार्तंड के रचियता आचार्य प्रभाचन्द की स्तुति करते हुए कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रभेन्दु वचनोदार, चन्द्रिका प्रसरे सति
माद्रसाः क्वनु गण्यन्ते ज्योतिरिंगण सन्निभाः
(प्रमेय रत्नमाला)

अर्थ—आचार्य अनन्तवीर्य स्वामी कहते हैं कि—आचार्य प्रभाचन्द स्वामी की बचनरूपी चन्द्रमा की चांदनी भू-मंडल में सर्वत्र फैली हुई है उस चाँदनी के सामने मुझ सरीखा पटवोजना (जुगनू) का प्रकाश किस गिनती में है। एक छोटा उड़ने वाला कीड़ा जो वर्षात में चमकता है उसे पटवीजना कहते हैं, उसको चमक चन्द्रमा के प्रकाश के सामने किसी गिनती में नहीं है यही बात आचार्य अनंत वीर्य स्वामी ने आचार्य माणिक्यनन्दी और आचार्य प्रभाचन्द्र के बोध के सामने अपना बोध नगण्य बताते हुए कही है।

इसी प्रकार आचार्य नेमिचन्द सिद्धांत चक्रवर्ती ने द्रव्य संग्रह ग्रन्थ बनाया है उसके अन्त में यह गाथा लिखी है—

दव्व संग्गह मिदं मुणि णाहा
दोष संचय चुदा सुद पुण्णा
सोधयन्तु तणु, सुत्त धरेण
णेमिचन्द मुणिणा, भणियं जं
(द्रव्य संग्रह)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात्:- गोमट्टसारादि महान् ग्रन्थों के रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ति ने अपने बनाये हुए द्रव्य संग्रह ग्रन्थ के अन्त में यह लिखा है हे मुनियों के नाथ पूर्ण श्रुत ज्ञानधारी निर्दोष विशुद्ध परिणामधारी आप लोग इस मेरे बनाये हुए द्रव्य संग्रह ग्रन्थ में जो कुछ भी भूल या त्रुटि हुई हो उसका आप संशोधन करके सुधार कर लेवें। क्योंकि मैं थोड़े ज्ञान का धारक हूँ।

महान् आचार्य यह बात कहते हैं तब हम अपने साधारण तुच्छ ज्ञान को किस गिनती में समझें, इस स्थिति में इस ग्रन्थ की रचना में हमसे भी भूलों का होना सहज है अतः पूज्य त्यागियों और आगम श्रद्धालु विद्वानों से हमारा निवेदन है कि वे हमारी भूल या त्रुटि के लिए हमको क्षमा करें। और उस त्रुटि का सुधार कर लेवें।

आगम का विरोध नहीं करें

एक बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि जो अपनी अपनी आम्नाय और अपनी२ प्रचलित पद्धति के आधार पर अपने मन्तव्यों पर दृढ़ हैं उन सज्जनों से हम इतना निवेदन करना उचित समझते हैं कि वे भले ही अपनी पद्धति का पालन करें परन्तु आगम के प्रमाणों को देखते और जानते हुए अपने मन्तव्यों के समर्थन में आगम का विरोध नहीं करें उनका वैसा विरोध करना पूर्वाचार्यों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बचनों का (शास्त्रों का) विरोध ठहरेगा जो समाज के लिए अहितकर और उनके लिए कर्मबंध का कारण होगा। आगम सिद्ध प्रमाण विवाद का विषय नहीं है यदि आगम सिद्ध बातों में भी कोई शंका हो तो उसे जिज्ञासा बुद्धि से सिद्धांत वेत्ता विशेष ज्ञानियों से समझ कर समाधान कर लेना चाहिये।

जहाँ अन्य दर्शन (मत) वालों के साथ विवाद होता है वहाँ तो प्रबल सद्हेतुओं से एवं प्रवल युक्तियों से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित किया जा सकता है परन्तु जहाँ सभी पक्ष आगम मानने वाले हों वहाँ तो आगम प्रमाण ही दोनों का मूल आधार है।

उसी बात को ध्यान में रखकर इस ग्रन्थ में जितने भी बिषय हमने लिखे हैं उन सबों की सिद्धि में पूर्वाचार्यों के प्रमाण दिये हैं, उन प्रमाणों को देखते हुए भी जो कोई शास्त्र सम्मत बातों का निषेध करे अथवा विवाद खड़ा करें तो उनके समाधान के लिए आगम प्रमाण के सिवाय हम और क्या कह सकते हैं? फिर वे जैसा समझें और जो करें यह उनकी इच्छा पर निर्भर है।

हमने इस ग्रन्थ में जो कुछ लिखा है वह समाज के हित की सद्भावना से लिखा है और पक्ष विपक्ष का कोई लक्ष्य नहीं रखकर अपने सरल भावों से आगम के प्रकाश में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही लिखा है। क्योंकि आगम का प्रकाश ही सन्मार्ग दर्शक एवं यथार्थ वस्तु का बोध कराने वाला है, तथा यही सभी के लिए हितकारी है।

प्रबन्ध रचना के विषय में एक नीतिकार का श्लोक स्मरण रखने योग्य है।

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जना स्तत्र, समा दधति सज्जनाः ॥

अर्थः— चलते२ कोई व्यक्ति अपने प्रमाद से या अपनी भूल से कहीं पर गिर भी जाता है तो उसे गिरा हुआ देखकर दुर्जन स्वभाव वाले पुरुष हँसते हैं और सज्जन स्वभाव वाले पुरुष उसे संभाल लेते हैं यही बात इस हमारी ग्रन्थ रचना में घटित होती है। भलेही कोई महानुभाव इस ग्रन्थ की कटु आलोचना भी करें तो हमें उस आलोचना से खेद नहीं होगा। और हम पक्ष-विपक्ष के निराधार विवाद और उत्तर प्रत्युत्तर में भी नहीं पड़ेंगे क्योंकि इस ग्रन्थ में आचार्यों के बचनों का ही हमने दिग्दर्शन कराया है आगम प्रमाण ही हमारे सद्विचारों एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का मूलाधार है। और वही व्यवहार सम्यग्दृष्टियों के लिए श्रद्धान करने योग्य है।

शास्त्रों की प्रमाणता और अप्रमाणता पर विचार

पूर्वाचार्यों के रचे हुए शास्त्रों की आलोचना करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और किसी शास्त्र को प्रमाण तथा किसी को अप्रमाण ठहरा देना और अमुक आचार्य अमुक समय के हैं दूसरे अमुक समय के पीछे के हैं अतः एक प्रमाण हैं तथा दूसरे अप्रमाण हैं ऐसी पद्धति या साहस कुछ समय से चल पड़ा है परन्तु छद्मस्थों द्वारा शास्त्रों की अथवा आचार्यों की ऐसी आलोचना करना अग्राह्य एवं निन्द्य है। वकीलों जैसी बहस (आर्गूमेन्ट) लौकिक बातों में की जा सकती है। शास्त्रों के विषय में नहीं। शास्त्र सर्वज्ञ कथित-जिनवाणी के आधार पर वीतराग महर्षियों ने जीवों के कल्याण के लिये बनाये हैं उन्हें अप्रमाण ठहराना उनका अवर्णवाद है एवं दर्शन मोहनीय कर्म बन्ध का कारण है।

कहीं२ शास्त्रों में मतभेदसा प्रतीत होता है

मौखिक श्रुताभ्यास परम्परा के कारण जहां कहीं विरोध दीखता है वहां आचार्यों ने वैसा ही लिखा है।

गोमट्टसार में आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ति ने लिखा है—

तिगुणा सत्त गुणा वा, सव्वत्था माणुसी पमाणादो

अर्थात् सर्वार्थ सिद्धि के देवों की संख्या मानुषियों के प्रमाण से तीन गुणी अथवा सात गुणी अधिक है तिगुणी और सात गुणी संख्या में बहुत बड़ा अन्तर है परन्तु आचार्य महाराज ने मतभेद वाली दोनों संख्याओं को स्पष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रख दिया है उन्होंने एक संख्या को प्रमाण दूसरी को अप्रमाण नहीं कहा है। सम्भव है मौखिक आचार्य परम्परा से मतभेद हो अथवा एक संख्या जघन्य हो एक उत्कृष्ट हो। और भी देखिये—

तिसयं भणन्ति केई, चउ रुत्तर पंच मत्तयं कई
उवसामक परिमाणं, खवगाणं होइ तद्दिगुणं

(गोमट्टसार)

अर्थः— आचार्य नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ति कहते हैं कि उपशामक महामुनियों का परिमाण (संख्या) कोई आचार्य तो तीन सौ बताते हैं कोई आचार्च तीन सौ चार बताते हैं और कोई आचार्य दो सौ निन्यानवै बताते हैं, क्षपक श्रेणी वालों का परिमाण उनसे दूना है।

इस कथन में एक दूसरे से विरोध है फिर भी आचार्य नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ति ने किसी को प्रमाण और किसी को अप्रमाण नहीं कहा है प्रथमानुयोग शास्त्र में भी मौखिक श्रुताभ्यास परम्परा से चले आये कथन में कहीं विरोध भी प्रतीत होता है जैसे आचार्य गुणभद्र स्वामी ने सीता को रावण की पुत्री लिखा है और सती सीता के कारण ही निमित्त ज्ञानियों से अपनी मृत्यु का योग समझकर रावण ने जन्म होते ही सीता को मंजूसा में बिठाकर नदी में छुड़वा दिया, उस मंजूसा को राजा जनक ने पालिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः जन्म से ही सीता का पालन पोषण राजा जनक के ही यहां हुआ। अतः वह उनकी पुत्री प्रसिद्ध हुई। श्रीरामचन्द्र जी के साथ विवाह भी राजा जनक ने किया। इसलिये आचार्य रविषेणाचार्य ने जनक पुत्री कहकर सीता का उल्लेख पद्मपुराण में किया है। उत्तर पुराण में आचार्य गुणभद्र स्वामी ने रावण की पुत्री कहकर सीता का उल्लेख किया है। अपने२ दृष्टिकोंण में दोनों ही ठीक हैं। अतः पद्मपुराण या उत्तरपुराण दोनों में किसी को भी अप्रमाण ठहराना वस्तु स्थिति के विरुद्ध है। हमें स्मरण है कि कुछ वर्ष पहले एक लेख छपा था, सिद्धान्त शास्त्रों के टीकाकार आचार्य वीरसेन और आचार्य यतिवृषभाचार्य के कथन में कुछ भेद बताया गया था। और भी गोम्मट्टसार आदि ग्रन्थों में मत-भेद सा मालूम पड़ता है। परन्तु वास्तव में मतभेद नहीं है

जब महान् आचार्य किसी दूसरे आचार्य के कथन को अप्रमाण नहीं बताते हैं तब साधारण ज्ञान वाले अल्पज्ञ किसी कथन को अप्रमाण कहने का दुःसाहस करें यह आज्ञा सम्यक्त्व के सर्वथा विपरीत बात है।

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्वं हेतुभिर्नैव हन्यते
आज्ञा सिद्धञ्च तद्ग्राह्यं नान्यथा वादिनो जिनाः

आचार्य परम्परा का यह श्लोक श्रद्धालु पुरुषों के लिए पूर्ण हितकारक है और सम्यग्दर्शन का उत्पादक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसका अर्थ यह है कि– जिनेन्द्र देव ने जिन तत्वों का वर्णन किया है वे अत्यन्त सूक्ष्म है। हमारे ज्ञान के गम्य नहीं है। भगवान के कहे हुए तत्व अकाट्य हैं। किन्हीं हेतुओं से उनका खण्डन नहीं हो सकता है। वस्तु स्वरूप के यथार्थ प्रतिपादक हैं। उन्हें आज्ञा मानकर ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि जिनेन्द्र देव अन्यथावादी नहीं कहे जासकते हैं। इसका खुलासा यह है कि दो कारणों से वस्तु स्वरूप में अन्यथा भाव अथवा विपरीत कथन हो सकता है एक तो यह कि पदार्थ का स्वरूप बताने वाला रागी द्वेषी हो तो वह जानबूझ करके भी पदार्थ का विपरीत अर्थ बता सकता है। अथवा अल्पज्ञ हो, वह वस्तु स्वरूप को जानने में असमर्थ है अतः वस्तु की अजानकारी से अन्यथा या विपरीत कह सकता है। परन्तु जो वीतराग है और सर्वज्ञ है उसका बताया हुआ वस्तु स्वरूप कभी अन्यथा नहीं ठहर सकता है, पूर्ण रूप से यथार्थ एवं अकाट्य ही होगा।

भगवान जिनेन्द्र देव तीर्थंकर परम विशुद्ध परम वीतराग है और वे सर्वज्ञ हैं अतः उनके बचन ही जिनवाणी हैं उसे भगवान की आज्ञा समझ कर उस पर पूर्ण श्रद्धा करना चाहिये यही व्यवहार सम्यग्दर्शन है। यही बात आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने गोमट्टसार में कही है

जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदोसो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् जो जिनेन्द्र भगवान के बचनों पर दृढ़ श्रद्धान रखता है वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।

आज धार्मिक समाज में भी सैद्धान्तिक मतभेद हैं। आम्नाय पद्धति में मतभेद हैं। उन मतभेदों के रहते हुए भी सभी धर्मात्मा पुरुष देव गुरु शास्त्र के श्रद्दावान हैं और धर्म साधन में लगे हुए हैं। हमने जो आगम मार्ग प्रकाशक ग्रन्थ लिखा है वह मतभेदों को दूर करने के लिए ही लिखा है। वर्तमान समय में धार्मिकों में परस्पर प्रेम एवं साधर्म्य एकता रहनी चाहिये। मतभेद तथा आम्नाय पद्दति भलेही जुदी जुदी बनी रहे किन्तु आगम प्रमाणों का विरोध तो किसी को भी नहीं करना चाहिये। यही हमारा सभी सज्जनों से आग्रह पूर्ण निवेदन है।

इस ग्रन्थ के लिखते समय शास्त्रीय प्रमाणों की खोज और ग्रन्थ रचना में लगभग ८।१० महीना हमको अत्यधिक परिश्रम एवं मानसिक शक्ति लगानी पड़ी है रात्रि में दो-दो बजे उठकर हमने इस ग्रन्थ को लिखा है। इस ग्रन्थ के लिखने का हमारा उद्देश्य यही है कि समाज आचार्य बचनों (शास्त्रों) का दृढ़ श्रद्दानी बने तथा परम पूज्य मुनिराजों में पूर्ण श्रद्दा रक्खे और आगम विपरीत अथवा धर्म विरुद्द स्वतन्त्र मन्तव्यों के प्रचार से अपना अहित नहीं होने देवें। इसके सिवा किसी प्रकार के प्रयोजन अथवा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थलाभ से हमारा सर्वथा सम्बन्ध नहीं है। यही बात पंचाध्यायी के प्रकाशन की है। उसके प्रकाशन में भी हमारा किसी प्रकार का कोई प्रयोजन नहीं है। परमार्थ दृष्टि से ही हमारा यह सत्प्रयत्न है।

इस ग्रंथ के विषय में दो महत्त्वपूर्ण सम्मतियां

इस ग्रन्थ के तैयार हो जाने पर हमने एक आगम निष्ठ परम मुनि भक्त समाज सम्मानित वरिष्ठ विद्वान के पास इस ग्रन्थ को भेजा था, १५ दिन पीछे ग्रन्थ हमारे पास भेजकर और अपना हार्दिक आनन्द प्रगट करते हुए उन्होंने लिखा कि—

यह ग्रन्थ आगम मार्ग का सच्चा प्रकाशक है शास्त्रों की खोज करने और समाज में फैले हुए विवादों को दूर करने के लिए जो आपने परिश्रम किया है वह स्तुत्य है।

प्रत्येक मन्दिर में इस ग्रन्थ का शास्त्र प्रवचन होना चाहिये। तथा प्रत्येक गृहस्थ को इसका स्वाध्याय करना चाहिये। इससे भ्रमशीलों का भ्रम दूर होगा और धार्मिक पुरुषों में दृढ़ता पैदा होगी।

दूसरी सम्मति निरन्तर स्वाध्यायशील एक अनुभवी श्रद्धेय ब्रह्मचारी महोदय की हमें प्राप्त हुई है उन्होंने लिखा है कि—

ग्रन्थ को पढ़कर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है आपसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खींचतान को दूर करने के लिये यह ग्रन्थ आगम के प्रमाणों की सहायता से हितैषी मध्यस्थ का काम करेगा। ग्रन्थ अत्युपयोगी है।

परन्तु इसकी छपाई और कागज ग्रन्थ के अनुरूप नहीं है अक्षर बहुत छोटे हैं। यदि अक्षर कुछ बड़े और कागज चिकना सुन्दर होता तो इस ग्रन्थ रूपी रत्न का बाहरी पिटारा भी सुन्दर और आकर्षक बन जाता। खैर कोई आगम भक्त श्रीमान् इस ग्रन्थ को दुबारा छपावेंगे तो शास्त्रों जैसी छपाई और कागज का वे अवश्य ध्यान रक्खेंगे।

पंचाध्यायी के परिशिष्ठ पर दो शब्द

पंचाध्यायी का परिशिष्ठ— नौवां, दशवाँ, ग्यारहवां इन तीन अध्यायों में लिखा गया है।

नौवें अध्याय में उन सैद्धान्तिक शंकाओं का सप्रमाण समाधान है जो पंचाध्यायी में वर्णित विषयों में उठाई गई है।

दशवें अध्याय में पंचाध्यायी के कर्ता का सहेतुक विवेचन है कुछ विद्वान पंचाध्यायी ग्रन्थ का कर्ता पंडित राजमल जी को बताते हैं। परन्तु शब्दशैली, भावशैली सूक्ष्म एवं गम्भीर विवेचन तथा भाव साम्य और शब्द साम्य आदि से पंचाध्यायी के कर्ता आचार्य मुकुट अमृतचन्द्र सूरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही हो सकते हैं। इसकी सिद्धि अनेक तुलनात्मक प्रमाणों से की गई हैं।

ग्यारहवें अध्याय में उन आगम विरुद्ध स्वतंत्र लिखे गये मन्तव्यों का सप्रमाण प्रतिवाद किया गया है जो पं० फूलचन्द जी सिद्धान्तशास्त्री ने पंचाध्यायी की अपनी बनाई हुई हिन्दी टीका में लिखे हैं।

यह परशिष्ठ पंचाध्यायी में क्यों नहीं छप सका?

यह पंचाध्यायी का तीन अध्यायों में विभक्त परिशिष्ठ पंचाध्यायी से ही सम्बन्ध रखता है। इसलिये नवीन द्वितीया वृत्ति अभी जो प्रकाशित हुई है उसी के अंत में इस परिशिष्ट का छपना अत्यावश्यक था। क्योंकि पंचाध्यायी का स्वाध्याय करने वाले सज्जन परिशिष्ठ की सभी बातों का परिज्ञान उससे कर लेते।

परन्तु पंचाध्यायी का यह दुवारा प्रकाशन श्रीमान् राय सा० सेठ चाँदमल जी पांड्या ने अपने द्रव्य से कराया है। जिन महानुभाव का पंचाध्यायी के कर्ता आदि के विषय में मतभेद है उन्होंने राय सा० को वाध्य किया कि यह परिशिष्ठ पंचाध्यायी के अन्त में नहीं लगाया जाय फलस्वरूप प्रेस में भेजी हुई हमारी परिशिष्ठ कापी श्री पांड्या जी ने प्रेस से मंगाकर हमें सौंप दी और पंचाध्यायी के साथ छपने का निषेध कर दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी विरुद्ध धारणा के कारण कोई२ विद्वान् शास्त्र सम्मत समाधान भी सुनना नहीं चाहते हैं यह खेद की बात है।

यद्यपि पंचाध्यायी की टीका हमने की है। अतः हमारा अधिकार एवं उत्तरदायित्व है कि पंचाध्यायी के विषय में उठाई गई सैद्धान्तिक शंकाओं और उसके कर्ता आदि के सम्बन्ध में सप्रमाण समाधान टीका के अन्त में परिशिष्ठ द्वारा कर देवें। परन्तु राय सा० की अनिच्छा को जानकर हमने यह परिशिष्ठ "आगम मार्ग प्रकाशक" ग्रन्थ में छपा दिया है।

पंचाध्यायी ग्रन्थराज का स्वाध्याय करने वाले एवं अन्य सभी स्वाध्यायशील महानुभाव इस आगम मार्ग प्रकाशक ग्रन्थ का स्वाध्याय अवश्य करें। यह परिशिष्ठ अनेक महत्वपूर्ण शास्त्रीय विषयों का प्रतिपादक होने से अत्युपयोगी है।

आभार प्रदर्शन

आगम मार्ग प्रकाशक ग्रन्थ के छपाने के लिये एक पत्र तो हमने अपने सहोदर छोटे भाई चि० श्रीलाल जी जौहरी को जयपुर लिखा था कि समाज के लिये अतीव हितकारी इस ग्रन्थ को छपने में लगभग तीन हजार रुपये लगेंगे। ऐसा ही एक पत्र श्रीमत्परमपूज्य चारित्र चूड़ामणि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री १०८ आचार्य बिमलसागरजी महाराज को लिखा था हमारे पत्र के उत्तर में जयपुर से भाई श्रीलालजी जौहरी ने लिखा था कि ग्रन्थ छपाने के लिये १०–१२ दिन में रु० भेज रहा हूँ। इसी बीच में परमपूज्य आचार्य बिमलसागरजी महाराज के संकेत से या उनके आदेश से उनके संघ की व्यवस्थापिका श्रीमती ब्र० चित्राबाईजी ने तुरंत दो हजार रुपयों का ड्राफ्ट भेज दिया ग्रन्थ का विस्तार होने से एक हजार रुपये और मगाने को उन्हें लिखा गया।

यह ग्रन्थ श्रीमती ब्र० चित्राबाई जी की ओर से प्रकाशित हुआ है। इस उदारता पूर्ण धार्मिक कार्य के लिये संघ व्यवस्थापिका महोदया उक्त बाईजी को बहुत बहुत धन्यवाद देता है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में मुख्य निमित्त परम पूज्य आचार्य महाराज हैं। उनके ही शुभाशीर्वाद का यह प्रकाशन है। अतः उनके चरणों में हम नत मस्तक हैं। श्री भाई श्रीलाल जी जौहरी ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपनी सद्भावना और उदारता प्रगट की, उसके लिये वे भी प्रशंसा के पात्र हैं। उनका भी धार्मिक कार्यों में यथा साध्य सदैव योग रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी विरुद्ध धारणा के कारण कोई२ विद्वान् शास्त्र सम्मत समाधान भी सुनना नहीं चाहते हैं यह खेद की बात है।

यद्यपि पंचाध्यायी की टीका हमने की है। अतः हमारा अधिकार एवं उत्तरदायित्व है कि पंचाध्यायी के विषय में उठाई गई सैद्धान्तिक शंकाओं और उसके कर्ता आदि के सम्बन्ध में सप्रमाण समाधान टीका के अन्त में परिशिष्ठ द्वारा कर देवें। परन्तु राय सा० की अनिच्छा को जानकर हमने यह परिशिष्ठ "आगम मार्ग प्रकाशक" ग्रन्थ में छपा दिया है।

पंचाध्यायी ग्रन्थराज का स्वाध्याय करने वाले एवं अन्य सभी स्वाध्यायशील महानुभाव इस आगम मार्ग प्रकाशक ग्रन्थ का स्वाध्याय अवश्य करें। यह परिशिष्ठ अनेक महत्वपूर्ण शास्त्रीय विषयों का प्रतिपादक होने से अत्युपयोगी है।

आभार प्रदर्शन

आगम मार्ग प्रकाशक ग्रन्थ के छपाने के लिये एक पत्र तो हमने अपने सहोदर छोटे भाई चि० श्रीलाल जी जौहरी को जयपुर लिखा था कि समाज के लिये अतीव हितकारी इस ग्रन्थ को छपने में लगभग तीन हजार रुपये लगेंगे। ऐसा ही एक पत्र श्रीमत्परमपूज्य चारित्र चूड़ामणि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री १०८ आचार्य बिमलसागरजी महाराज को लिखा था हमारे पत्र के उत्तर में जयपुर से भाई श्रीलालजी जौहरी ने लिखा था कि ग्रन्थ छपाने के लिये १०-१२ दिन में रु० भेज रहा हूँ। इसी बीच में परमपूज्य आचार्य बिमलसागरजी महाराज के संकेत से या उनके आदेश से उनके संघ की व्यवस्थापिका श्रीमती ब्र० चित्राबाईजी ने तुरंत दो हजार रुपयों का ड्राफ्ट भेज दिया ग्रन्थ का विस्तार होने से एक हजार रुपये और मगाने को उन्हें लिखा गया।

यह ग्रन्थ श्रीमती ब्र० चित्राबाई जी की ओर से प्रकाशित हुआ है। इस उदारता पूर्ण धार्मिक कार्य के लिये संघ व्यवस्थापिका महोदया उक्त बाईजी को बहुत बहुत धन्यवाद देता है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में मुख्य निमित्त परम पूज्य आचार्य महाराज हैं। उनके ही शुभाशीर्वाद का यह प्रकाशन है। अतः उनके चरणों में हम नत मस्तक हैं। श्री भाई श्रीलाल जी जौहरी ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में अपनी सद्भावना और उदारता प्रगट की, उसके लिये वे भी प्रशंसा के पात्र हैं। उनका भी धार्मिक कार्यों में यथा साध्य सदैव योग रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्व मंगल माँगल्यं सर्व कल्याण कारकम्
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्

श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
मोरेना (म० प्र०)

श्रुत पंचमी वीर नि० सं० २४९९
ता० ५ जून १९७३ ई०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्तमान युग में मुनि सृष्टि के निर्माता परम गुरू, परमशान्त, महायोगीश्वर
सिद्धान्त शास्त्रों के अनुभवी महाविद्वान, जगत्पूज्य प्रभावक साधुरत्न

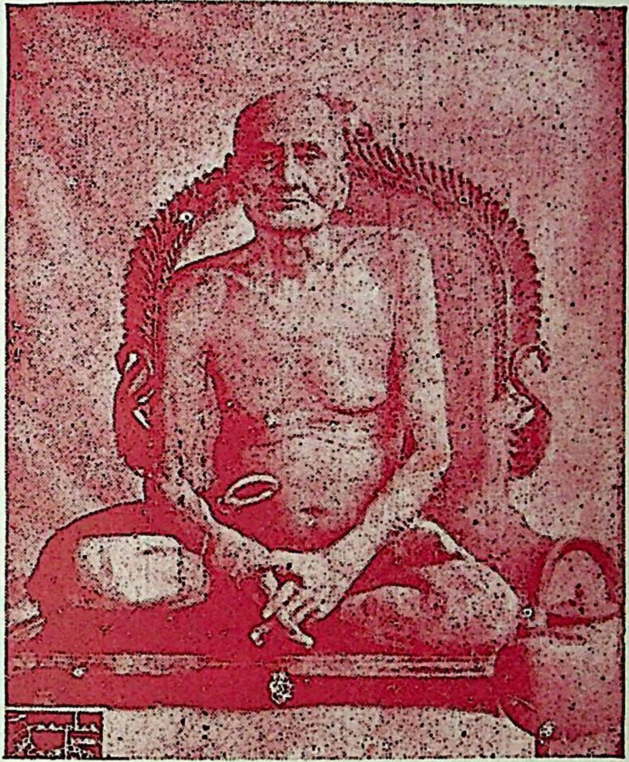

परमपूज्य, लोकवन्द्य, चारित्र चक्रवर्ति, योगीन्द्र चूड़ामणि
श्री १०८ स्वर्गीय आचार्य मुकुट
श्री शान्तिसागर महाराज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

* श्री वर्धमानायनमः *

आगम मार्ग प्रकाशक

प्रमाण, नय, सम्यग्दर्शन आदि का सप्रमाण विशद निरूपण

भूभ्रमण और चन्द्रमा पर राकेट द्वारा पहुंचने की काल्पनिक घोषणा का सप्रमाण प्रतिवाद

आगम पर श्रद्धान किये बिना व्यवहार सम्यग्दर्शन भी नहीं होता है। सर्वज्ञ कथित वीतराग महर्षियों द्वारा प्रतिपादित जिनवाणी पर अटल एवं दृढ़ श्रद्धान करने से ही सम्यग्दर्शन हो सकता है।

जैनदर्शनाचार्य मक्खनलाल शास्त्री तिलक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0. In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

❋ श्री वर्धमानायनमः ❋

आगम मार्ग प्रकाशक

मंगलस्तवन

जिनेन्द्र वन्दना

वीरं विराग सर्वज्ञं त्रियोगेण नमाम्यहम् ।
जगद्धिताय मोक्षस्य मार्गो येन प्रदर्शितः ॥

जिनवाणी वन्दना

जिनवाणि ! नमस्तुभ्यं तीर्थेशमुखनिर्गता ।
विरागैः सूरिभिः प्रोक्ता विश्व कल्याण हेतवे ॥

जिनगुरु वन्दना

सम्पूज्याः कुन्दकुन्दाद्याः आचार्याः मुनि पुंगवाः ।
शान्ति सिन्धु सुधर्माद्या स्तान् वंदे भावतोऽधुना ॥

वीर स्तवन

सुध्यान में लवलीन हो जब घातियां चारों हने ।
सर्वज्ञ वोध, विरागता को पालिया तब आपने ॥
उपदेश दे हितकर, अनेकों भव्य निज सम कर लिये ।
रवि ज्ञान किरण प्रकाश डालो वीर ! मेरे भी हिये ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिनवाणी स्तवन

स्याद्वादनय, षट द्रव्य, गुण, पर्याय और प्रमाण का ।
जड़-कर्म चेतन वन्धका अरु कर्म के अवसान का ॥
कहकर स्वरूप यथार्थ, जग का जो किया उपकार है ।
उसके लिये जिन वाणि ! तुमको वन्दना शतवार है ॥

गुरु स्तवन

धरि कवच संयम, उग्र ध्यान कठोर असि निज हाथले ।
व्रत समिति, गुप्ति, सुधर्म, भावन वीरंभट भी साथ ले ॥
पर चक्र-राग द्वेष हनि, स्वातन्त्र्य निधि पाते हुए ।
वे स्व-पर तारक गुरु-तपोनिधि, मुक्ति पथ जाते हुए ॥

रचियता–
मक्खनलाल शास्त्री
'तिलक' जैन दर्शनाचार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमद्दिगम्बराचार्य शिरोमणि श्रीशान्तिसागरस्वामिनः

चरणसरोजयोः स्तुतिः

(रचयिता—श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक जैनदर्शनाचार्य)

(इन्द्रवज्रा)

१

पूज्यातिपूज्यैर्यतिभिस्सुवंद्यं,
संसार गंभीर समुद्र सेतुं ।
ध्यानैकनिष्ठा गरिमा गरिष्ठं,
आचार्य वर्यं प्रणमामिनित्यम् ।।

२

ध्यानादि सैन्यं परिवर्ध्य पूर्ण,
कर्मारि वर्गं प्रणिहृत्यवेगात् ।
नीरागस्वातन्त्र्यपदे प्रतिष्ठं,
आचार्य वर्यं प्रणमामि नित्यम् ।।

३

योमुख्यसूरिर्मु नि नायकानां,
आचार पारं गतवान्समग्रं ।
ध्यानप्रभावेणप्रबृद्धदीप्ति
आचार्यं वर्यं प्रणमामिनित्यम् ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४

दुर्जेयकं द्वादशधा कषायं,
जित्वानिजात्मानुभवैकशुद्धया ।
षष्ठे गुणे सप्तमके गतंतं,
आचार्य वर्यं प्रणमामिनित्यम् ॥

५

अभ्यन्तरोवाह्य उपाधिभारः,
दूरीकृतोयेनवितृष्णभावात् ।
दगम्बरं सुन्दर दिव्यकायं,
आचार्य वर्यं प्रणमामिनित्यम् ॥

६

धर्मामृतंपाययतिप्रभूतं,
योभव्य जीवान् करुणा स्वरूपः ।
स्वात्मस्वरूपं च चकारतेभ्य,
आचार्यं वर्यं प्रणमामिनित्यम् ॥

७

योऽनेकसाधून्विषयेष्वरक्तान्,
निर्ग्रन्थलिंगेविधिनाचकार ।
गुरूपरागोपिचवीतरागः,
आचार्यं वर्यं प्रणमामिनित्यम् ॥

८

महागभीरं विशदी कृतार्थं,
शास्त्राब्धिपारं गतवान् समग्रम् ।
तथापिप्रज्ञामदता विरक्तः,
आचार्यं वर्यं प्रणमामिनित्यम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९

(भुजङ्गप्रयातम्)

यथा कुन्द कुन्दः सुरैर्वंद्यपादः,
अभूत्साधु संसेव्यमान प्रपादः ।
तथैवाधुना लोकपूज्यं यतीन्द्रं,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवंद्यम् ।।

१०

यथा दुष्ट जीवेन घोरोपसर्गाः,
कृताः पार्श्वनाथेत्रिलोकैक पूज्ये ।
तथा दुष्ट लोकोपसर्गंसहिष्णुं,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवंद्यम् ।।

११

यतीनामनेके यथाशिष्यवर्गाः,
प्रभोः कुन्द कुन्दस्यसूरेरभूवन्,
तथैवाधुनासाधुसंदोहशिष्यम्,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवंद्यम् ।

१२

यथा सूत्रचिन्हंहि रत्नत्रयस्य,
पुराभारतेपूर्वपूज्यैर्निरुक्तम् ।
तथैवाधुनासूत्रचिन्हं ददानं,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवंद्यम् ।।

१३

शान्तेरगारं विनष्टारिमारं,
जगत्कज्ञमित्रंगुणाढ्यम्पवित्रं ।
वरिष्ठैः सुपूज्यम् गरिष्ठप्रधानं,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवंद्यम् ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४

पिताभीमगौडामहच्छक्तिशाली,
स्वमातासती सत्यरूपा सुरूपा ।
तयोःपुत्ररत्नंजिताक्षारियत्नं,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवंद्यम् ॥

१५

जगद्वल्लरींकृन्तयित्वा कृपाणीं,
गृहीत्वा शुभध्यानरूपांस्वभावाम्
प्रपेदे गुणंसप्तमञ्चैकहीनं,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवंद्यम् ॥

१६

गुणारामनीरं भवाम्भोधितीरं,
सदानिर्विकारं गृहीतात्म सारम् ।
कषायादिदुर्दण्डदोर्दण्डभेदं,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवंद्यम् ॥

१७

महद्ध्याननिष्ठं महत्सुप्रकृष्टं,
महर्षि प्रतिष्ठं वचोयस्यमिष्टम् ।
चिदानन्दरूपेस्वरूपे प्रविष्टं,
भजेसूरिवर्यम् सदासाधुवंद्यम् ॥

१८

(वसन्ततिलका)

निर्ग्रन्थसाधुमधुप व्रजराजमाना,
त्वत्पादपद्मकलिका धवलाभिरामा ।
नक्षत्र वृन्दपरिवेष्टित चन्द्रबिम्बः,
देवैः सुदृष्टिशुचिभिर्मघवायथावा ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९

यत्पादसेवनरता: खलुभव्यलोका:,
संसारतोझटिति यांतिविरक्ति बुद्धिम् ।
यद्गी: प्रशस्यमहनीय सहेतुका च,
पंचाननस्य समतां सदसि व्यनक्ति ॥

२०

मिथ्यान्धकार पटलं प्रविहाय शीघ्रं,
तत्त्वप्रसारकिरणै: सुखदै: समन्तात् ।
श्रद्धापरायण जनाम्बुज कोरकांश्च,
सन्तोषयन्विगततापरविस्त्वमेव ॥

२१

मिथ्यान्धकारपरि मर्दनरश्मि जालं,
ज्ञानप्रकाशित जगत्प्रविकाशिसूर्यम् ।
ध्यानैक ताननियतं मुनिराजसेव्यं,
आचार्य वर्यं गुरु पादमहं नमामि ॥

२२

(उपेन्द्रवज्रा)

गुणास्त्वदीया: धवला: गभीरा:,
सुरेन्द्रनागेन्द्र नरेन्द्र पूज्या: ।
विभांति सूरे स्तवदिव्यदेहे,
ततोहिपूज्य: खलु विश्वलोके ॥

२३

(शालिनी)

दर्शं दर्शं सूरि शान्त स्वरूपं,
पायं पायं वाक्यपीयूषधाराम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्मारं स्मारं तद्गुणान् स्पृष्ट पादाः,
जाताः शान्ताः साधवोक्षेष्वरक्ताः ॥

२४

चित्तेचित्ते शान्तमूर्तेः सुबोधः,
बोधे बोधे तत्स्वरूपानुरूप्यम् ।
रूपे रूपे स्वात्मवृत्तौप्रवृत्तिः,
वृत्तौ वृत्तौ कुन्थुनेमीन्दुवीराः ॥

२५

(शार्दूलविक्रीडितम्)

आसीद्यः खलु दक्षिणायनकरः पश्चादुदीच्यांगतः,
ज्ञानध्यानतपःप्रभामयवपुः संधारयन्दीप्तिमान् ।
सम्यग्ज्ञानमरीचिभिर्विकसिता आशाश्रयेनाखिलाः,
सोऽयंसूरिरपूर्वभानुरुदितो लोके सदा शान्तिदः ॥

२६

(द्रुत विलम्बितम्)

सुखदयाखिल वोधविधानया,
विधिविशाखि कठोर कुठारया ।
विगत राग गुरु जिनदीक्षया,
तरतितारयतिभ्रमजालतः ॥

२७

(अनुष्टुप्)

आचार्यं वर्यसंघेशः पंचाचारधराग्रणी ।
मुनीन्द्रैर्वन्द्यपादाब्जः पातुनः शान्तिसागरः ॥

२८

तोताराम तनूजो लालारामस्य शास्त्रिणो भ्राता ।
शास्त्री मक्खनलालोऽकार्षीत्स्तोत्रं स्वभक्तितो रम्यम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर श्रीमत्पंडित लालाराम शास्त्री रचित आचार्य स्तुति

मूलोत्तरगुणजलधिं तत्पूरस्य च निशाकरं शान्तम् ।
शीलाब्धिं धर्माब्धिं करुणाब्धिं शांतिसागरं वन्दे ॥१॥

वन्दे पञ्चमहाव्रतवित्तं, पञ्चसमितिपरिपालनचित्तम् ।
वन्देगुप्तित्रयप्रविलीनं, षट्कावश्यकनिरतमहीनम् ॥२॥

पञ्चेन्द्रियदण्डनवरवीरं, वन्दे केशलोचदृढ़धीरम् ।
वन्दे सकृद्भोजिनम् नाथं, किम्बा निराहारव्रतनाथम् ॥३॥

खड्गासनकृतभोजनमीशं, वन्दे पत्कजनमितसुरेशम् ।
नग्नं भूमिशायिनं वन्दे, निर्विकारमनगारं वन्दे ॥४॥

स्नान-दन्तधावनपरिहीनं, अष्टाविंशतिमूलव्रतिनम् ।
उत्तरगुणजलनिधिमभिवन्दे,दशधाधर्मान्वितमपिवन्दे॥५॥

अनुप्रेक्षाचिन्तनवरदक्षं, विद्वत्परिषद्वेष्टितवक्षम् ।
द्वाविंशतिपरिषहसहनेच्छं महोपसर्गविजयपरिदक्षम् ॥६॥

पञ्चाचारचारिणं शान्तं, देहद्युतिकञ्चनागिरिकांतम् ।
रत्नत्रयशोभितवरदेहं, वन्दे षट्त्रिंशद्गुणगेहम् ॥७॥

वन्दे, भवसागरखरकिरणं, भवसंतप्ततनूभृच्छरणम् ।
नागोपद्रवजायिनं वन्दे, कीटोपद्रवधीरं वन्दे ॥८॥

धर्मचक्रनेमिं वरवीरं, वन्दे भक्तवत्सलं धीरम् ।
धर्मध्यानपारगं वन्दे, भव्यसरोरुहभानुं वन्दे ॥९॥

द्वादशतपोनिधिं जिनभक्तं, वन्दे जिनानुजं गृहमुक्तम् ।
लालारामार्चितपदकान्तिं, वन्दे स्तवीम्युपास्ये शान्तिम् ॥१०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ प्रथम अध्याय

प्रमाण नयों का स्पष्टीकरण

प्रारम्भ में प्रमाण और नयों का स्वरूप हमने इसलिये लिखा है कि दिगम्बर जैन सिद्धान्त को प्रमाणिक एवं यथार्थ सिद्ध करने वाले प्रमाण और नय हैं। उनके बिना समझे अनेक शिक्षित भी पाश्चात्य विज्ञान की आनुमानिक (अंदाजिया) खोज एवं प्रयोगों पर विश्वास कर लेते हैं, और सर्वज्ञ प्रतिपादित तथा प्रत्यक्ष-दर्शी अवधिमनः पर्यय ज्ञानियों एवं श्रुतकेवलियों द्वारा रचित शास्त्रों के कथन पर विश्वास नहीं करते हैं। ऐसी विपरीत समझ एवं धारणा से वस्तु तत्व का यथार्थ बध नहीं होता है। इसलिये प्रमाण ज्ञान से उन मिथ्या धारणाओं का भले प्रकार खण्डन हो जाता है। कौन संभव है कौन असंभव है इस बात का परिज्ञान प्रमाण के समझने से ही होता है।

इसी प्रकार दिगम्बर जैन सिद्धान्त एवं दि० जैन धर्म का विपरीत प्रचार भी कुछ दि० जैन नामधारी कर रहे हैं उससे सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तथा इस रत्नत्रय मोक्षमार्ग के साधक देव शास्त्र गुरु इन तीनों का अपलाप किया जारहा है। इससे उनके प्रति श्रद्धा भक्ति का अभाव होता है इससे सिद्धान्त और धर्म दौनों की अवहेलना होती है और समाज का पूरा अहित होता है इसलिये निश्चय और व्यवहार नय का इस ग्रन्थ में हमने स्पष्टीकरण किया है। दि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन धर्म पर दृढ़ श्रद्धान नहीं रखने वाला समाज का कुछ अंग सर्वज्ञ की वाणी पर भी विश्वास नहीं करता है। लोक रचना भी पाश्चात्य वैज्ञानिकों की अधूरी खोज के अनुसार मानने लगता है। ऐसी दशा में नरक स्वर्ग आदि का अस्तित्व ही संदिग्ध कोटि में वह समझता है। परिणाम यह होता है कि पुण्य पाप आदि क्रियाओं के फल में भी उसका विश्वास नहीं रहता है। इन्हीं सब बातों को ध्यान में लेकर हमने प्रमाण एवं नयों का स्पष्टीकरण करना अत्यावश्यक समझा है।

इसके अतिरिक्त कोई विद्वान निश्चय सम्यग्दर्शन को भी जो रत्न त्रयात्मक आत्मीय विकास में मूल धर्म है, धर्म नहीं मानते हैं और उसमें किसी प्रकार का त्याग एवं चारित्र नहीं मानते है, कोई विद्वान व्यवहार चारित्र में अष्ट मूल गुणों का पालन करना आवश्यक नहीं मानते हैं अतः इन सभी बातों पर शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा हमने इस ग्रन्थ में पूरा प्रकाश डाला है। इसलिये इस ग्रन्थ का नाम "आगम मार्ग प्रकाशक" यह नाम सार्थक है।

प्रमाण और नयों का सप्रमाण एवं सहेतुक संक्षिप्त सार

दि० जैन सिद्धान्त में वस्तु की अकाट्य अबाधित सहेतुक एवं सयुक्तिक यथार्थ सिद्धि के लिए प्रमाण और नय ये दो सम्यज्ञान बताये गये हैं। इन्हीं प्रमाण और नयों को अनेकान्त एवं स्याद्वाद धर्म कहा जाता है। मति श्रुत ज्ञानियों को पदार्थों का प्रत्यक्ष बोध (असहाय अतींद्रिय) तो होता ही नहीं है। ऐसी अवस्था में दूरवर्ती सुमेरु पर्वत विदेह क्षेत्र असंख्यात द्वीप समुद्र। सूक्ष्म धर्म अधर्म आकाश काल, परमाणु आदि तथा अन्तरितभूत भविष्यत कालवर्ती राम रावणादि महापद्म तीर्थंकर आदि का बोध कैसे हो, उनके यथार्थ सद्भाव का परिज्ञान कैसे हो सके, इसके लिये साधक, प्रमाण ज्ञान है। केवल ज्ञान पूर्ण प्रमाण ज्ञान है। वह परिपूर्ण निरावरण है। केवल ज्ञानी सर्वज्ञ भगवान समस्त द्रव्यों समस्त गुणों समस्त पर्यायों को अतीन्द्रिय ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वात्म प्रत्यक्ष करते हैं। जीव पुद्गल ये दो द्रव्य अनन्तानन्त हैं। धर्म अधर्म आकाश ये तीन द्रव्य एक-एक हैं। काल द्रव्य असंख्यात हैं। प्रत्येक द्रव्य में अनन्त गुण हैं। अर्थात अनन्त गुणों का पिण्ड ही द्रव्य है। गुण और द्रव्य में कोई भेद नहीं है। द्रव्य अथवा गुण समूह ये दोनों नाम पर्यायवाची हैं। इन समस्त द्रव्यों की और अनन्त गुणों की भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालवर्ती प्रति समय होने वाली पर्यायों को केवल ज्ञानी सर्वज्ञ युगपत् एक समय में प्रत्यक्ष जानते हैं। भगवान केवली का ज्ञान पूर्ण प्रत्यक्ष प्रमाण है। उसी प्रमाण का फल भगवान की दिव्य ध्वनि है। उस इच्छा रहित दिव्य ध्वनि में भव्य जीवों के परम पुण्योदय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र तीन लोक और द्रव्यों का स्वरूप एवं मोक्ष मार्ग का निरूपण सर्वांग से प्रगट होता है। भगवान की वाणी प्रातः मध्यान्ह सायंकाल और अर्धरात्रि इन चार समयों में खिरती है। समवसरण में बैठे हुए मनुष्य, देव, तिर्यन्चों के कानों में पहुंचते ही वह दिव्य ध्वनि अनक्षरी भाषा साक्षरी बन जाती है और अपनी अपनी भाषा में सभी जीव उसे समझ लेते हैं। इसलिये भगवान की वाणी को अनुभव तथा सत्य बचन कहा गया है। अनक्षरी भाषा होने से उसे बिना समझे सत्य या असत्य नहीं कहा जा सकता है। कानों में पहुँचने पर वह सत्य रूप में प्रकट हो जाती है समवसरण में अभव्य, शूद्र और द्रव्य मिथ्यादृष्टि नहीं जाते हैं। यह नियम है। भाव मिथ्यादृष्टि तो जाते हैं। द्रव्य मिथ्यादृष्टियों का अभिमान समवसरण के बाहर स्थित मानस्तम्भ के देखते ही दूर हो जाता है।

भगवान की दिव्य ध्वनि को चार ज्ञान के धारी गणधर देव भले प्रकार समझ लेते हैं। समवसरण में बैठे हुए भव्य जीवों के पूछने पर उस वाणी का रहस्य विस्तार से गणधर देव समझा देते हैं।

शास्त्रों की प्रमाणता का हेतु :—

गणधर देव श्रुत केवली अंग ज्ञानधारी आचार्य प्रत्याचार्यों ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो शास्त्र रचे हैं जिनमें नरक स्वर्ग असंख्यात द्वीप समुद्र एवं तीन लोक का स्वरूप छह द्रव्य एवं मोक्ष मार्ग का कथन है। वह सब सर्वज्ञ देव के प्रत्यक्ष प्रमाण का ही सार है। गणधर देव, मनः पर्यय, अवधि ज्ञानी, श्रुत केवली आदि ने सर्वज्ञ वाणी के कथनानुसार ही अत्यन्त संक्षिप्त शास्त्रों की रचना की है जो तत्व स्वरूप तथा लोक रचना आदि का वर्णन सर्वज्ञ की दिव्य ध्वनि में कहा गया है। उन्हीं सब बातों का साक्षात् स्वात्म प्रत्यक्ष अतींद्रिय ज्ञान से अवधि ज्ञानी और मनः पर्ययः ज्ञानी भी कुछ हद तक करते हैं। द्वाद शांग वेत्ता श्रुत केवली उन्हीं सब पदार्थों को परोक्ष ज्ञान द्वारा जानते हैं। इसीलिये गोम्मटसार में सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य नेमीचन्द स्वामी ने कहा है:-

सुद केवलं च णाणं दोण्णापि सरिसाणि होत्ति वो हादो ।
सुद णाणं च परोक्खं पच्चक्खं केवलं णाणं ॥

अर्थ :— श्रुत ज्ञान और केवल ज्ञान दौनों ज्ञान समान हैं। भेद इतना ही है कि श्रुत ज्ञान परोक्ष है और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है। परंतु यह कथन बहुत ही स्थूल दृष्टि से कहा गया है। श्रुत केवली के ज्ञान में सभी पदार्थ स्थूल रूप में परोक्ष रूप में जान लिये जाते हैं। यही दृष्टिकोंण है।

किन्तु वास्तविक बात यह है कि केवल ज्ञान के अनन्त वे भाग मात्र ज्ञान श्रुत केवली को परोक्ष रूप में होता है, केवल ज्ञानी तो परमाणु के अनन्तवें भाग तक प्रत्यक्ष करते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश आदि अमूर्तिक पदार्थों को उनके गुणों को और पर्यायों को साक्षात् करते हैं। श्रुत ज्ञानी तो परोक्ष ज्ञान द्वारा मोटे रूप में जानते हैं। केवल ज्ञानी का प्रत्यक्ष ज्ञान यहां तक अपार एवं अगाध है कि वर्तमान लोक अलोक जैसे अनन्तों लोक होते हैं तो वे उन्हें भी प्रत्यक्ष करते।

शास्त्र रचना में तो स्थूल रूप में उन्हीं पदार्थों का थोड़ा सा कथन है। शब्दों की संख्या ही संख्यात है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्यों ने बताया है कि ऐसे अनन्त पदार्थ हैं जिनका उल्लेख करना सर्वथा शक्य नहीं है। और जिनका अन्य संकेतादि से बोध कराया जा सकता है। वे उनके अनन्त भाग मात्र हैं। और जो शब्दों द्वारा कहे जा सकते हैं वे संकेत आदि से जानने योग्य पदार्थों से भी अनन्तवें भाग हैं। इसका स्पष्ट अर्थ इतना ही है कि शब्दों द्वारा अक्षरात्मक शास्त्रों की रचना में समस्त तत्व और पदार्थों का अति स्थूल रूप में एवं अति संक्षेप रूप में सार है।

इस उपर्युक्त समस्त कथन से यह बात सिद्ध होती है कि शास्त्र रचना का मूल स्त्रोत तीर्थंकर सर्वज्ञ भगवान की दिव्य ध्वनि है। उसके आधार पर गणधर देव मनः पर्यय ज्ञानी एवं अवधि ज्ञानियों का एक देश साक्षात् प्रत्यक्ष ज्ञान है। और श्रुत केवली तथा अंग ज्ञानियों का परोक्ष ज्ञान है। इसलिये आचार्यों द्वारा रचे गये चारों अनुयोगों के शास्त्र पूर्ण प्रमाण रूप हैं। वीतरागी-महर्षियों ने केवल भव्य जीवों के कल्याण एवं मोक्ष प्राप्ति की सद्भावना से शास्त्रों की रचना की है। अतः दिगम्बर जैन शास्त्रों का कथन प्रमाण रूप है। वह अवाधित सहेतुक सयुक्तिक एवं अकाट्य है।

श्रद्धानी बनो

यद्यपि शास्त्राधार से परीक्षा प्रधानी को प्रमुखता दी गई है, जो परीक्षा पूर्वक दिगम्बर जैन धर्म को ग्रहण करते हैं। वे उसे सौ टंच सोने के समान पाकर स्वात्म साधन में दृढ़ता से लग जाते हैं। जैसे आचार्य विद्यानन्दि (पात्र केसरी) थे जिन्होंने परीक्षा पूर्वक जैन धर्म को ग्रहण कर अष्ट सहस्त्री श्लोक वार्तिक जैसे गंभीर शास्त्रों की रचना की है।

यदि परीक्षा करने की सामर्थ्य एवं योग्यता नहीं है तब श्रद्धा पूर्वक ही शास्त्रों के स्वाध्याय से अपना कल्याण कर लेना चाहिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्रों के कथन में अपनी अज्ञानता से कुतर्क एवं निराधार शंका करना अपने कल्याण में स्वयं बाधक बनना है।

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्वं हेतु भिर्नैव हन्यते।
आज्ञा सिध्दंच तन्द्राह्य नान्यथा वादिनो जिना:॥

अर्थात जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए पदार्थ किन्हीं भी हेतुओं से खण्डित नहीं हो सकते हैं। वे प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणों से सुसिद्ध हैं। अत: उन्हें जिनेन्द्र की आज्ञा समझकर उनका श्रद्धान कर लेना चाहिये क्यों कि जिनेन्द्र देव सर्वज्ञ और वीतराग प्रत्यक्ष दृष्टा ज्ञाता हैं। इच्छा रहित हैं। उनके द्वारा जो पदार्थ कहा गया है वह यथार्थ सत्य है।

वैज्ञानिकों की खोज पर अन्धविश्वास–

कुछ पढ़े लिखे लोग ऐसे भी हैं। जो आधुनिक वैज्ञानिकों की खोज एवं उनके चमत्कारक कार्यों को देखकर शास्त्रों की बातों पर श्रद्धा या विश्वास नहीं करते आगम के कथन पर श्रद्धा नहीं करने से मिथ्यात्व का पोषण होता है अत: संक्षेप में इन विषयों पर प्रकाश डालना उचित है। वैज्ञानिक कहते हैं कि पृथ्वी गोल है और घूमती भी है। तर्क यह दिया जाता है कि हम जहां से चलते हैं वहीं पर आ जाते हैं। इसलिये गोल है परन्तु जहां के तहां आ जाते हैं। यह कोरा भ्रम है। मोरेना या ग्वालियर से बम्बई जाने वाला बम्बई से लौटकर मोरेना ग्वालियर आजाता है। तो क्या इससे इस क्षेत्र की गोलाई सिद्ध होती है। फिर दक्षिण-उत्तर में जहां समुद्र और उनकी तह में पहाड़ हैं। वहां कौन गया है। या जासकता है। जिसमें गोल होने का प्रमाण सिद्ध होसके। जहाज का मस्तूल (ध्वज दण्ड की चोटी) समुद्र में पहले थोड़ी दीखती है। फिर पूरी दीखने लगती है। इसी से पृथ्वी गोल सिद्ध की जाती है परन्तु ऐसा मानने से पृथ्वी का व्यास और परिमाण कितने वर्ग मील रह जायगा? जबकि पांच या दस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिनट में या आधा घंटा में ही मस्तूल पूरा दीखता है। इस पर उन्हें गहराई से विचार करना चाहिये। फिर यदि पृथ्वी गोल है। तो नदियों का बहाव किधर से किधर होगा ? यह भी समझने की बात है। गोलाई के प्रमाण में कहा जाता है कि अमरीका ठीक आगरा के नीचे है, परन्तु इसका सच्चा प्रमाण तभी हो सकता है जब कि ऊपर से नीचे बड़ा छिद्र करके गोला डाला जाय वह आगरा से अमरीका पहुंच जाय। इतना प्रमाण मिले बिना पाश्चात्य वैज्ञानिकों की बात कैसे मानली जाय ? फिर पृथ्वी को गोल एवं घूमती हुई मानने पर नरक स्वर्ग का क्षेत्र कहां होगा ? और उसका व्यास या परिधि कितने वर्ग मील ठहरेगी ? यह भी तो सोचना होगा। या ऐसे तर्क शास्त्रियों की दृष्टि में नरक स्वर्ग आदि हैं ही नहीं।

एक महान् वैज्ञानिक का अभिमत :–

अमरीका के एक विशिष्ट आविष्कारक वैज्ञानिक विद्वान ने आज से २५–३० वर्ष पहले अपने संयुक्तिक लेखों द्वारा समाचार पत्रों में प्रकट किया था कि पृथ्वी घूमती है और वह गोल है यह मानना गलत है। पृथ्वी स्थिर है। गोल भी नहीं है। सूर्य चन्द्र चलते हैं पूर्व दिशा से चलकर सन्ध्या में सूर्य पश्चिम दिशा में पहुंच जाता है। पृथ्वी नहीं चलती है। आज तक किसी विद्वान ने उसका खण्डन नहीं किया।

पहले इन वैज्ञानिकों की खोज में ग्रीक और अमरीका भी नहीं आसके थे। तब तक उन्होंनें ग्रीक और अमरीका को छोड़कर उतना ही पृथ्वी का क्षेत्र मान लिया था। परन्तु पीछे उनकी खोज में ग्रीक और अमरीका भी आ गई। इन बातों से वैज्ञानिकों की खोज पर विश्वास कर लेना और अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष दृष्टा और अवधि मनः पर्यय प्रत्यक्ष ज्ञानी तथा वीतराग श्रुत केवली आदि महर्षियों के कहे हुए शास्त्रों पर विश्वास नहीं करना, यह कर्मोदय जनित बुद्धि विकार ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माना जायगा। स्वाध्याय शील जैन महानुभाव सूर्य चन्द्र और नक्षत्र आदि ज्योतिषी विमानों को स्थिर (भ्रमण नहीं करने वाले) कभी नहीं मान सकते हैं। कारण ज्योतिषी देवों के विमान सदैव भ्रमण करते रहते हैं। उन विमानों के वाहक देव अल्प पुण्यधारी हैं। वे उन विमानों को खींचने वाले देव (घोड़े, हाथी आदि के समान) सदैव नियमित रूप से भ्रमण कराने में ही अपनी आयु पूरी करते हैं। इसी के प्रमाण में तत्वार्थ सूत्रकार आचार्य उमास्वामी आज से दो हजार वर्ष पहिले लिख गये हैं :—

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके

अर्थात् ज्योतिषी देव मनुष्य लोक में निरन्तर एवं सदैव सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करते रहते हैं। ११२१ (ग्यारह सौ इक्कीस) योजन (दो हजार कोस का एक योजन होता है) मेरु पर्वत से दूर रहकर मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं।

राजवार्तिक ग्रन्थ में श्री मत् भट्टाकलंक देव आचार्य ने इस शंका का समाधान किया है कि ज्योतिषी देव सूर्य-चन्द्र आदि गमन नहीं करते हैं क्योंकि गमन करने का कोई कारण नहीं है इस शंका के समाधान में उन्होंने लिखा है कि–

गति रता हि आभियोग्य देवा बहन्तीति कर्मणां फलम् ।
तेषां वैचित्र्येण पच्यंते तत स्तेषां गति परिणत मुखेनैव कर्म फल
मव वोद्धव्यम् ॥

अर्थः— ज्योतिषी देव सूर्य चन्द्र आदि, आभियोग्य जाति के देवों द्वारा सदैव गमन करते हैं। आभियोग्य देवों का कर्म फल ऐसा ही है।

पृथ्वी घूमती है और गेन्द के समान गोल है। इस भ्रम पूर्ण मान्यता का बहुत विस्तार और सहेतुक खण्डन श्लोक वार्तिक ग्रन्थ में आचार्य पात्र केसरी (आचार्य विद्यानन्दि पुरातन आचार्य) ने किया है वे लिखते हैं:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरु प्रदक्षिणा नित्य गतयः स्विति निवेदनात् ।
नैव प्रदक्षिणा तेषां कदाचित्कीष्यते न च ॥
गत्यभावोति चा निष्टं यथा भूभ्र वादिनः ।
भुवो भ्रमण निर्णीति विरह स्योप पत्तितः ॥

अर्थः—सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिषी देवों का गमन कभी-कभी होता हो सो नहीं है अर्थात सदैव होता रहता है। पृथ्वी को घूमती हुई और ज्योतिषी देवों का भ्रमण नहीं मानने वाले मतान्तरों का कहना अनिष्ट है। वह सिद्ध नहीं होता है। आगे श्लोक वार्तिककार आचार्य देव कहते हैं:—

नहि प्रत्यक्षतो भूमेर्भ्रमण निर्णीत रस्ति स्थिरतयै वानु भवनात् ।
न चायं भ्रान्तः सकल देश काल पुरूषाणां तद्भ्रमणा प्रतीतेः ॥

अर्थः—पृथ्वी घूमती है ऐसा निर्णय प्रत्यक्ष से तो होता नहीं है। किन्तु पृथ्वी स्थिर है ऐसी ही प्रतीति सभी लोग करते हैं कोई ऐसा हेतु भी नहीं है जिससे पृथ्वी का घूमना सिद्ध हो सके। उक्त जैनाचार्य ने यह भी स्पष्ट किया है कि यदि पृथ्वी को गोल मानोगे तो पूर्वा पर (पूर्व पश्चिम) समुद्र में जाने वाली नदियों की क्या दशा होगी। वे नदियां किस दिशा से किस दिशा में गमन करेंगी। ऐसा निर्णय पृथ्वी को गोल मानने पर कैसे हो सकेगा ?

जैनाचार्य यह भी बताते हैं कि दर्पण के तल के समान भूमि को जैन सिद्धान्त नहीं मानता। क्योंकि दीर्घ समय में पृथ्वी ऊंची नीची भी हो जाती है। जल का स्थल और स्थल का जल एवं पहाड़ तथा समतल भी हो जाता है।

फिर यदि पृथ्वी घूमती है और गोल है तो गर्मी और जाड़े तथा चौमासे में दिन रात की जो नियमित व्यवस्था कि गर्मी में दिन वड़ा होता है, जाड़े में रात्रि बड़ी होती है। इन दोनों मौसमों के मध्य में दिन और रात समान होते हैं। यह व्यवस्था कैसे बनेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये यह सब निर्णीत व्यवस्था सूर्य चन्द्र के भ्रमण से एवं पृथ्वी के स्थिर रहने से ही सिद्ध होती है। यह अनुमान भी सूर्य चन्द्रमा की गति का साधक है।

सूर्या चन्द्रमसौ गति मन्तौ देशादेशान्तरोपलब्धे :–

अर्थात् सूर्य चन्द्रमा गमन करते हैं क्योंकि उनकी एक स्थान से दूसरे स्थान में उपलब्धि होती है। इसका खुलासा यह है कि प्रातः सूर्य पूर्व दिशा से उदित होता है और शाम के समय पश्चिम दिशा में उसका अस्त देखा जाता है। यदि सूर्य गमन नहीं करता हो तो पूर्व से पश्चिम में कैसे चला जाता है। यह सभी जगत के लोग प्रत्यक्ष देखते हैं।

एक बात यह भी सर्व प्रत्यक्ष है कि सूर्य के भ्रमण के कारण ही मनुष्य की छाया भी प्रातः मध्यान्ह और संध्या में घटती-बढ़ती हुई सदैव नियमित रूप से दीखती है। इस नियमित व्यवस्था का कारण यह है कि सूर्य के गमन का चार क्षेत्र (भ्रमण की गलियां) १८४ हैं। इन्ही गलियों में वह गमन करता है। और जब दक्षिणायन होता है। तब लवण समुद्र तक चला जाता है। तब यहां पर शीत (ठण्ड) बढ़ जाता है। और जब सूर्य उत्तरायण (उत्तर की ओर) बढ़ता है तब यहां तीव्र गर्मी बढ़ जाती है। यह बात सूर्य के गमन से ही सिद्ध होती है। सूर्य का चार क्षेत्र (गमन क्षेत्र) इस प्रकार है :–

जम्बू द्वीप के भीतर एक सौ अस्सी योजन और बाहरी क्षेत्र अर्थात् लवण समुद्र के तीन सौ तीस योजन ऐसे दौनों मिलकर पांच सौ दश योजन प्रमाण सूर्य का चार क्षेत्र कहलाता है भारत क्षेत्र और बाहरी भाग के चार क्षेत्र में सूर्य के एक सौ चौरासी मार्ग (गलीं) हैं।

जम्बू द्वीप में दो चंद्र और दो सूर्य हैं। वैज्ञानिक लोग एक ही चंद्रमा समझते हैं। यह भी सिद्धान्त का विरोध है दूसरी बात यह है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि चंद्रमा एक स्थान में ठहरा हुआ नहीं है। सूर्य और चंद्रमा दोनों ही भ्रमण करते हैं। वे सदैव नियम से प्रतिदिन सुमेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देते रहते हैं।

ऐसी अवस्था में चंद्रमा पर उतरना और वहां पर राकेट को ठहराना ये सब बातें असंभव हैं चंद्रमा और सूर्य की गति भी बहुत तीव्र है। क्षण भर में हजारों योजन गमन करते हैं इसलिये वैज्ञानिकों के राकेट तिरछे जाकर किसी ऊंचे पर्वत की चोटी पर पहुंचते हैं और उसी को चंद्रकक्ष के नाम से प्रसिद्ध करते हैं। चंद्रकक्ष का अर्थ भी चंद्रमा की परिधि से लाखों मील दूर वर्ती क्षेत्र है।

चंद्रलोक में गये हुए यात्रियों का वक्तव्य

चंद्रलोक में पहले तो साधारण यात्री गागरिन आदि गये थे। उन्होंने भारत में आकर कहा था कि हम लोग चंद्रकक्ष तक गये थे। चंद्रमा पर पहुँचने में अभी बहुत प्रयत्न करने पड़ेंगे। अभी तो चंद्रमा लाखों मील दूर है। ये समाचार देहली से प्रकाशित दैनिक पत्र नवभारत टाइम्स में छपे थे परन्तु अबकी वार भूगर्भ वैज्ञानिक और इंजीनियर वैज्ञानिक चंद्रलोक की यात्रा पर अपोलो १७ द्वारा गये थे। उन वैज्ञानिकों ने अपने वक्तव्य में इस प्रकार कहा है—

"अपोलो १७ के चंद्रयात्री यूजीन सर्जन तथा हेरसिन सिमिट आज जब चद्रमा की चट्टानों से भरी एक घाटी में उतरे तो उन्होंने चंद्रमा के उस स्थान को अविश्वनीय बताया और चंद्रमा के इतिहास में अधूरे पन्नों को पूरा करने के लिये अपनी वैज्ञानिक खोज आरम्भ करदी,,

चंद्रमा के स्थान को जो पहले यात्रियों द्वारा बताया गया था अविश्वनीय बताना और चंद्रमा के इतिहास के पन्नों को अधूरे बताना यह सिद्ध करता है कि चंद्रमा तक अभी नहीं पहुँचे हैं खोज का प्रयत्न चालू है। आगे और पढ़िये—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चंद्रमा की घाटी व पहाड़

"अपने चंद्रयान से उतरने के बाद सर्जन ने चारों ओर देखा और उसे चंद्रमा पर पहाड़, घाटियां, गड्ढे आदि नजर आये

चंद्रयात्रियों ने पहला काम अपनी चंद्रगाड़ी को जोड़ने का किया यह गाड़ी उनको चंद्रमा की घाटियों व पहाड़ों में २० मील से भी अधिक की दूरी पर लेजायगी,, (नवभारत टाइम्स देहली) ता० १३ दिसम्बर १९७२) पहाड़, घाटियों, गड्ढे आदि में घूमने से यह बात उन्हीं चद्रयात्रियों द्वारा स्पष्ट हो जाती है कि वे ऊपर सीधे नहीं गये हैं किंतु तिरछे किन्हीं ऊंची पहाड़ियों में गये हैं। और भी पढ़िये—

चन्द्रमा पर नारङ्गी मिट्टी मिली

"समिट ने जब चंद्रमा के एक क्रेटर शार्टली किनारे मिट्टी को कुरेदा तो उसे नारङ्गी मिट्टी नजर आई तुरंत उसने तथा सर्जन ने एक खाई खोदकर उक्त असाधारण मिट्टी के नमूने लेने आरम्भ कर दिये वह मिट्टी ज्वालामुखी से निकली प्रतीत हुई।

मिट्टी अपोलो १७ के दूसरे चंद्र विचरण के दौरान आधे रास्ते में मिली

समिट ने कहा कि यह मिट्टी आक्सीकृत रेगिस्तानी मिट्टी की तरह दीखती है।

अंतरिक्ष संस्था के मुख्य भू रसायन विद् डाक्टर राविनवंट ने कहा कि— चंद्रयात्रियों को शार्टरी क्रेटर तक भेजने का उद्देश्य यही था वह क्रेटर ज्वालामुखी से बना मालूम होता है।,,

(नवभारत टाइम्स देहली ता० १४ दिसम्बर १९७२) ऊपर के वक्तव्यों को पढ़ने से यह खुलासा हो जाता है कि चंद्रमा की खोज में चंद्रलोक में जाने वाले यात्री मिट्टी पहाड़ों से भर लाये हैं और उसे ज्वालामुखी पहाड़ की मिट्टी और रेगिस्तान की मिट्टी उन्होंने बताया है। मुख्य भू रसायन वेत्ता डाक्टर राविनवंट ने भी यह अंदाज प्रगट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया है कि वह क्रेटर ज्वालामुखी से बना मालुम होता है।

इन सब वक्तव्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिकों की खोज को कोई निर्णीत बात नहीं माना जा सकता है वे स्वयं अंदाजा और संदेह प्रगट कर रहे हैं कहां ज्वालामुखी पहाड़, और कहां रत्नों का प्रकाश करने वाला अनाधिनिधन मेरु प्रदिक्षणा देने वाला चन्द्र-विमान जिसमें मिट्टी, घाटी, पहाड़ों, गढ्ढों का होना सर्वथा असम्भव है।

इसलिये सर्वज्ञ कथित और गणधर, श्रुतकेवली अवधि ज्ञानी मनः पर्यंयज्ञानी बीतराग प्रत्यक्ष दृष्टा महर्षियों द्वारा लोक स्वरूप आदि का श्रद्धान करना चाहिये और इन खोजों पर विश्वास करके अपने ज्ञान को मिथ्या कोटि में नहीं ले जाना चाहिये।

जिन वाणी पर दृढ़ श्रद्धान किये बिना व्यवहार सम्यग्यदर्शन भी नहीं हो सकता है।

और भी पढ़िये

तारीख १५ दिसम्बर १९७२ के नवभारत टाइम्स में कुछ वाक्य इस प्रकार हैं—

"दो अमेरिकी चन्द्र यात्रियों ने चन्द्रमा के टॉरस लिट्रो क्षेत्र में ऊंचे पहाड़ में खोज का काम किया।"

"एक चन्द्र यात्री सरनन ने चन्द्रमा के ९,१३० मीटर ऊंचे पहाड़ की दलान पर खड़े होकर ज्वालामुखी घाटी की ओर पीछे देखा जिसकी उन्होंने तीन दिन खोज की थी।"

"चन्द्रमा पर तीसरा विचरण सरनन और शिमिठ आज भारतीय समय के अनुसार प्रातः ४-४ पर चन्द्रमा के २-१३५ मीटर ऊंचे पहाड़ की खोजबीन करने निकले इनमें कुछ पहाड़ियाँ और क्रेटर भी हैं जो ज्वालामुखी घाटी की काली मिट्टी से बने हैं।"

"अपोलो १७ चन्द्रयान में कुछ नई व कुछ पुरानी चन्द्र चट्टानें हैं जिनसे चन्द्रमा के बारे में अधूरा ज्ञान पूरा होगा।")

(नवभारत टाइम्स देहली ता० १५ दिसम्बर १९७२)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वाध्यायशील विद्वान् इस सब वक्तव्य को पढ़ कर स्वयं निर्णय एवं निष्कर्ष पर पहुंचें। चन्द्रमा में पहाड़ी और ज्वालामुखी मिट्टी से बनी हुई घाटी का विवरण है। इन सब विवरणों से चन्द्रमा के बारे में अधूरा ज्ञान बताया गया है।

इन उद्धरणों से जो स्वयं चन्द्रलोक में गये हुए यात्रियों ने बताये हैं, कम से कम जैन विद्वानों को तो इन काल्पनिक खोजों पर विश्वास नहीं करना चाहिये। यदि वे भी चन्द्रमा पर यात्रियों के पहुँच जाने पर विश्वास करते हैं तो यह समझना सहज है कि उनकी दृष्टि में सर्वज्ञ कथित 'लोक रचना' एवं देवों का गति विधान तथा उससे संम्बन्धित पुण्य सम्वन्ध सब कुछ कथन सत्य नहीं है। वास्तव में ऐसी मिथ्या भ्रान्ति पूर्ण मिथ्या श्रद्धा ही दर्शन मोहनीय के उदय का सूचक है।

यह बात हम पहिले कह चुके हैं कि जीवों के पुण्य पाप के कारण स्वर्ग नरक आदि गतियां नियत हैं और असंख्यात द्वीप समुद्रों का सद्भाव पृथ्वी को घूमती हुई और गोल मानने पर कैसे सिद्ध होगा ? पृथ्वी को गोल मानने वाले उसका परिमाण कितना मानते हैं कितना उसका ब्यास और कितनी लम्बाई एवं ऊंचाई बताते हैं, यह भी समझना होगा। उनके मतानुसार स्वर्ग नरक लोक रचना आदि सर्वज्ञ द्वारा प्रत्यक्ष भासित एवं अवधि मन: पर्यय ज्ञानियों द्वारा एक देश प्रत्यक्ष भासित पदार्थों को नहीं मानना और भौतिक उन्नति के चक्र में लगे हुए वैज्ञानिकों की खोज मात्र पर विश्वास कर बैठना यह नास्तिक बुद्धि का ही परिणाम है और उसका भी मूल कारण मिथ्यात्व कर्मोदय है।

ऐसे भ्रमात्मक बुद्धि वालों के लिये हम एक प्रत्यक्ष प्रमाण देकर इस प्रकरण को समाप्त करते हैं। देखिये– ज्योतिष के दो भेद हैं एक फलित ज्योतिष, दूसरा गणित ज्योतिष।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जन्म समय एवं अन्य समय में शनि ग्रह आदि ग्रहों के अनुसार मनुष्यों के इस्टाऽनिष्ठ फल को ज्योतिषी बता देते हैं। अनिष्ट ग्रहों के प्रकोप को दूर करने के लिये उपाय भी बताते हैं जैसे शनि ग्रह दशा को दूर करने के लिये भगवान मुनि सुव्रत नाथ की पूजा शास्त्र-कारों ने बताई है।

गणित ज्योतिष के आधार पर सूर्य चन्द्रमा और केतु राहु के गमन के अनुसार ज्योतिषी विद्वान दस बीस वर्षों के पहले ही इस निर्णय की घोषणा एवं पंचागों द्वारा प्रसिद्ध कर देते हैं कि अमुक महीने में सूर्य ग्रहण अमुक महीने में चन्द्र ग्रहण पड़ेगा और यह भी सिद्ध कर देते हैं कि अमुक दिशा में इतना भाग दीखेगा। या वह खग्रास (पूर्ण ग्रहण) या आधा या चौथाई पड़ेगा। साथ ही यह भी बता देते हैं कि इस समय ग्रहण का प्रारम्भ होगा और इस समय पर उसकी समाप्ति हो जायगी। पंचांगों के निर्णय के अनुसार उसी सन् में उसी महीने में उसी दिन उसी समय पर सूर्य ग्रहण चन्द्र ग्रहण ठीक समय पर पड़ते हैं और निर्धारित समय में ही प्रारम्भ और ग्रहण होता है। यह सब देश देशान्तरों के लोग प्रत्यक्ष देखते हैं। ऐसी प्रत्यक्ष बातों को देखते हुए भी शास्त्र निर्दिष्ट सिद्धान्त को नहीं मानना और सर्वथा सिद्ध नहीं होने वाली अनुमानिक खोजों पर विश्वास कर लेना भी आस्तिक बुद्धि वालों के लिये उचित एवं हितकर नहीं है।

इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाण और परोक्ष प्रमाण का स्वरूप दिगम्वर जैनाचार्यों ने स्पष्ट किया है। उसे मानकर स्वात्म हित करना प्रत्येक सम्यग्ज्ञानी का कर्तव्य है।

असम्भव सम्भव नहीं हो सकता है

जो असंभव है वह किसी भी प्रयत्न से कभी भी संभव नहीं हो सकता है। इस बात का भी तर्क शास्त्रियों को ध्यान रखना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिये। इस समय अमरीका और रशिया दौनों प्रधान राष्ट्र करोड़ों अरबों रुपये खर्च कर चन्द्रमा और मंगल ग्रह पर जाने आने एवं वहां पर ठहरने आदि के लिये स्टेशन आदि की तैयारी में लगे हुए हैं। अमरीका एवं रूस ने यात्रियों सहित राकेट भेजे भी हैं। चन्द्र पर वे पहुंच भी गये हैं ऐसा भी देश विदेश के समाचार पत्रों में प्रकट किया गया है। चन्द्रमा से बटोरकर वे यात्री कंकर पत्थर और चट्टानें भी लाये हैं। वैज्ञानिकों ने जांच कर उन चट्टानों को चार अरब वर्ष पुरानी चट्टानें बताया है। ऐसा विपरीत श्रद्धान करने से समाज का शास्त्राधार से सच्चा श्रद्धान शिथिल होता है। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर इस सम्बन्ध में थोड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

राकेट चन्द्रमा तक न पहुंचे और न पहुँच सकते हैं—

पहली बात तो यह है कि राकेटों का प्रयोग करने वाले वैज्ञानिकों ने यह प्रसिद्ध किया है कि राकेट चंद्रकक्ष तक गये हैं और पौने तीन लाख मील तक ऊंचे गये हैं चंद्रकक्ष का क्षेत्र चंद्रमा से लाखों मील दूर भी बताते हैं जैन सिद्धान्तानुसार चंद्रमा पृथ्वी तल से ३५,२०,००० मील ऊपर है। जैसा कि यह प्रमाण है—

णउ दुत्तर सत्तसया दस सीदी चदुदुगतिय चउक्कं।
तारारविससि रिक्खा वुह भग्गव गुरू अगिराह सणी ॥

अर्थः—इस समान भाग पृथ्वी तल से ७९० योजन ऊपर तारे हैं। उनसे १० योजन ऊपर सूर्य है। उससे ८० योजन ऊपर चंद्रमा है और उससे चार योजन ऊपर नक्षत्र हैं उनसे चार योजन ऊपर बुध है। उससे तीन योजन ऊपर शुक्र है। उससे तीन योजन ऊपर वृहस्पति है। उससे तीन योजन ऊपर मंगलग्रह है। उससे तीन योजन ऊपर शनि है। इस गाथा के अनुसार इस पृथ्वी तल से चंद्रमा ८८० योजन ऊंचा है। तथा एक योजन ४००० (चार हजार) मील का होता है इस हिसाब से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां से चंद्रमा की ऊंचाई ३५,२०,००० (पैंतीस लाख बीस हजार) मील है।

इस प्रमाण के अनुसार राकेटों का चंद्रमा तक पहुँचना सर्वथा अशक्य है। जब कि केवल पौने तीन लाख मील ही राकेट गये हैं। तब चंद्रमा तक कैसे पहुँच गये ? फिर चंद्रमा प्रकाश देने वाला रत्नों का विमान हैं उसमें से कंकड़ पत्थर पुरानी चट्टानें कीचड़ आदि कहाँ हो सकते हैं। यह केवल कल्पना पूर्ण अंदाजिया खोज है। यह भी उन वैज्ञानिकों ने स्पष्ट किया है कि वे यात्री अंधेरी गुफा में जाकर आधा घंटा में चट्टानें ले आये। इस वक्तव्य से यह वात सिद्ध होती है कि राकेट सीधे ऊपर नहीं गये हैं किन्तु चक्कर लगाते हुए तिरछे गये हैं और किसी पहाड़की ऊंची चोटी पर पहुंचकर उस पर्वत की अंधेरी गुफा से कंकड़ पत्थर चट्टानें बटोर लाये हैं। चंद्रमा पर अन्धेरी गुफा तो नहीं हैं वहां तो रत्नों का महान प्रकाश है। जो पृथ्वी तक आकाश मण्डल में फैल रहा है।

यह भी विचारणीय बात है कि जो चट्टानें लाई गई हैं वे चार अरब वर्ष पुरानी वताई गई हैं। यह भी परमाणुओं एवं स्कंधों की अत्यन्त जीर्णता की अंदाजिया जांच है। वे चट्टानें दस बीस लाख वर्ष पुरानी भी हो सकती हैं। चार अरब वर्ष पुरानी हो इस बात का कोई निश्चित प्रमाण तो नहीं है। जो ऐसा ही मान लिया जाये। इसलिये इस विज्ञान प्रसार को प्रमाण नहीं माना जा सकता है।

एक बात यह भी है कि चन्द्रमा सूर्य विमान से ८० (अस्सी) योजन ऊंचा है। अतः चन्द्रमा तक जाने में पहले सूर्य विमान मिलेगा। उसकी तीव्र तेजोमय किरणों के संसर्ग से राकेट जलकर भस्म हो जायेंगे।

चन्द्र इन्द्र है !

सर्वज्ञ कथित तथा अवधि मनः पर्यय प्रत्यक्ष ज्ञानियों के द्वारा रचे गये शास्त्रों द्वारा ज्योतिषी देवों में चन्द्र विमान में रहने वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवों के अधिपति चन्द्रदेव को इन्द्र और सूर्य विमानवासी देवों के अधिपति सूर्य को उपेन्द्र बताया गया है। यह चन्द्र इन्द्र महान वैभव एवं महान् शक्तिशाली ज्योतिषी देवों का महाराजा है। वह चन्द्र विमान राकेट में चढ़कर नहीं मिल सकता है। उसके लिये तीव्र पुण्य चाहिये। देवगति नाम कर्म एवं देवायु आदि महान् शुभ पुण्य कर्म का मनुष्य पर्याय में विशेष धर्म साधन से ही बंध सकता है। जिनको राकेटों द्वारा चन्द्र विमान प्राप्त करने का विश्वास है। उन्हें सर्वज्ञ भासित जैन सिद्धान्त पर विश्वास एवं निष्ठा नहीं है। जैन सिद्धान्त पर विश्वास भले ही नहीं हो। परन्तु वस्तु तत्व अथवा वास्तविक पदार्थ तो असत्य नहीं ठहर सकते हैं फिर जैन सिद्धान्त पर अविश्वास करना और बिना प्रमाण के काल्पनिक अंदाजिया बातों पर विश्वास कर लेना यह भी तो बुद्धिमत्ता नहीं है।

यह बात प्रशंसनीय है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भौतिक उन्नति सीमातीत एवं चमत्कारक कर डाली है। जिसके वायरलैस (बिना तार के आकाश में शब्द का प्रसार) टेलीविजन आदि अनेक विद्युत्प्रयोग हमारे आपके सबों के सामने हैं। वे प्रयोग असत्य नहीं हैं किन्तु असम्भव बातों की अंदाजिया कल्पना करना असत्य एवं बाधित हैं। ये सभी प्रयोग जल पृथ्वी तेज वायु आदि भौतिक पदार्थों की शक्ति का ही आविष्कार हैं। यह सम्भव वस्तु तत्व है जैन सिद्धान्त तो स्पष्ट वता रहा है। कि जीव में जिस प्रकार अनन्त शक्ति है उसी प्रकार पुद्गल जड़ (Matter) में भी अनन्त शक्ति है। जीव की गति के समान पुद्गल भी अपनी सतत एवं सर्वोच्च तीव्र गति से एक समय में चौदह राजू तक जा सकता है। साथ ही जैन सिद्धान्त ने यह भी स्पष्ट बता दिया है कि पृथ्वी जल अग्नि वायु भिन्न भिन्न द्रव्य नहीं है किन्तु पुद्गल की ही पर्यायें हैं। इन्ही पर्यायों के ये सब भौतिक चमत्कार हैं। जैन सिद्धान्त को छोड़कर अन्य सभी नैयायिक वैशेषिक मीमांसक यौगिक आदि प्राचीन अन्य दर्शन पृथ्वी जल अग्नि वायु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इनको भिन्न भिन्न द्रव्य और भिन्न भिन्न परमाणु मानते हैं परन्तु चारों की एक पर्याय के कार्य प्रत्यक्ष दीखते हैं अतः जैन सिद्धान्त चारों को भिन्न भिन्न नहीं वताता है। अन्य दर्शन शब्द को अमूर्तिक एवं आकाश का गुण मानते हैं "शब्द गुणकमाकाशम्" यह गौतम सूत्र है। परन्तु जैन सिद्धान्त शब्द को पुद्गल द्रव्य की मूर्तिमान पर्याय मानता है। यह जैन सिद्धान्त का कितना असाधारण महत्व पूर्ण प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। जिसका प्रत्यक्ष कार्य हम आप सब देख रहे हैं। टेलीफोन टेलीग्राम आदि द्वारा शव्द चला जाता है। रिकार्ड में भर लिया जाता है। बारूद के धमाके पूर्ण शब्द से पहाड़ फट जाता है। कानों की झिल्ली फट जाती है। इन सब बातों से यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि शब्द आकाश का गुण अमूर्तिक नहीं है। किन्तु जैन दर्शन के सिद्धान्त अनुसार शब्द पुद्गल द्रव्य की मूर्तिमान् पर्याय है।

विज्ञान की सफलता कब सम्भव है ?

इस विवेचन से यह बात निर्णीत रूप में सुसिद्ध है कि जहां तक भौतिक (साइंस) प्रयोग जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित तत्वों के अनुकूल है। वहां तक वह सफल हो सकता है। परन्तु जो साइंस प्रयोग जैन दर्शन द्वारा प्रतिपादित तत्वों के विपरीत है वह कभी सफल नहीं हो सकता है। असंभव संभव नहीं हो सकता है। इसके उदाहरण में हम एक ही बात कह देना पर्याप्त समझते हैं कि संसारी जीव चारों गतियों में अपनी आयु कर्म गति कर्म आदि के उदय से घूमता है। जन्म मरण धारण करता है। यह जैन दर्शन है। इसके विपरीत यदि वैज्ञानिक आविष्कारक जीव को मरने नहीं देवें। अथवा मरे हुए जीव को जिन्दा कर देवें तो जैन दर्शन असत्य ठहर सकता है। परन्तु मनुष्य को सदैव जीवित रखने या मृत मनुष्य को जीवित करने के बड़े बड़े गम्भीर प्रयत्न किये जाचुके हैं। उस विषय में वैज्ञानिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(Scientist) न तो आज तक सफल हो सके हैं और न कभी सफल हो सकेंगे। एक पाश्चात्य विद्वान ने एक मस्तक का ऐसा आविष्कार किया है कि उस मस्तक में आंखें खुल जाती हैं, हाथ पैर चलाये जा सकते हैं.। परन्तु उस मस्तक में इच्छा भूख प्यास और बुद्धि नहीं हो सकती है। इससे यह सिद्ध है कि असंभव को संभव नहीं बनाया जा सकता है। इसलिये जैन दर्शन सर्वज्ञ कथित एवं एक देश प्रत्यक्ष दृष्टा बीतरागी महर्षियों द्वारा प्रतिपादित है वही प्रमाण है। अतः दिगम्बर जैन शास्त्रों का अध्ययन एवं स्वाध्याय कर उनमें कहे हुए तत्वों पर पूर्ण श्रद्धान करके अपना कल्याण करना चाहिये। व्यर्थ कुतर्क पूर्ण चातुर्य से स्व-पर बंचना के सिवा कोई लाभ नहीं है।

सम्यज्ञान ही प्रमाण है

जैन दर्शन जड़ चीजों को प्रमाण नहीं बताता है। जैसा कि प्रायः सभी अन्य दर्शन वाले मानते हैं। नैयायिक वैशेषिक भाट्ट प्रभाकर मीमांसक आदि सभी दर्शनकार वाह्य इन्द्रियों (द्रव्येन्द्रिय) को शब्द को सूर्य और दीपक आदि के प्रकाश को प्रमाण मानते हैं। उनका तर्क एवं समर्थन यह है कि इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा शब्द एवं प्रकाश के द्वारा ज्ञान होता है। इसलिये ये इन्द्रिय आदि प्रमाण हैं। परन्तु जैन दर्शन अनेक हेतुओं एवं युक्तियों से यह बताता है कि ये चक्षु आदि इन्द्रियां तो शरीर के अंग हैं। वे जड़ हैं वे स्वयं ज्ञान नहीं करती हैं। किन्तु आत्मा के द्वारा ज्ञान कराने में साधक है। वाह्य चक्षु (द्रव्य चक्षु) स्वयं नहीं देखता है किन्तु भाव चक्षु जड़ इन्द्रियों की सहायता से आत्मा का ज्ञान ही देखता है। यह हिन्दी का दोहा मनन करने योग्य है।

नैनों से देखे जगत नैना देखे नाहिं।
ताहि देखि जो देखता नैन झरोखे माहिं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसका अर्थ यह है कि जगत के लोग नेत्रों से देखते हैं। वे समझते हैं कि हमारे नेत्र ही देखते और जानते हैं। परन्तु नेत्र नहीं देखते। किन्तु नेत्र रूपी झरोखे से आत्मा चेतन ही देखता है। जानता है। उसे पहचानो।

जैसे भीतर कमरे में वैठा हुआ मनुष्य तभी बाहर की चीजों को देख सकता है जबकि कमरे के दरवाजे खुले हुए हों। इसलिये दरवाजा तो देखने में सहायक है वह स्वयं नहीं देखता है किन्तु खुद दरवाजे की सहायता से मनुष्य ही देखता है जड़ चीजें सूर्य बिजली दीपक का प्रकाश आदि बाहरी साधन तो जड़ हैं। वे आत्मा चेतन के ज्ञान कराने में सहायता करते हैं अतः जैन दर्शन ज्ञान को ही प्रमाण मानता है। इन्द्रिय आदि जड़ साधनों को प्रमाण नहीं मानता है।

इसका अत्यन्त विषद अत्यन्त गम्भीर अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन अनेक हेतु युक्ति तर्क आदि से प्रमेय कमल मार्तण्ड अष्ट सहस्त्री श्लोक वार्तिक, राजवार्तिक आदि जैन दर्शन शास्त्रों में बताया गया है। साथ ही यह भी बताया गया है कि ज्ञान मात्र ही प्रमाण नहीं है ज्ञान तो संशय ज्ञान, विपरीत ज्ञान और अनध्यवसाय ज्ञान हैं ये तीनों ही मिथ्या ज्ञान हैं। उनकी जानकारी से वस्तु का यथार्थ सच्चा बोध नहीं होता है संशय या विपरीत ज्ञान से अपना और पर का अहित होता है। अतः प्रत्यक्ष दृष्टा बीतरागी महर्षियों ने "सम्यज्ञानं प्रमाणम्" इन सूत्रों द्वारा सम्य ज्ञान को ही प्रमाण सच्चा ज्ञान बताया है।

आचार्य माणिक्य नन्दि ने परीक्षा मुख में प्रमाण का लक्षण यह बताया है—

स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणं।

अर्थात् जो ज्ञान अपने स्वरूप को और अनिश्चित पदार्थ को निश्चयात्मक जानता है वही सम्य ज्ञान प्रमाण है। इसी प्रमाण की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धि में प्रमेय कमल मार्तण्ड, प्रमेय कुमुद चन्द्रोदय आदि न्याय शास्त्रों की रचना आचार्य प्रभाचन्द्र जैसे महान् तार्किक विद्वान आचार्यों ने की है।

जैन दर्शनाचार्य
श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का प्रमाण निरूपक

प्रथम अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ द्वितीय अध्याय

नयों का विशद विवेचन
तथा
निश्चय एकांत का खंडन

नयों का स्वरूप और उनके भेद

प्रमाण का संक्षिप्त स्वरूप ऊपर कहा जाचुका है अब यहां पर नयों का स्वरूप कहा जाता है उसे ध्यान पूर्वक पढ़कर समीचीन नय कौन है और कुनय मिथ्या नय कौन है यह समाधान कर लेना प्रत्येक शास्त्र ज्ञाता का कर्तव्य है।

प्रमाण और नयों में भेद क्या है ?

इसका समाधान यही है कि प्रमाण वस्तु के सर्वांशों को ग्रहण करता है और नय उस वस्तु के किसी एक अंश को ग्रहण करता है। "सकलादेश: प्रमाणाधीन: विकला देश: नया धीन:" अर्थात् द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु को जो ज्ञान ग्रहण करता है वह प्रमाण ज्ञान है और जो द्रव्य पर्यायात्मक वस्तु के केवल द्रव्यांश को ग्रहण करता है अथवा केवल वस्तु के पर्यायांश को ग्रहण करता है वह नय ज्ञान है। प्रमाण और नय दोनों ज्ञान के ही भेद हैं। दूसरे शब्दों में यह कहना ठीक है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि वस्तु का ज्ञान करने में जितने ज्ञान भेद विकल्प हैं उन्हें नय कहते हैं अथवा जितने अभिप्राय भेद हैं वे नय हैं अथवा जितने वाक्य भेद हैं वे नय हैं। दृष्टान्त यह समझिये कि किसी ने घी का घड़ा कहा, किसी ने मिट्टी का घड़ा कहा, किसी वे पानी का घड़ा कहा, किसी ने आटे का घड़ा कहा, बस यही विवाद का विषय वन जाता है और नयों के स्वरूप को समझने वालों को इन भिन्न भिन्न वाक्यों में कोई विरोध या विवाद प्रतीत नहीं होता है। मिट्टी का घड़ा चाहने वाला मिट्टी का घड़ा लाओ ऐसा कहता है। सोने का घड़ा चाहने वाला सोने से बने घड़े को चाहता है। घी चाहने वाला घी से भरे हुए घड़े को चाहता है। उसे सोने या मिट्टी के घड़े से प्रयोजन नहीं है किन्तु जिस घड़े में घी भरा है उस घड़े को चाहता है। इसी प्रकार आटा को चाहने वाला आटा का घड़ा लाओ ऐसा कहता है। कोई पानो से भरे हुए घड़े को चाहता है तो पानी का घड़ा बोलता है। इस प्रकार अभिप्राय एवं वाक्य भेद से अनेक नयों की विवक्षा हो जाती है परन्तु विवादी लोग विवाद कर बैठते हैं कि घी का या पानी का घड़ा नहीं होता है घड़ा मिट्टी का या सोने का है। घी या पानी चाहने वाले के अभिप्राय को नहीं समझ कर यह तर्क कर बैठते हैं।

इसी प्रकार किसी ने कहा है कि अमुक पुरुष नव कंबल वाला है। परन्तु दूसरा विवादी पुरुष उससे कहता है कि तुम झूंठ बोलते हो उसके पास नौ कंबल कहां है एक ही तो है तब दूसरा समझाता है कि भाई मैंने तो यह कहा है कि इसके पास नवीन कंबल है नौ कंबल मैंने नहीं बताये हैं इसी प्रकार एक आदमी पर नौ कंबल देखकर दूसरा कहता है कि वह नव कंबल वाला है तीसरा विवादी कहता है तुम झूंठ कहते हो इसके पास तो पुराने कंबल हैं। नवीन कंबल कहां हैं ? तब वह समझाता है कि नव कंबल से मेरा अभिप्राय नये पुराने कंबल से नहीं है किन्तु नौ कंबलों से है। इन दृष्टान्तों से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वस्तु के स्वरूप विवेचन में वक्ता के अभिप्राय और वाक्यों के भेद से नयों के भेद हो जाते हैं।

रेलगाड़ी में बैठे हुए मनुष्य कहते हैं कि अब झांसी निकल गया इटारसी आरहा है आदि परन्तु झांसी इटारसी तो जहां के तहां ही हैं न कोई निकल गया है और न कोई आरहा है किन्तु वक्ता के अभिप्राय से यह कथन यथार्थ है। नहीं समझने वाला झूंठा बताता है। नयों का रहस्य गहन है।

द्रव्य पर्याय नय

अनन्त गुणों के अखण्ड पिण्ड को द्रव्य कहते हैं। अर्थात् द्रव्य नाम गुणों के समूह का ही है। अतः द्रव्य और गुणों के समूह में कोई भेद नहीं है। द्रव्य की समय-समय में बदलने वाली अवस्था को पर्याय कहते हैं। पर्याय बदलती रहती है अतः वह अनित्य है। द्रव्य सदैव रहता है वह नित्य है। दृष्टान्त यह है कि एक जीव मरकर पशु हुआ और फिर मर कर मनुष्य हुआ फिर मरकर देव हुआ फिर मरकर मनुष्य हुआ। पर्यायें बदलती गईं परन्तु एक ही जीव उन सभी पर्यायों में चला जाता है। इस परिस्थिति को समझने से जैन दर्शन का यह सिद्धान्त सत्य निर्बाध सप्रमाण सिद्ध है कि प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य स्वरूप से सदैव नित्य है। अतः द्रव्य दृष्टि से जीव नित्य है। उसका कभी विनाश नहीं होता है। किन्तु वही जीव पर्याय दृष्टि से अनित्य है। इसलिये जीव द्रव्य को कथंचित नित्य और कथंचित अनित्य माना जाता है इसी प्रकार पुद्गल आदि सभी द्रव्यों में यही बात समझनी चाहिये। इसी का नाम स्याद्वाद है। एक ही पदार्थ नित्य भी है और अनित्य भी है। दो विरोधी धर्म एक वस्तु में कैसे रह सकते हैं? यह शंका अपेक्षा भेद को समझे बिना सहज होती है। प्राचीन शंकराचार्य ने यही भाव अपने बनाये हुए ग्रन्थों में लिखा है कि "नैकस्मिन्न संभवात्" अर्थात एक वस्तु में नित्य और अनित्य दो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विरोधी धर्म नहीं रह सकते हैं। अतः जैन दर्शन का स्याद्वाद असत्य है परन्तु वे जैन दर्शन की अपेक्षा अथवा विवक्षा दृष्टि को नहीं समझे थे। जैन दर्शन के इस सहेतुक निर्बाध एवं अकाट्य वस्तु स्वरूप का नाम ही स्याद्वाद है।

निश्चय नय और व्यवहार नय का स्वरूप

निश्चय नय और व्यवहार नय में भी समझ की कमी से एक ऐसा मतभेद या विवाद खड़ा हो जाता है जो जैन सिद्धान्त का विघातक बन जाता है। इसीलिये निश्चय नय और व्यवहार नय का स्पष्टीकरण कर देना अत्यावश्यक है।

निश्चय नय उसे कहते हैं जो वस्तु के शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करता है। जैसे जीव का परम शुद्ध स्वरूप सिद्ध परमात्मा है वह आठों कर्मों से रहित है। शरीर रहित है अमूर्तिक है और अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्य चारित्र आदि अनन्त विशुद्ध गुणों के पूण विकासमय है। यही निश्चय नय का विषय है। अर्थात जीव का परम विशुद्ध स्वरूप ही (सिद्धावस्था) निश्चय नय का विषय है। व्यवहार नय जीव की कर्म जो कर्म सराग वीतराग भाव, विभाव, स्वभाव, भाव आदि मिली हुई भेद पर्यायों को विषय करता है अर्थात व्यवहार नय संसारावस्था से लेकर जीवन्मुक्त परमात्मा केवली भगवान तक जीव की पुद्गल सम्मिश्रित अवस्थाओं को ग्रहण करता है। तथा अखण्ड द्रव्य में गुण गुणी का भेद बताता है।

निश्चय नय निर्विकल्प है। और अवक्तव्य है उस नय से वस्तु स्वरूप का विकल्पात्मक कोई प्रतिपादन नहीं हो सकता है। वह तो अमूर्तिक एवं पुद्गल सम्बन्ध से सर्वथा रहित विशुद्ध चैतन्य आत्मा को ही विषय करता है निश्चय नय की दृष्टि से जीव अजीव आश्रव बन्ध संवर निर्जरा मोक्ष आदि कोई भेद विकल्प नहीं कहा जा सकता है। अतः जीव संसारी है या मुक्त है यह कुछ भी निश्चय दृष्टि से नहीं कहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जा सकता है जीव ज्ञानवान है। यह भेद करना भी निश्चय नय का विषय नहीं है। किन्तु इसे व्यवहार नय विषय करता है। अतः व्यवहारनय विकल्पात्मक है वह जीव तत्व की विकारी अविकारी सभी पर्यायों को विषय करता है इस नय से जीव की नीचे से ऊपर तक सभी अवस्थाओं का परिचयात्मक बोध होता है। उसका भी मूल कारण यह है कि जीव अनादि काल से सर्वथा अमूर्तिक शुद्ध नहीं है। वह पहले संसारी है। कर्म नो कर्मों से बन्धा हुआ है। और विभाव भाव वाला है। अल्प ज्ञानी है। मिथ्या दृष्टि और मिथ्या चरित्र वाला भी है। सम्यग्दृष्टि श्रावक एवं मुनि पद धारी भी है ऐसी अवस्था में जीव को सर्वथा निश्चय नय का विषय कहना विपरीत होगा और संसारी जीव की ये अवस्थायें कल्पनात्मक नहीं है वास्तविक हैं सत्य हैं। केवली भगवान अवधि ज्ञानी, मनः पर्यय ज्ञानी उन समस्त जीव की पर्यायों को प्रत्यक्ष देखते जानते हैं इसलिये उन्हें असत्य कहना सर्वथा विपरीत है व्यवहार नय उन सब वास्तविक अवस्थाओं की जानता है इसलिये वह भी सत्य है और यथार्थ ज्ञान है।

कौन बुद्धिमान यह कहने का साहस कर सकता है कि आत्मा से शरीर का सम्बन्ध झूंठा है। इन्द्रिय ज्ञान झूंठा है कषाय आविष्ट आत्मा होती ही नहीं है। नरक तिर्यंच्च मनुष्य देव पर्यायें झूंठी हैं या काल्पनिक हैं। ऐसा समझना या कहना ही सर्वथा मिथ्या या झूंठा है। क्यों कि संसारी पर्यायें सर्वज्ञ द्वारा प्रतिभाषित पूर्ण सत्य हैं। और उनकी क्रम-क्रम से प्राप्ति होती है। राग द्वेष आदि भावों का छूटना भी मुनिपद में क्रम से ही होता है। इस क्रम में केवल ज्ञाप्य ज्ञापक भाव ही नहीं है किन्तु क्रम से पर्यायों की प्राप्ति से एवं क्रम से भावों की विशुद्धता होने से साध्य साधक भाव हैं इन्हीं सब सत्य एवं यथार्थ पर्यायों को व्यवहार नय भिन्न-भिन्न रूप से ग्रहण करता है। अतः व्यवहार नय को मिथ्या अथवा असत्य कहना सिद्धान्त विपरीत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय सार में भगवत्कुन्दकुन्द स्वामी ने निश्चय को भूतार्थ और व्यवहार नय को अभूतार्थ कहा है। उसका तात्पर्य यही है कि व्यवहार नय शुद्ध आत्म स्वरूप को ग्रहण नहीं करता है। किन्तु जीव की मिश्रित एवं विभाव भाव अवस्था को ग्रहण करता है। इसलिये वह अभूतार्थ है। जीव वास्तव में तो अमूर्तिक शुद्ध गुण स्वरूप है। उस शुद्ध जीव वस्तु को ग्रहण नहीं करने से उसे अभूतार्थ कहना भी सत्य है।

व्यवहार नय को मिथ्या या असत्य कहना सिद्धान्त विरुद्ध है यदि व्यवहार नय केवल शरीर को ही जीव बताता या रागद्वेष भावों को जीव का शुद्ध भाव बताता तब तो वह मिथ्या या असत्य कहा जाता परन्तु व्यवहार नय ऐसा नहीं बताता है। और न वह अशुद्ध जीव को परम विशुद्ध बताता है। इसलिये व्यवहार नय असत्य नहीं है। किन्तु शुद्ध जीव का ग्रहण या प्रति पादक नहीं होने से अथवा भेद एवं विकल्प का ग्राहक होने से वह निश्चय शुद्ध स्वरूप की ग्राहकता से भिन्न है।

समय सार ने इसी को स्पष्ट किया है।

ऐदे सब्बे भावा योग्गल दब्व परिणाम निब्वण्णा।
केवलि जिणेहि भणिया किहते जीवोत्ति उच्चन्ति ॥

अर्थः—ऊपर की गाथा में कहे हुए सर्व भाव कर्म नो कर्म शरीर राग द्वेषादि भाव पुद्गल द्रव्य के परिणाम से उत्पन्न हुए हैं। ऐसा श्री जिनेन्द्र देव ने कहा है। तब इन भावों को या इन पर्यायों को जीव कैसे कहा जावे? इस गाथा से यह तो खुलासा हो जाता है कि जीव की विभाव पर्यायें और कर्म नौ कर्म शरीर पुद्गल द्रव्य के परिणाम से होती हैं। ऐसा केवली भगवान ने कहा है। अर्थात् जीव की ये पर्यायें झूंठी या कल्पनात्मक तो नहीं हैं केवली भगवान प्रत्यक्ष जानते हैं। अतः उन्हीं पर्याओं को व्यवहार नय ग्रहण करता है। अतः व्यवहार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नय का कथन केवली कथित सत्य परन्तु शुद्ध जीव का प्रतिपादक नही होने से वह निश्चय नय की विवक्षा से भिन्न है।

व्यवहार नय और व्यवहार में अन्तर

व्यवहार नय और व्यवहार में क्या भेद (अन्तर) है इसका खुलासा यह है कि व्यवहार नय तो ज्ञान है क्यों कि प्रमाण और नय दोनों ज्ञान के भेद हैं। और व्यवहार जीव की परिणति एवं क्रियात्मक प्रवृति है जो उस व्यवहार नय का विषय है। व्यवहार क्रिया मिथ्यादृष्टि के विपरीत अर्थात संसार वर्धक होती है। परन्तु सम्यग्दृष्टि की क्रिया (व्यवहार) मोक्ष साधक अथवा मोक्ष मार्ग रूप होती है। यहां पर मोक्ष मार्ग साधक व्यवहार का थोड़ा खुलासा किया जाता है।

त्याग और अवस्था

यह तो सर्वार्थ सिद्धि, राजवार्तिक, श्लोक वार्तिक, रत्नकरण्ड-श्रावकाचार, पुरूषार्थ सिध्दुपाय आदि सभी चारित्र ग्रन्थों में आचार्यों ने बताया है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की योग्यता अथवा पात्रता तभी आती है। जब कि भव्य जीव हो। पंचेन्द्रिय हो पर्याप्तक संज्ञी हो जिसकी कर्म स्थिति घटकर केवल अन्तः कोटा कोटि सागर मात्र रह गई हो। अनन्तानुबन्धी कषायों की मन्दता से आत्मा में कुछ विशुद्धि आगई हो। फिर गुरू का उपदेश, जिनेन्द्र दर्शन जाति स्मरण आदि कारण मिल जाय इन सब कारणों के मिलने पर मनुष्य सबसे पहले आठों मूल गुण धारण करता है वे इस प्रकार हैं।

मद्य पल मधु निशासन पंच फली विरति पंचकाप्तनुती।
जीव दया जल गालन मिति च क्वचिदष्ट मूल गुणाः ॥

अर्थात मदिरा, (शराब) मांस, मधु, (शहद) रात्रि भोजन पाँच उदम्बर फल इनका त्याग पंच परमेष्ठियों को प्रतिदिन नमस्कार जीवों पर दया भाव और जल छानकर पीना ये आठ मूल गुण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि मद्य मांस आदि में त्रस जीव भरे रहते हैं उनका भक्षण करना महापाप है इन पापों को छोड़ना ही जैन बनने की सबसे पहली सीढ़ी है। इसी को पाक्षिक श्रावक कहा जाता है। यह सबसे छोटा जघन्य पद है। यदि आठ मूल गुण नहीं पालता है तो वह जैन भी नहीं हैं। जैन कुल में पैदा होने मात्र से जैन नहीं वनता है इसके आगे पांच अणुव्रत अभ्यास रूप में पालता है। आगे उत्तरोत्तर सम्यग्दृष्टि मनुष्य हिंसा, झूंठ, चोरी. कुशील, परिग्रह इन पांचों पापों को एक देश त्याग करता है फिर पहली दूसरी आदि ग्यारह प्रतिमाओं के व्रत पालता है यहां तक नैष्ठिक श्रावक कहलाता है। यह मध्यम पात्र कहलाता है। इसके आगे धन सम्पत्ति मकान, पुत्र, स्त्री आदि समस्त वाह्य परिग्रह का पूर्ण रूप से त्याग करता है और घर छोड़कर वन में तथा मन्दिर मठ बगीचा आदि स्थानों में जाकर नग्न दिगम्बर साधु पद ग्रहण करता है। साथ ही अन्तरंग में क्रोध मान माया लोभ आदि राग द्वेष को छोड़कर एवं पांचों पापों का पूर्ण रूप से त्याग कर देता है। वह पुरुष उत्तम पात्र मुनि बन जाता है। वह मुनि त्रस और स्थावर दोनों प्रकार की हिंसा का त्याग करता है और पूर्ण अहिंसा भावों की सम्हाल के लिये महाव्रत पांचों समिति आदि का पालन करता है। जब भावों की विशुद्धि वहुत बढ़ जाती है तब वह सातवें अप्रमत गुण स्थान के स्वस्थान अप्रमत से ऊपर सातिशय अप्रमत्त भावों को प्राप्त कर लेता है। वही से वह महामुनि उपशम–श्रेणी तथा क्षपक–श्रेणी पर पहुँच जाता है। वहाँ पर स्थिति खण्डन अनुभाग खण्डन के साधक अधः करण अपूर्व करण अनिवृत्ति करण के द्वारा सूक्ष्म विशुद्धि प्राप्त कर कर्मो की निर्जरा करता हुआ क्षपक श्रेणी द्वारा अन्तः शुद्धि से समस्त घातियाँ कर्मों का नाश कर केवल ज्ञानी वीतराग सर्वज्ञ जीवन्मुक्त परमात्मा अर्हन्त पद प्राप्त कर लेता है। और वही परमात्मा अघातिया कर्मों का भी विनाश कर कर्म नो कर्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीर से रहित परम शुद्ध आकाश के समान अमूर्तिक एवं अनन्त गुणों के प्रगट प्रकाश के साथ सिद्ध पद प्राप्त कर लेता है।

यह सब कथन अत्यन्त संक्षिप्त रूप में कहा गया है। यहां पर इस कथन से यह बताया गया है कि यही दिगम्बर जैन सिद्धान्त है। यही केवली भगवान सर्वज्ञ की दिव्य ध्वनि जिनवाणी का क्रम से होने वाला सार तत्व है। इसी सिद्धान्त को गणधरादि सभी महर्षियों ने शास्त्रों में प्रतिपादन किया है। सातवें गुण स्थान से पहले तक सब क्रियात्मक चारित्र हैं अर्थात आंशिक निश्चय चारित्र के साथ-साथ क्रियात्मक व्यवहार चारित्र है। चाहे सराग चारित्र हो, चाहे वीतराग चारित्र हो सभी मोक्ष अथवा सिद्ध पद प्राप्ति का अनिवार्य परमावश्यक परम साधक है। सिद्धान्त का जानकार कोई भी यह नहीं कह सकता है कि यह व्यवहार मिथ्या है या त्याज्य है या हेय है या उपादेय नहीं है। नीचे की श्रेणी से लेकर ऊपर तक क्रम-क्रम से विशुद्ध बढ़ाने वाले इस व्यवहारात्मक चारित्र केबिना मोक्ष प्राप्ति सर्वथा असम्भव है। व्यवहार क्रियात्मक चारित्र है। कषायों के क्रमवर्ती अभाव एवं उत्तरोत्तर मंदता होने से यह सकल संयम रूप निश्चय चारित्र के ही भेद हैं। सभी शास्त्र इस विधान के पूर्ण समर्थक एवं प्रमाण हैं। इस व्यवहार चारित्र को शरीर की परिणति कहना भी पूर्ण अज्ञान है। नीचे से ऊपर तक त्याग और तज्जन्य आत्म विशुद्धि आत्मा का ही परिणाम है इस बुद्धि पूर्वक त्याग को आत्म स्वरूप नहीं माना जाय तो फिर मोक्ष भी शरीर की परिणति होगी। सम्यग्दृष्टि के देव पूजन मुनि दान तीर्थ यात्रा, पंच कल्याणक विधान कराना आदि सराग भावों को अथवा शुभ भावों को मोक्ष साधक (परम्परा) यदि नहीं माना जाय और उनको संसार वर्धक ही माना जाय तो इस प्रश्न का क्या समाधान होगा कि ये शुभ भाव मनुष्य को नीचे की ओर गिराते हैं या ऊपर की ओर बढ़ाते हैं। यह तो प्रत्यक्ष अनुभव एवं शास्त्र प्रमाण से सिद्ध है कि अणुव्रतों से महाव्रत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और महाव्रत से उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी प्राप्त हो जाती है। अर्थात शुभ भाव शुद्ध भाव के साधक हैं। उस सम्यग्दृष्टि के शुभ भावों को संसार का कारण बताना सिद्धान्त विरुद्ध है। शुभ भावों से अशुभ भावों का नाश और परम्परा विशुद्ध भावों एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है अतः सम्यग्दृष्टि का पुण्य संसार का नाशक ही सिद्ध है। यही शास्त्रकारों ने बताया है।

सम्माइट्ठो पुण्णं संसार कारणं णस्थि ।
सम्माइट्ठो पुण्णं मोक्खस्सैव कारणं अस्थि ॥
(आचार्य देवसेन)

अर्थः— सम्यग्दृष्टि का पुण्य संसार का कारण नहीं है किंतु सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का ही कारण है। कितना स्पष्ट कथन है।

अनिवार्य-कारण त्याग से आत्मा का उत्थान

एक बात यह भी सोचने की है कि मद्य मांसादि का त्याग किये बिना क्या कोई सम्यग्दृष्टि बन सका है ? और अणुव्रत धारण किये विना कोई नैष्ठिक श्रावक बन सकता है क्या ? महाव्रत धारण किये बिना उपशम क्षपक श्रेणी चढ़ सकता है क्या ? अथवा मुनि पद धारण किये बिना कभी कोई अर्हन्त पद में पहुँच सकता है क्या ? कभी नहीं पहुंच सकता। अतः यह शास्त्राधार से सिद्ध है कि शुभ भाव रूप व्यवहार ही मुनि पद एवं निश्चय का साधक है।

व्यवहार निश्चय का साधक है इसके कुछ प्रमाण

व्यवहार निश्चय का साधक है इसके प्रमाण में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं कि—

ब्यवहारेणुव दिस्सादि पाणिस्स चरित्र दंसणं णाणं ।
णयि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो ॥
(समय सार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ:— इस गाथा का यह अर्थ है कि आत्मा का ज्ञान दर्शन चारित्र (रत्नत्रय) गुण हैं। यह व्यवहार नय से कहा जाता है किन्तु निश्चय नय से आत्मा अखण्ड चिन्मूर्तिक शुद्ध है। निश्चय नय से उसे ज्ञान दर्शन गुण वाला नहीं कहा जासकता है। इसका तात्पर्य इतना ही है कि निश्चय नय से आत्मा निर्विकल्प एवं अवर्णनीय है। आत्मा के ज्ञान दर्शन चारित्र गुण हैं ऐसा आत्मा और उसके गुणों का भेद रूप कथन करना यह व्यवहार है।

इस कथन से व्यवहार निश्चय का साधक सिद्ध होता है। क्योंकि आत्मा के स्वरूप की पहिचान और उसके शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति के साधनों का परिज्ञान किये बिना मोक्ष की प्राप्ति कभी किसी को नहीं हो सकती है। अत: व्यवहार को हेय या अनुपादेय बताना समयसार शास्त्र के विरुद्ध है। समयसारकार आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी आगे और भी कहते हैं—

'तह ववहारेण विणा परमत्थु देसणं असक्कं।"

अर्थात् व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश नहीं हो सकता है इससे भी आचार्य ने व्यवहार को निश्चय का साधक ही बताया है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी और भी स्पष्ट करते हैं

सुद्धो सुद्धादेशो णायव्वो परम भाव दरसीहिं।
ववहार दे सिदो पुणा जेदु अपरमे ठिदा भावे॥

इस गाथा का स्पष्ट अर्थ यह है कि जो शुद्ध भाव (उपशम श्रेणी क्षपक श्रेणी) में पहुंचकर केवल शुद्ध स्वरूप आत्मा का अनुभव करते हैं उनके लिये केवल निश्चय नय ही उपादेय है परन्तु जो अपरम भाव (धर्मध्यान) में स्थित है अर्थात जो अविरत सम्यग्दृष्टि है या जो श्रावक है या जो शुभ उपयोग वाले मुनि जन हैं उनके लिये व्यवहार उपादेय हैं। क्योंकि उससे निश्चय साध्य की सिद्धि होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि कहते हैं

"निश्चय व्यवहारयोः साध्य साधन भावत्वात् सुवर्ण-सुवर्ण पाषाण वत् अतएव उभय उभयनयायत्ता पारमेश्वरी तीर्थ प्रवर्तना ।"

(पंचास्ति काय टीका)

अर्थः– जैसे सोना सोने के पाषाण से निकलता है अतः सोना साध्य है और स्वर्ण पाषाण उसका साधक है। उसी प्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों में साध्य साधक भाव है निश्चय साध्य है और व्यवहार साधक है।

आचार्य जयसेन स्वामी भी पंचास्ति काय की टीका में लिखते हैं—

तच्च वीतरागत्वं निश्चय व्यवहार नयाभ्याम् साध्य साधक रूपेण परस्पर सापेक्ष्यभ्यामेव भवति मुक्ति सिद्धये न च पुर्निनरपेक्षाभ्याम् इति

(पंचास्ति काय टीका)

अर्थः– वह वीतरागता निश्चय व्यवहार नयों के द्वारा साध्य साधक रूप से परस्पर एक दूसरे नय की अपेक्षा से मोक्ष प्राप्ति के लिये साधक है। निरपेक्ष नय से नहीं। अर्थात् व्यवहार नय के बिना निश्चय नय भी मोक्ष साधक नहीं है।

एवं निश्चय व्यवहाराभ्यां साध्य साधक भावेन तीर्थ गुरू देवता स्वरूपं ज्ञातव्यं ।

(परमात्म प्रकाश टीका)

अर्थः– इस प्रकार निश्चय और व्यवहार दौनों में साध्य साधक भाव हैं निश्चय शुद्धात्म स्वरूप है और व्यवहार नय से धर्म तीर्थ धर्म गुरु और जिनेन्द्र देव के स्वरूप की पहिचान होती है। बिना व्यवहार के धर्म में प्रवृति ही नहीं हो सकती है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा पसत्थ भूदा समणाणं वा पुणो घर स्थाणं ।
चरिया परेत्ति भणिदा ता एव परं लहदि सोक्खं ॥
(प्रवचन सार २५४)

अर्थः– यह प्रशस्त राग शुभ राग व्यवहार धर्म जो मुनियों की तथा गृहस्थ श्रावकों की चर्या धर्म प्रवृति है। उसी से परम मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है तथा

"व्यवहार मोक्ष मार्ग जानीहि त्वं येन ज्ञातेन कथं भूतो ।
भविष्यति परंपरंया पवित्रः परमात्मा भविष्यसि ॥
(परमात्म प्रकाश टीका)

आचार्य कहते हैं कि हे भव्य तू व्यवहार मोक्ष मार्ग को समझ ले जिसके समझने से तू परम्परा से पवित्र परमात्मा वन जायेगा। कितना स्पष्ट कथन है।

आचार्य देवसेन कहते हैं :—

पज्जयणयेण भणिया चउब्बिहाराहणाहु जासुत्ते ।
सा पुण कारण भूदाणिच्चयणयदो च उक्कस ॥
(आराधना सार)

अर्थः—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तपये चारों आराधनायें शुद्ध आत्मा का निश्चयनय से स्वरूप हैं इन्हीं चारों आराधनाओं को सम्यग्दर्शनादि के भेद रूप से कथन करना भेद रूप में आराधना करना पर्याय आराधना अथवा व्यवहार आराधना है यह व्यवहार आराधना निश्चय आराधना में कारण है।

अर्थात् परम विशुद्ध निश्चय स्वरूप की प्राप्ति में व्यवहार कारण है।

आचार्य अमृत चन्द सूरि कहते है :—

व्यवहार निश्चयौयः प्रबुध्य तत्वेन भवति मध्यस्थः ।
प्राप्नोति देशनायाः स एव फलं मविकलं शिष्यः ॥
(पुरूषार्थ सिद्धयुपाय)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः—व्यवहार नय और निश्चय नय दोनों नयों के वास्तविक स्वरूप को समझकर जो मनुष्य मध्यस्थ भाव (राग द्वेषाभाव) धारण करता है। वही शिष्य आचार्यों के उपदेश का पूर्ण फल प्राप्त कर लेता हैं। अर्थात् निश्चय नय को ही जो सर्वथा सत्य कहे व्यवहार नय को असत्य या मिथ्या कहता है। अथवा जो व्यवहार को सर्वथा सत्य कहे और निश्चय को मिथ्या कहता है वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है। वह गुरूओं के उपदेश का पात्र नहीं है।

तथा—"यः अर्हत्सर्वज्ञ प्रणीत निश्चय व्यवहार नययोः साध्य साधक भावेन मन्यते।

(द्रव्य संग्रह टीका)

आचार्य कहते हैं कि वही सम्यग्दृष्टि है जो अर्हंत सर्वज्ञ प्रणीत निश्चय नय को साध्य और व्यवहार नय को उसका साधक मानता है। जो कोई निश्चय नय को ही एकाँत रूप से प्रमाण और यथार्थ मानते हैं। और व्यवहार नय को अप्रमाण हेयत्याज्य एव मिथ्या बताते हैं वे सम्यग्दृष्टि नहीं हैं मिथ्यादृष्टि हैं।

अधिक कहां तक लिखा जाय। आचार्य प्रणीत सभी शास्त्रों में निश्चय और व्यवहार दोनों को सत्य बताया गया है आचार्यों ने यह स्पष्ट कहा है कि "निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तुतेऽर्थकृत्" अर्थात् निरपेक्ष नय मिथ्या है सापेक्ष नय ही वास्तव में कार्य साधक हैं।

निश्चय और व्यवहार दौनों के द्वारा ही मोक्ष और मोक्ष मार्ग की सिद्धि हो सकती है। अन्यथा नहीं।

अनेक शास्त्रों में दोनों नयों के साध्य साधक रूप में अनेक प्रमाण हैं। उन्हें लिखने से बहुत ग्रन्थ विस्तार होगा आचार्य वचनों में सर्वत्र कहीं विरोध नहीं है। जिन्हें विरोध प्रतीत होता है वह उनकी सिद्धान्त बोध की अजानकारी या उनकी पक्षपात पूर्ण स्वतन्त्र विचार धारा का ही परिणाम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चय एकान्त वादियों के धर्म विरुद्ध मन्तव्य

जो लोग आचार्य वचनों की अवहेलना करते हुए व्यवहार धर्म को मिथ्या एवं त्याज्य बताते हैं। और केवल निश्चय नय को ही मानते हैं। उनके स्वतन्त्र कल्पनात्मक विचार दिगम्बर जैन सिद्धान्त एवं धर्म से सर्वथा विपरीत हैं। उनके विचारों का थोड़ा सा दिग्दर्शन इस प्रकार है :—

१. तीर्थंकर केवली सर्वज्ञ भगवान की दिव्य ध्वनि शब्द रूप है। उससे किसी जीव का कोई हित नहीं हो सकता है।

यह मन्तव्य दिगम्बर जैन सिद्धान्त एवं धर्म का मूल घातक है। जिन तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि को सुनकर समवसरण में बैठे हुए अनेक भाव मिथ्यादृष्टि सम्यग्दृष्टि बन जाते हैं। अनेक अणु-व्रती और अनेक महाव्रती बन जाते हैं। प्रलय काल में रुका हुआ रत्नत्रयात्मक मोक्ष मार्ग भगवान की दिव्य ध्वनि से चालू हो जाता है। तीव्र मिथ्यादृष्टि जैन धर्म का विरोधी इन्द्रभूति जैसा महा अभिमानी विद्वान भी भगवान के दर्शन से चार ज्ञानधारी गणधर देव बन गया। उस दिव्य ध्वनि से किसी का हित नहीं हो सकता है यह कहना नितांत अज्ञता एवं धर्म का लोप करने वाली बात है।

शब्द पुद्गल की पर्याय है अतः जड़ है यह ठीक है। परन्तु आत्मा के भावों से शब्द निकलते हैं वे हमारे विचारों के ही प्रतीक हैं। अन्यथा किसी के प्रश्नों का यथार्थ सही उत्तर क्या जड़ शब्द दे सकते हैं? नहीं।

इसी प्रकार बीतराग सर्वज्ञ की निरीच्छ (बिना इच्छा के) दिव्य ध्वनि से निकलने वाले शब्द सर्वज्ञ वाणी के ही प्रतीक है यदि उन शब्दों का परमात्मा से सम्बन्ध नहीं हो तो तीन लोक छह द्रव्य रत्नत्रय स्वरूप जीवों के भावों का वर्णन क्या जड़ शब्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर सकते हैं ? कभी नहीं कर सकते। जड़ शब्द के द्वारा पदार्थों का परिज्ञान होना असम्भव है। आत्मा के ज्ञान के प्रकाश और प्रसार में शब्द सहायक मात्र है। वे शब्द आत्मा के भावों से प्रेरित होकर ही निकलते हैं। तभी तीनों लोकों का और जीवों के भावों का ज्ञान हो सकता है। अरहंत भासयन्थं गणहरदेवेहिं-गंथिये सम्मं,, अर्हंतदेवने कहा गणधरदेवने शास्त्रों में गूंथा। ऐसा श्रुत है। तथा-स्वर्गापवर्गगम मार्ग विमार्गणेष्टं सद्धर्मतत्व कथनैकपटुस्त्रिलोक्यां दिव्य ध्वनिर्भवति ते विशदार्थं सर्वं भाषा स्वभाव परिणाम गुणैः प्रयोज्यः। अर्थात् भगवान की दिव्य ध्वनि स्वर्ग मोक्ष, सद्धर्म, तत्व का स्वरूप बताती है यह जड़ शब्दों का कार्य नहीं हो सकता है।

२. जिन वाणी पर स्त्री के समान त्याज्य है। ऐसा निश्चय एकान्त वादी कहते हैं।

यह कहना धर्म का लोपक और स्ववचन वाधित है जैसे कोई अज्ञानी बालक यह कहे कि मेरी माता बांझ है। तो यह बालक कैसे उसके उदर से आया है ?

इसी प्रकार जिनवाणी त्याज्य है। ऐसा कहना स्ववचन वाधित है। क्यों कि समयसार आदि जिनवाणी के पढ़ने सुनने से ही अनेक दिगम्बर जैन हुए हैं। और जिनवाणी के स्वाध्याय से ही मिथ्याज्ञान का विनाश और सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है। तब जिनवाणी को त्याज्य कहकर उसका घोर तिरस्कार करना है। और मनुष्यों को सम्यज्ञान एवं तत्व बोध से विमुख करने का दुष्प्रयास है। समयसार के स्वाध्याय से दिगम्बर जैन बनकर भी जो जिनवाणी के विरुद्ध प्रचार किया जाता है। वह पुरातन मान्यता के संस्कारों का ही फल है। तथा सिद्धान्त ग्रन्थ के तत्वों को नहीं समझने का ही परिणाम है। अथवा तीव्र मिथ्यात्व कर्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का ही परिणाम है। फिर तीन बार समयसार का वाचन क्यों किया जाता है ?

३. कर्मों का आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु आत्मा स्वयं अपनी योग्यता से नरक स्वर्ग आदि चारों गतियों में भ्रमण करता है।

यह मान्यता भी स्वतंत्र विचारों से की जाती है। यदि आत्मा की स्वयं की योग्यता से चारों गतियों में भ्रमण एवं संसारी सुख दुखः होता है। तो सब जीवों में समानता क्यों नहीं? कोई जीव नरक कोई स्वर्ग आदि में किस कारण से जाता है। आत्मा की स्वयं की योग्यता तो सिद्धों में भी है। वे संसार में फिर क्यों नहीं आते हैं। आत्मा की वह योग्यता कौनसी है ? और उसका क्या लक्षण है ? और क्या कार्य है ? और वह योग्यता किस गुण की पर्याय है ? यह भी बताना चाहिये। दि० जैन धर्म में सभी शास्त्रों में तत्वार्थ सूत्र, सर्वार्थ सिद्धि, राजवार्तिक, श्लोक वार्तिक, गोम्मट सार, धवला जय धवला, महा धवला, समयसार, प्रवचन सार, परमात्म प्रकाश आदि सभी शास्त्रों में कर्मों का आश्रव और बन्ध मन वचन काय योग और कषायों से होता है। यह बहुत विस्तार से बताया गया है। फिर संसारी आत्मा में कर्मों का सम्बन्ध नहीं बताना समस्त शास्त्रों का खण्डन करना है। सिद्धान्त का लोप करना है। इसे कुमति के सिवा और क्या कहा जाय।

४. छः ढाला की दूसरी ढाल में कहा गया है कि—

"कपिलादि रचितश्रुत को अभ्यास। सो है कुबोध बहु दैन त्रास॥"

इसका अर्थ तो स्पष्ट है कि सांख्य आदि द्वारा रचे गये श्रुत का अभ्यास कुमति ज्ञान है। और दुःख देने वाला है।

इस अर्थ को बदल कर स्वतन्त्र मान्यता वालों ने यह अर्थ किया है कि जिन शास्त्रों में वीतराग भाव जीव दया मुनि दान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि का वर्णन है वे शास्त्र कुशास्त्र हैं। उन्हें नहीं पढ़ना चाहिये इसी प्रकार तत्वार्थं सूत्र समयसार आदि ग्रन्थों के आशय को बदला गया है। पूर्व आचार्यों द्वारा रचे गये शास्त्रों के कथन को अपनी स्वतन्त्र मान्यता से उन्हीं शास्त्रों की स्वरचित टीकाओं में उन शास्त्रों के आशय को बदल देना यह दिगम्बर जैन धर्म में पूरी विकृति लाना है और सबसे बड़ा भारी अक्षम्य अपराध है। इसका फल परम्परा तक दुर्गति का दुःख भाजन बनना है यह अनधिकृत अत्यन्त निंद्य प्रयास है।

५. शुभ राग जन्य पुण्य भी भिष्टा के समान त्याज्य है और वह शुभ पुण्य भी संसार बढ़ाने वाला है।

निश्चय एकान्तवादियों का ऐसा कहना और इस मिथ्या मान्यता का प्रचार करना शास्त्र विरुद्ध और धर्म का मूल विघातक है। क्यों विघातक है? इसका समाधान समझिये—

कर्मों में तीर्थंकर प्रकृति एक सर्वोत्कृष्ट परम प्रशस्त प्रकृति है तीन कल्याणक तो तीर्थंकर प्रकृति के साथ बंधने वाले शुभ पुण्य कर्मों का फल है। तीर्थंकर प्रगति का उदय तो तेरहवे गुण स्थान में होता है। उसका तो एकमात्र यही फल है कि समवसरण रचना होने पर तीर्थंकर केवली की दिव्य ध्वनि खिरती है। उसे सुनकर अनेक जीव सम्यग्दृष्टि हो जाते हैं। अनेक अणुव्रती महाव्रती बनकर रत्नत्रय प्राप्त कर मोक्ष जाते हैं। यह मोक्षमार्ग चालू होने का मूल एवं मुख्य कारण तीर्थंकर प्रगति का उदय है। यह तीर्थंकर प्रकृति सर्वोपरि महान पुण्य है। ऐसी अवस्था में शुभ पुण्य को भी भिष्टा के समान त्याज्य एवं संसार वर्धक कहना महान् अपराध है।

ऊपर हम लिख चुके हैं कि सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का ही कारण है। वह संसार का कारण नहीं है। आचार्य देवसेन का प्रमाण भी दे चुके हैं। समयसार शास्त्र में भगवत्कुंदकुंद स्वामी ने भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशस्त पुण्य को मोक्ष का साधक बताया है। सभी आचार्यों ने ऐसा ही कहा है–

देवपूजा मुनि दान आदि का निषेध

शुभ पुण्य को भिष्टा के समान त्याज्य और संसार का कारण बताने से देव पूजा मुनिदान तीर्थ यात्रा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सिद्ध चक्र विधान, महामस्तकाभिषेक आदि सभी धार्मिक क्रियाओं का निषेध करना है। क्योंकि इन क्रियाओं से शुभ पुण्य का संचय होता है और कर्मों की निर्जरा भी होती है। मुनियों की षडावश्यक पंच समिति आदि क्रियाओं से भी सातिशय पुण्य एवं कर्मों की निर्जरा होती है। ऐसे धर्म पुण्य को भिष्ठा के समान त्याज्य बताना इन धर्म कार्यों का विरोध करना है। आचार्य देवसेन स्वामी की गाथा पढ़िये–

लद्धं जह चरम तणु चिरंकय पुण्णेण सिज्झए णियमा
पाइव केवलाणाणं जह खाइय संजमं सुध्दं
तह्मा सम्माइट्ठी पुण्णं मोक्खस्स कारणं हवइ
इह णाऊण गिहत्थो पुण्णं चायरउ जत्तेण

(भाव संग्रह)

अर्थः– यदि यह जीव अपने चिरकाल से संचित किये हुए पुण्य के उदय से चरम शरीरी हुआ तो वह जीव यथाख्यात शुद्ध चारित्र को धारण कर केवल ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। अतः सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का कारण है। ऐसा समझकर गृहस्थ को प्रयत्न पूर्वक पुण्य का उपार्जन करते रहना चाहिये।

यही बात भगवत्कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार में लिखी है। ऐसे स्पष्ट आचार्यों के वचनों के विरुद्ध पुण्य को भिष्टा के समान त्याज्य कहना कितनी निंद्य बात है और दि० जैन धर्म के सर्वथा विपरीत है यह निश्चय एकांतबादियों का प्रचार समाज के लिए पूरा अहितकारी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य विद्यानन्दि (पात्र केसरी) ने लिखा है—

सर्वातिशायि पुण्यं तत् त्रैलोक्याधिपतित्व कृत्

अर्थात् सबसे अधिक अतिशय वाला पुण्य तीन लोक का अधिपति तीर्थंकर बना देता है।

वास्तव में शुभ पुण्य सम्यग्दृष्टि का पुण्य देवेन्द्र पद, चक्रवती पद तीर्थंकर पर देने वाला है और अन्त में सिद्ध पद का साधक बन जाता है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरंड श्रावकाचार में यही कहा है। जिन पूजा या जिनेन्द्र स्तवन, बिना तीव्र भक्ति के नहीं हो सकता। भक्ति बिना राग के नहीं होती। मुनि दान में भी धर्मानुराग और श्रद्धा भक्ति है। भगवान कुन्दकुन्द आदि आचार्यों ने इस धर्म राग को परम्परा मोक्ष का साधक बताया है जो निश्चय एकान्तवादी इस धर्मराग को त्याज्य और संसार वर्धक कहते हैं। वे जिन पूजा आदि धर्म कार्यों का लोप करना चाहते हैं। जिन पूजा आदि धार्मिक क्रियाओं को वे धर्म भी नहीं मानते हैं। वे यह कहते हैं कि ये जिन पूजा आदि धर्म नहीं हैं क्योंकि इनमें राग भाव होता है यदि वे क्रियायें धर्म नहीं हैं तो वीतराग महर्षि क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी षडावश्यक मूल गुणों में जिन वन्दना स्तवन आदि क्यों करते हैं? क्या वे संसार चाहते हैं? णमोकार मन्त्र का जपन क्यों करते हैं? शुभ पुण्य को आचार्यों ने परम्परा मोक्ष का साधक बताया है। अन्त में तो पुण्य स्वयं छूट जाता है। क्षपक श्रेणी में पहुंचने पर सभी कर्म प्रकृतियां विशुद्ध आत्मा से छूट जाती हैं। परन्तु क्षपक श्रेणी के धारण करने से पहले, मुनि पद धारण करने, सर्वार्थ सिद्धि आदि में जाने आदि में पुण्य ही सहायक है। भगवान कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचन सार में कहा है कि "पुण्णं फला अरिहन्ता" अर्थात् पुण्य के फल से अर्हंत पद प्राप्त होता है।

बिना शुभ पुण्य सम्पादन किये मोक्ष मार्ग में कोई लग भी तो नहीं सकता है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कहते हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्राणं पूजा मुक्खो सावयधम्मेण सावया तेण विना

(रयणसार)

अर्थः– मुनि दान और देव पूजा ये श्रावक का मुख्य धर्म है। और भी कहा हैः—

जिण पूजा मुनि दान करेइ जो देह सत्ति रुवेण,
सम्माइ ट्ठी सावय धम्मी सो होई मोक्ख मग्गरओ।

(रयणसार)

अर्थः– अपने शरीर की शक्ति के अनुसार जो जिन पूजा और मुनि दान करता है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक मोक्ष मार्ग में लगा हुआ है। इतना स्पष्ट प्रमाण मिलने पर भी एकांती लोग भगवत कुन्दकुन्द स्वामी के वचनों को भी नहीं मानते हैं। यह भी समझना चाहिये कि जिस पुण्य को ये निश्चयाभासी हेय और त्याज्य कहते हैं वह पुण्य जिन पूजा और मुनि दान .तीर्थ यात्रा, पंच कल्याणक महोत्व व्रत उपवास आदि का ही तो फल है। इसका तात्पर्य यही निकलता है कि जिन पूजा आदि धर्म कार्य ही त्याज्य और हेय है वे धर्म कार्य ही संसार के कारण ठहरते हैं। इसलिये निश्चयाभासी लोग धर्म का और जिन वाणी का ही खंडन और लोप करना चाहते हैं।

जीव दया भी धर्म नहीं है हिंसा है

निश्चय एकांत वादी यह भी बताते हैं कि जीवों पर दया भाव रखना यह तो राग है और हिंसा है। इस जीव दया को जो धर्म मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि हैं। इससे भी बढ़ कर वे यहां तक कहते हैं कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है। अतः जीव के मारने में कोई पाप या हिंसा नहीं है।

एसा मानना तो नितांत निंद्य और शास्त्र विपरीत है। दिगम्बर जैन धर्म में जीव दया ही प्रधान है। श्रावक धर्म और मुनि धर्म जीवों की दया पर निर्भर है। जहां जीव दया नहीं है वहां हिंसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। जीव दया को आचार्यों ने आत्मा का विशुद्ध गुण बताया है। अभय दान जीव दया का ही परिणाम है। भगवान के अतिशयों में कहा गया है कि "नहिं अदया उपसर्गं नहिं" अर्थात् भगवान के अदया भाव नहीं हीता है। कोई उपसर्ग भी नही होता है। जहां जीव दया नहीं है वहां अष्ट मूल गुण श्रावक की ग्यारह प्रतिमायें और महाव्रत भी नहीं पाले जा सकते हैं। क्यों कि उन सब क्रियाओं में जीव दया और जीव रक्षा ही प्रधान है। प्रशस्त राग भी संसार का ही कारण है ऐसा मानना भी भूल भरा है। जिस समय तीर्थंकर गृहस्थ होते हैं। निमित्त कारण पाकर उन्हें वैराग्य उत्कट होता है। तभी वे वन को चले जाते हैं, वह वैराग्य भी प्रशस्त राग है उन्हें संसार असार दीखता है। इच्छा पूर्वक उसे छोड़कर वे मोक्ष पाने की तीव्र अभिलाषा करते हैं। अभिलाषा राग है। वह राग वैराग्य और वीतरागता का ही कारण है वह राग संसार वर्धक नहीं किन्तु संसार छुड़ाने वाला है। जैसे धोवी कपड़े से मैल मिट्टी दूर करने के लिये उस कपड़े में पहले से ही रेता की मिट्टी लपेट देता है। वह रेता कपड़े के मैल मिट्टी को दूर कर साफ स्वच्छ बना देती है। इसी प्रकार भगवान का वैराग्य प्राप्ति का राग उन्हें पूर्ण बीतराग बना देता है। यदि सभी राग संसार वर्धक हो तो राग तो दसवें गुण स्थान में क्षपक श्रेणी वालों को भी हैं। वहाँ सूक्ष्म लोभ का उदय है। परन्तु वे अन्तर्मुहूर्त मात्र समय में केवली सर्वज्ञ बन जाते हैं। इसलिये प्रशस्त राग को भी संसार वर्धक कहना सर्वथा बाधित है।

भाव शुद्धि में द्रव्य शुद्धि उपयोगी नहीं है

८. निश्चय एकान्ती भावों की शुद्धि में द्रव्य शुद्धि को आवश्यक नहीं मानते हैं। परन्तु यह भी शास्त्र विरूद्ध और प्रत्यक्ष बाधित है। शास्त्रों में कहा गया है कि--

"द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानु रूपं, भावस्य शुद्धि मधिकामधि गन्तु कामः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् पहले द्रव्य शुद्धि करना आवश्यक है। उसके होने पर ही भाव शुद्धि हो सकती है। अन्यथा नहीं ? मंदिरा मांस का भक्षण करते हुए किसी को सम्यग्दर्शन प्रगट हो सकता है क्या ? अणुव्रत, महाव्रत, धारण किये बिना कोई एक देश एवं सर्व देश संयमी बन सकता है क्या ? शौच घर से आकर बिना स्नान किये और बिना शुद्ध वस्त्र पहिने कोई जिनाभिषेक और मुनि दान करने का अधिकारी बन सकता है क्या ? एक अस्पृश्य के घड़े में भरा हुआ गंगा जल भी पवित्र माना जा सकता है क्या ? रजस्वला अवस्था में कोई धर्मात्मा स्त्री भी शुद्ध मानी जा सकती है क्या ? निर्ग्रंन्थ लिंग (मुनिपद) धारण किये बिना कोई कभी मोक्ष प्राप्त कर सकता है क्या ? मुनिपद धारण करने के बाद ही सातवे छठे गुण स्थान के विशुद्ध भाव हो सकते हैं। इन सभी हेतुओं से स्पष्ट है कि पहले द्रव्य शुद्धि अर्थात् शरीर वस्त्र भोजन आदि की शुद्धि होने पर ही भाव शुद्धि (भावों में निर्मलता) आ सकती है।

भाव को मुख्यता देने वाले कहते हैं कि सम्मेद शिखर को जाने के पहले भाव होते हैं। तभी तो वहां जाते हैं। भाव हुए बिना शिखर जी कैसे जा सकते हैं। परन्तु यह भी भूल भरी वात है। शिखरजी जाने के भाव (विचार) होना केवल भावना मात्र है। अर्थात् वह इच्छा है। भाव शुद्धि तो तभी होगी जब शिखरजी के पवित्र पर्वत पर पहुँचकर तीर्थंकरों के चरणों का दर्शन करेंगे। तभी भावों में निर्मलता आती है। यदि वहाँ के दर्शन किये बिना ही भावों में निर्मलता आ जाय तो वहां जाने की आवश्यकता ही क्या है ? इसलिये मुनि और त्यागी विवेकी जन अपने भावों को निर्मल बनाने के लिये अन्न, जल, वस्त्र आदि की शुद्धता का पूरा ध्यान रखते हैं। जैसा "खावे अन्न वैसा होवे मन जैसा पीवे पानी वैसी बोले वाणी" यह नीति वास्तविक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चय पहले व्यवहार पीछे

एकान्तवादी यह भी कहते हैं कि निश्चय पहले होता है व्यवहार पीछे होता है। परन्तु यह भी भूल भरी बात है। उनके कहने के अनुसार तो पहले मोक्ष होगी पीछे मुनि पद धारण किया जायगा। पहले क्षपक श्रेणी होगी पीछे महाव्रत धारण किये जायेंगे। यह सब विपरीत मान्यता है। यह समझने की भूल है। वास्तव में पहले निश्चय नहीं हो सकता है। पहले व्यवहार धर्म धारण किया जाता है तभी निश्चय की प्राप्ति हो सकती है। यदि ऐसा नहीं है तो क्या मुनि पद धारण किये बिना ही मोक्ष हो सकती है? यह समझ की भूल है। समझने की बात यह है कि पहले मोक्ष का (निश्चय) का स्वरूप जानना आवश्यक है बिना उसके समझे किस लक्ष्य (उद्देश्य) से व्यवहार का समीचीन साधन किया जायगा। अतः निश्चय पहले नहीं होता है किन्तु निश्चय का ज्ञान पहले किया जाता है। व्यवहार धर्म पालन करने के पहिले निश्चय का ज्ञान किया जाता है क्योंकि बिना मोक्ष का स्वरूप समझे उसकी प्राप्ति का उपाय करना ही निष्फल है। मोक्ष की प्राप्ति करना उद्देश्य है उसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये उपाय भूत व्यवहार धर्म धारण किया जाता है। इसलिये पहले निश्चय नहीं होता है किन्तु निश्चय का ज्ञान पहले किया जाता है।

६. वाह्य सभी क्रियायें जड़ शरीर की परणति हैं। आत्मा से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। अभक्ष्य भक्षण, हिंसा, झूंठ आदि सभी क्रियाओं से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है वे जड़ शरीर की परिणति हैं। इसी प्रकार जिन पूजन आदि क्रियायें भी जड़ शरीर की परिणति हैं आत्मा की नहीं है। यह मान्यता कितनी अज्ञानपूर्ण मिथ्या है। इसे साधारण ज्ञानी भी समझता है। बुरे कर्मों से दुर्गति होती है। और अच्छे कर्मों से अच्छी गति होती है। यह दुर्गति और सुगति जीवों को ही होती है। दुख सुख जीव ही भोगता है। शरीर तो जड़ है न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो वह अच्छा बुरा कर्म करने में समर्थ है और न उसे सुख या दुख होता है। सभी कार्य जीव की इच्छा से ही होते हैं। जीव के विकारी भावों से ही खोटे कार्य होते हैं। जिन पूजन, मुनि दान आदि धार्मिक कार्य भी मनुष्य के धर्मानुराग से होते हैं। शरीर तो आत्मा की इच्छा से होने वाले कार्यों में साधकमात्र है। शरीर में क्रिया आत्मा की प्रेरणा से होती है। यदि इन्हें जड़ शरीर की परिणति मानलिया जाय तो फिर महाव्रत दश धर्म निर्ग्रन्थ लिंग आदि परम्परा मोक्ष के कारण नहीं ठहरेंगे और बुरे कार्य दुर्गति के कारण भी नहीं ठहरेंगे। जिस प्रकार चार्वाक पर लोक नहीं मानता है इसलिये वह किसी प्रकार के त्याग का विधान नहीं करता है इन्द्रिय विषयों के सेवन का ही पोषण और समर्थन करता है। इसी प्रकार अधर्म सेवन हिंसादि क्रियाओं और जिन पूजन आदि श्रावक की धर्म क्रियाओं को जड़ शरीर की क्रिया मानना पाप पुण्य और उसके फल का लोप करना है। एक वृद्ध पुरुष लाठी के सहारे से चलता है लाठी भी हिल रही है। वृद्ध पुरुष को देखकर यदि कोई बालक यह कहता है कि लाठी चल रही है वृद्ध नहीं चल रहा है तो उसकी अज्ञानता ही कही जायगी। इसी प्रकार आत्मा इच्छा पूर्वक धर्म या अधर्म कार्यों को कर रहा है तो वे कार्य जड़ शरीर के नहीं कहे जासकते हैं किन्तु आत्मा के हैं। शरीर की क्रिया तो जीव के आधीन है। अतः पाप पुण्य एवं वीतराग की उत्पादक जीव की क्रियाओं को जड़ शरीर की क्रिया कहना हास्यास्पद है और दि० जैन सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत है। सभी क्रियाओं का सम्बन्ध जीव के भावों से है तभी तो विकार अविकार एवं अशुद्धता शुद्धता जीव के भाव माने जाते हैं।

उपादान में निमित्त कुछ नहीं करता

१०. उपादान स्वयं करता है। निमित्त कारण उसमें किसी प्रकार की कोई सहायता नहीं करता है वह अकिंचित्कर है। ऐसी मान्यता भी शास्त्र विरुद्ध, प्रत्यक्ष विरुद्ध और अनुभव विरुद्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपादान निमित्त के सम्बन्ध में तत्वार्थ सूत्र सर्वार्थ सिद्धि राजवार्तिक, श्लोक वार्तिक, प्रमेय कमल मार्तण्ड, अष्ट सहस्त्री आदि सभी शास्त्रों में स्पष्ट कथन है। कि बिना निमित्त के उपादान अकेला स्वयं कुछ नहीं कर सकता है और बिना उपादान के निमित्त भी कुछ नहीं कर सकता है। दोनों में परस्पर कार्य कारण भाव निमित्त नैमित्तिक भाव हैं। इस विषय पर यदि विशेष लिखा जाय तो सौ पृष्ठों में भी यह प्रकरण पूरा नहीं होगा।

इस विषय में लौकिक और शास्त्रीय उदाहरण कहां तक दिये जायें? प्रत्यक्ष बात में विरोध को कोई स्थान नहीं है। दो चार दृष्टांत देकर इस प्रकरण को पूरा कर दिया जायगा।

निमित्त की सहायता प्रत्यक्ष व्यवहार से सुसिद्ध है।

मनुष्य यदि माह दो माह कुछ भी नहीं खावे और पानी भी नहीं पीवे निर्जल निराहार रहे तो शरीर में जीव रह सकता है क्या? कभी नहीं। संसारी जीव के प्राणों का आधार खान पान है। इस निमित्त कारण का प्रत्यक्ष सिद्ध रात दिन का अनुभव सभी करते हैं।

सन्निपात क्षय रोग ज्वर आदि रोग औषधि सेवन से दूर होते हैं। यह भी प्रत्यक्ष सिद्ध है। अन्यथा वैद्य डाक्टरों का प्रयत्न और उपचार विधि सदा से शास्त्रों में क्यों बताई गई है? किसी का प्रबल रोग भले ही दूर न हो वहां कर्मोदय की तीव्रता एवं पुण्य की क्षीणता इस अन्तरंग कारण और बाहर में प्रयत्नों की कमी या उचित निदान या उचित प्रयोग उचित औषधियां नहीं मिलना यह बाधक कारण है। चिकित्सा शास्त्रों में वनस्पतियां (जड़ी बूटी) में भिन्न भिन्न रोगों को दूर करने के गुण बताये गये हैं। चन्द्रोदय आदि रसायनों के सेवन से सन्निपातादि दूर होते हैं। दूध, घी, फल आदि खाने से शरीर में शक्ति आती है और मनुष्य कार्य करने में प्रयत्न शील बनता है। मंदिरा पीने से मनुष्य बेहोश एवं विक्षिप्त हो जाता है बिजली के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करंट लगने से मर जाता है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को नदी या समुद्र में धक्का देकर गिराकर एवं शस्त्र से मार देता है। ये सब निमित्त से या पर द्रव्य के द्वारा होने वाले कार्य हैं। एक द्रव्य दूसरा द्रव्य नहीं बन सकता है। एक द्रव्य का गुण दूसरे द्रव्य में नहीं जा सकता है। यह सिद्धान्त है। परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में बिकार अथवा सुख दुख तो पहुंचाता है। यह तो प्रत्यक्ष सिद्ध है।

ठण्ड गर्मी मनुष्य जीवात्मा को लगते हैं। और रूई, ऊन के वस्त्रों और पंखा आदि से दूर होते हैं। उससे मनुष्य को सुख शान्ति का अनुभव होता है। यह सब कार्य निमित्त की वलवत्ता को सिद्ध करते हैं।

मिट्टी पीतल आदि के वर्तन सोने चांदी के गहने वस्त्र मकान आदि का निर्माण मनुष्य के बिना प्रयत्न के स्वयं नहीं हो सकता है। रोकड़ खाता ऐसा निमित्त है कि करोड़ों रुपयों का लेनदेन उसके द्वारा मनुष्य करता है बिना इसके उतनी स्मृति प्रति दिन के लैन दैन में मनुष्य रखने में असमर्थ है।

पत्र या तार जड़ है। परदेश से पत्र या तार में समाचार आते हैं कि आज एक लाख रुपये की हानि हो गई तो मनुष्य और उसके परिवार को दुःख होता है। कल यह समाचार मिलता है कि आज दो लाख का मुनाफा हो गया तो घर भर में हर्ष एवं आनन्द हो जाता है यह मनुष्य के कार्यों में और उसके भावों में निमित्त कारण की सहायता ही बलवती है। बिजली गिरने से, नदी में गिरने से, अग्नि में गिरने से प्रयत्न नहीं हो सके तो मनुष्य मर जाता है। पानी की बाढ़ आने से हजारों मनुष्य पशु और मकान बह जाते हैं। यह निमित्त का ही परिणाम है।

माता पिता के संयोग के बिना सन्तान कभी उत्पन्न नहीं हो सकती है। रजोवीर्य का योग मिलना आवश्यक है। छोटा बालक गुरु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और पुस्तक के निमित्त से शास्त्री और एम० ए० वैज्ञानिक और वैद्य डाक्टर बन जाता है।

विकारी मनुष्य सुन्दर श्रृंगारयुक्त स्त्री को देखने से विकारी एवं विशेष रागी बन जाता है।

वर्षात की अंधेरी रात्रि में दीपक एवं बिजली गैस के प्रकाश के बिना अच्छे नेत्र वाला भी पुस्तक नहीं पढ़ सकता है। यह क्या निमित्त की सहायता को सिद्ध नहीं करता है? एक वीतरागी संसार विरक्त साधु के पास बैठने से और उसके धर्मोपदेश सुनने से मनुष्य में वैराग्य भाव जागृत हो जाते हैं यह सब निमित्त की महिमा है।

शास्त्राधार के कार्य कारण हेतु हेतुमद्भाव प्रत्यक्ष सिद्ध है। अनुभव से सुसिद्ध है कि जगत में जितने भी अनन्त द्रव्य हैं चेतन, अचेतन, मूर्तिक, अमूर्तिक सभी में प्रतिक्षण परिणमन एवं क्रियात्मक ब्यंजन, पर्यायें उपादान निमित्त के सहयोग से ही होती है। जीव की संसारावस्था से लेकर सिद्धावस्था तक प्रत्येक पर्याय निमित्त के सहयोग से ही होती है। इसलिये यह निर्णीत सिद्धान्त है कि प्रत्येक कार्य पचास टका उपादान और पचास टका निमित्त से सिद्ध होता है। अनेक विज्ञ भी यह समझते होंगे कि सिद्ध परमेष्ठी तो शरीर और कर्म सम्बन्ध से रहित परम शुद्ध अमूर्तिक है। उनमें निमित्त क्या हो सकता है? और क्या कर सकता है? इसके समाधान में उन्हें यह समझ लेना चाहियें कि सिद्ध भगवान भी प्रतिक्षण परिणमन करते हैं उनके उत्पाद व्यय ध्रौव्य प्रति समय में होता है। सिद्धों का ज्ञान भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों समय की द्रव्य गुणों की पर्याओं को जानता है द्रव्य गुणों में भी अपनी अपनी ब्यञ्जन पर्यायें और अर्थ पर्यायें प्रति समय बदलती रहती हैं। इसलिये उन द्रव्य गुणों की बदलती पर्यायों को जानने वाला उनका ज्ञान भी बदलता है जो वर्तमान द्रव्य की पर्याय है वह भूत हो जाती है भविष्यत पर्याय वर्तमान हो जाती है। सिद्धों का सर्वज्ञ ज्ञान भी बदलता रहता है। अन्यथा पदार्थों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथार्थता का ज्ञान नहीं हो सकता है। इसलिये केवली सिद्धों के ज्ञान के बदलने का निमित्त भूत वे अनन्त पदार्थ है।

सिद्ध भगवान लोकाकाश के अन्त में सूक्ष्म बातवलय तक ही क्यों ठहरे हैं ? जब जीव का ऊर्ध्वगमन स्वभाव है और आकाश अनन्त है तब कर्मों का सर्वथा अभाव हो जाने पर सिद्ध भगवान अलोकाकाश में क्यों नहीं चले जाते हैं ? लोक के अन्त में ही क्यों रुक जाते हैं। इसका समाधान यह है कि लोक के बाहर जाने का निमित्त नहीं मिलता है। "धर्मास्ति काया भावात" इस शास्त्र प्रमाण के अनुसार जीव के गमन में धर्म द्रव्य निमित्त है वह लोक तक ही है। अतः ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने पर भी सिद्ध परमात्मा सूक्ष्म बातवलय तक रुक जाते हैं।

तीसरी बात यह और भी निमित्त की वलवत्ता को सिद्ध करती है वह यह है कि जीव असंख्यात प्रदेशी है। और लोक भी असंख्यात प्रदेश वाला है ? संसारावस्था में तो कर्म नो कर्म के निमित्त से जीव को शरीर के परिमाण के अनुसार संकोच विस्तार से छोटे वड़े शरीर में रहना पड़ता है। परन्तु सिद्धों में तो कर्म नो कर्म और शरीर नहीं है तो फिर वे शरीर बन्धन से रहित होने से लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेशों में क्यों नहीं फैल जाते हैं उन्हें कौन रोकता है पुरुषाकार ही क्यों रह जाते हैं। इसका समाधान यह है कि पुरुष पर्याय के आकार से आत्मा के आकार को वदलने का कोई साधन नहीं रहा है अतः पुरुष पर्याय का निमित्त ही उसी आकार में सिद्धों को बना चुका है।

काल द्रव्य भी सिद्धों के परिणमन में निमित्त है आकाश द्रव्य उनके स्थान दान में सहायक है धर्म द्रव्य गमन में अधर्म द्रव्य ठहरने में निमित्त है। ये निमित्त कारण द्रव्यों के लक्षण और उनके स्वभावों से शास्त्र निर्णीत हैं। यदि ये निमित्त कुछ नहीं करते हैं तो क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्वज्ञ वाणी एवं शास्त्र अप्रमाण हैं ? और क्या निमित्त की सहायता से होने वाला प्रत्यक्ष कार्य अप्रमाण है ?

निमित्ति नैमित्तिक सम्बन्ध अनिवार्य है। सूर्यकांत मणि में सूर्य की किरणों के निमित्त से अग्नि उत्पन्न हो जाती है। चन्द्र के निमित्त से चन्द्रकांत मणि से जल उत्पन्न हो जाता है। अग्नि के संयोग से पानी गरम हो जाता है। सबसे बढ़कर प्रत्यक्ष व्यवहार में आने वाला निमित्त की सहायता का प्रमाण धन है। रुपया के बिना कोई कार्य नहीं होता है। स्वामी नौकर खान-पान रहन-सहन सभी कार्य धन से ही साध्य हैं। जब उदासीन निमित्त के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता है तब प्रेरक एवं समर्थ निमित्त की बात तो निराली है।

एक मनुष्य का दूसरा मनुष्य धक्का दे देता है तो वह गिर जाता है। रेल गाड़ी, बैल गाड़ी, वायुयान आदि निमित्त मनुष्य को देश से देशांतर में पहुँचाने में सहायक है। सिनेमा, टेलीविजन आदि मनुष्यों को आल्हाद एवं आश्चर्य पैदा कर देते हैं। टेलीफोन या वायरलैस (वेतार) रेडियो से दूर देश के समाचार मिलते हैं। व्यापार चलता है यह कितना बड़ा कार्य साधक निमित्त है।

धर्म कार्यों में निमित्त पूर्ण साधक है

जिन पूजन सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में साधक है। शास्त्र श्रवण सम्यज्ञान की प्राप्ति में साधक है मुनि दर्शन मुनिदान मुनि उपदेश चारित्र की प्राप्ति में साधक है। देव शास्त्र गुरू के निमित्त मिले बिना धर्म साधन मनुष्य का असम्भव है। जिन मंदिरों का निर्माण पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, स्वाध्यायमंदिर धर्म साधन के ही तो निमित्त हैं। जिन विंव दर्शन से जातिस्मरण होजाता है।

तपस्वी मुनियों को जब कोई शंका होती है या कोई दोष लग जाता है। उसे दूर करने के लिये आहारक शरीर मुनि के मस्तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से निकलकर जहां कहीं केवली भगवान विराजे हों वहां वह (आत्म प्रदेश विशिष्ट आहारक शरीर) पहुँचकर केवली भगवान का स्पर्श कर लौट आता है तभी उनकी शंका अथवा दोष दूर हो जाता है। यह निमित्त का ही परिणाम है। अनेक गृहस्थ बादलों की क्षण-भंगुरता को देखकर मुनि हुए हैं। अतः निमित्त कारण के बिना कोई लौकिक या पारलौकिक कार्य नहीं हो सकता है।

मानस्तम्भ का निमित्त

तीर्थंकर भगवान के समवसरण के बाहर मानस्तम्भ होते हैं उन्हें देखते ही कुदृष्टि मानियों का मान तुरन्त खंडित हो जाता है। जैसे इंद्रभूति विद्वान का होगया, इतना ही नहीं समवसरण में पहुँच कर उसने भगवान के दर्शन किए तो उसका मिथ्याज्ञान सम्यज्ञान रूप में परिणत हो गया, इतना ही नहीं वह चार ज्ञान का धारी गणधर बन गया यह सब निमित्त कारण का ही प्रभाव है।

मुनिपद एवं उत्तम संहनन

वज्र वृषभ नाराच इस उत्ताम संहनन के बिना कोई जीव सातवें नरक नहीं जा सकता है और इसी उत्तम संहनन और मुनिपद धारण किए बिना कोई मोक्ष नहीं जा सकता है।

भावों की विशुद्धि एवं वैराग्यभाव कितना ही बढ़ जाय परन्तु नग्न दिगम्बर मुनि पद धारण करने के पहिले तीर्थंकर तक पंचम गुण स्थान में ही रहते हैं। मुनि पद धारण करने के पीछे ही सातवें एवं छठे गुण स्थान को वे प्राप्त करते हैं। यह निमित्त कारण की अनिवार्यता को सिद्ध करने वाली बात है।

तीर्थंकर प्रकृति का बंध केवली भगवान अथवा श्रुत केवली के चरण सानिध्य में ही होता है अन्यत्र इतनी विशुद्धि नहीं हो सकती है जैसा कि गोम्मटसार में कहा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तित्थयरंवंध पारंभयाणरा केवलि दुंगते-अन्यत्र ऐताद्दक विशुद्धय संभवात ।

इतनी विशुद्धि अन्यत्र नहीं हो सकती है। इसी प्रकार क्षायिक सम्यग्दर्शन और परिहार विशुद्ध चारित्र भी केवली श्रुत केवली के पाद मूल में ही होता है।

अनादि मिथ्या दृष्टि जीव को विना गुरु की देशनालब्धि (उपदेश) प्राप्त किये सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता है ये सब निमित्त के द्वारा ही उपादान की सिद्धि के कार्य हैं।

कहाँ तक लिखा जाय प्रथमानुयोग और चरणानुयोग शास्त्रों को वांचने से यह भले प्रकार सिद्ध हो जाता है कि उपादान जीवात्मा, निमित्त कारण की सहायता से ही अपनी उन्नति या अवनति कर सकता है अन्यथा सर्वथा असमर्थ है। "परस्परोप ग्रहो जीवानाम्" जीवों में एक दूसरे का उपकार होता है माता पुत्र के पालन करने में कितना कष्ट उठाती है ? पुत्र माता पिता की सेवा करता है। शास्त्रों के विरुद्ध प्रचार करना कहां तक मिथ्या है ? प्रत्यक्ष अनुभव के विरुद्ध है। दुःख और सांसारिक सुख की पराकाष्ठा नरक और स्वर्ग में ही होती है यह क्षेत्र निमित्त का ही फल है।

उदाहरण

दो चार उदाहरण दिये जाते हैं। तीर्थंकर आदिनाथ को नीलांजना का नृत्य एवं उसका विलय (आयु समाप्ति) वैराग्य का कारण बना। नेमिनाथ तीर्थंकर को पशुओं की पुकार वैराग्य का निमित्त बना। भरत चक्रवर्ती का अभिमान उनके भाई वाहुवलि और ९९ अन्य भाइयों को दीक्षा लेने का निमित्त वना। वज्र नाभि चक्रवर्ती को क्षेमंकर मुनिराज का उनके उद्यान में आना और उपदेश देना वैराग्य एवं मोक्ष जाने का निमित्त मिला। सती सीता का हरण युद्ध एव आर्यिका वनने का निमित्त बना। युवराज देशभूषण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुल भूषण को अपनी सहोदरी भगिनी वैराग्य एवं मोक्ष प्राप्ति का निमित्त बनी। जब दौनों राजकुमार १२ वर्ष पीछे गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त कर राजमहल के दरवाजे पर आये तब एक देवांगना जैसी अत्यन्त सुन्दरी राजकन्या ने उन दौनों राजकुमारों की आरती की। उसे देखकर दौनों कुमार उस कन्या पर मुग्ध हो गये और उसके साथ विवाह करने का संकल्प दौनों ने कर लिया जब विरद बखाना गया कि दौनों भाइयों की भगिनी (बहन) उनकी आरती कर रही है यह सुनकर देशभूषण, कुलभूषण दौनों अपने दुर्भावों पर पश्चाताप करते हुए जंगल में चले गये और दीक्षा लेकर मोक्ष गये। यह निमित्त की वलवत्ता का प्रमाण है। कुछ अज्ञान बालकों की छेड़छाड़ द्वीपायन मुनि को क्रोध और द्वारिका भस्म होने का निमित्त बना। देवों द्वारा रामचन्द्र लक्ष्मण की मोह की परीक्षा करना ही लक्ष्मण की मृत्यु का कारण बना। भोगासक्त सुकुमाल को मुनिराज की वैराग्य भावना ही दीक्षा लेने एवं सर्बार्थ सिद्धि जाने का निमित्त मिला। राजा श्रेणिक के पुत्र वारिषेण मुनिराज ने अपने गृहस्थ जीवन के मित्र पुष्प डाल को मुनि दीक्षा देदी परन्तु उसका मोह नहीं हटा। अपनी पत्नी से मिलने की तीव्र इच्छा उसकी हो गई आहार लेने के निमित्त से वह अपने घर जाने को तैयार हुआ। परन्तु मुनिराज वारिवेण को मालूम होने पर वे उसे अपने घर ले गये अपनी माता चेलना महाराणी से कहकर अपनी सभी स्त्रियों को बुलाया जो देवांगना जैसी महासुन्दरी थीं पुष्पडाल से उन्होंने कहा कि ये मेरी पत्नी है। इस रहस्य को समझकर वह लज्जित हुआ फिर वह संसार से विरक्त हो गया यह निमित्त का ही प्रभाव है। सुकौशल राजकुमार को अपनी माता ही दीक्षा लेने का निमित्त बनीं। भगवान पार्श्वनाथ का बचन ही नाग नागनी को धरणेन्द्र पद्मावती हो जाने का निमित्त मिला। कुत्ता को जीवंधर द्वारा णमोकार मन्त्र देव पद पाने का निमित्त मिला। सिंह पर्याय में चारण ऋद्धि धारियों का सिंह को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संबोधन महावीर भगवान बनने में निमित्त बना।

कथा ग्रन्थों के स्वाध्याय से यह भली भांति मालूम हो जाता है कि कोई भी आत्मा का हित अहित बिना निमित्त कारण के मिले नहीं हो सकता है।

इसी प्रकार नीचे से ऊपर तक चारित्र का पालन भी निमित्त कारणों की सम्हाल से ही हो सकता है। व्यापार आदि में अणुव्रतों की सम्हाल, जीव दया के लिये मुनियों की समिति आदि का पालन, शुद्ध अन्न शुद्ध जल आदि से मन की शुद्धि केश लुंचन उपवास आदि तपश्चरण द्रव्य क्षेत्र काल आदि निमित्त आत्म शुद्धि के कारण हैं। वाह्य चरित्र पालन के बिना अंतरंग चारित्र विशुद्धि नहीं हो सकती है यह अनिवार्य नियम है। चरणानुयोगि शास्त्रों के स्वाध्याय से आत्म शुद्धि के लिये वाह्य निमित्तों की सम्हाल परमावश्यक हैं इस बात का परिज्ञान होता है। द्रव्यानुयोग शास्त्रों के अध्ययन से द्रव्य गुण पर्यायों के परिणमन एवं उत्पादव्यय ध्रौव्य उपादान निमित्त दोनों के सहयोग से होता है इसका पूरा स्पष्टीकरण हो जाता है। लोक रचना भी उपादान निमित्तों से खचित है। घनोदधिघनबात तनुबात आदि आधार आधेय निमित्त उपादान से ही हो रहा है यह करणानुयोग शास्त्रों से जाना जाता है।

अनंतवार मुनिपद धारण किया फिर भी मोक्ष नहीं

निश्चय एकांतवादी छहढाला का सहारा लेकर यह भी कहते हैं कि भावों की निर्मलता में वाह्य निमित्त कार्यकारी नहीं हैं। यदि वाह्य निमित्त आवश्यक हो तो मुनि पद अनंतवार धारण करने पर एवं पीछी कमंडल के ढेर लग जाने पर भी मोक्ष नहीं होती है ग्रैवेयिक तक ही जीव चक्कर लगाता फिरता है। इसलिये आत्मा की विशुद्धि और मोक्ष प्राप्ति के लिये वाह्य मुनिपद आदि निमित्त कुछ नहीं कर सकते हैं ऐसा निश्चय एकांत वादियों का कहना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु यह भी समझ की भूल भरी बात है छहढाला का कथन मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से हैं और अभव्य जीव की अपेक्षा से है। जब तक मिथ्यात्व है तब तक जीव मुनिपद भी धारण करता रहे तो भी उसे मोक्ष की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती है। क्योंकि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होना सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की प्राप्ति का मूल कारण है। इसलिए मिथ्यादृष्टि का मुनिपद धारण करना भी मोक्ष साधक नहीं हो सकता है सिद्धान्त तो यहां तक बताता है कि सम्यग्दर्शन प्राप्त होजाने पर भी यदि चारित्र की समग्रता नहीं है अथवा सम्यग्दर्शन छूट जाता है तो अर्ध पुद्गल परावर्तन काल तक उस समय जीव को मोक्ष नहीं हो पाती है। परन्तु सम्यग्दृष्टि उतने काल तक (अधिक से अधिक) नियम से मोक्ष चला जाता है।

फिर अभव्य जीव तो सदैव मिथ्यादृष्टि (पहले मिथ्यात्व गुण स्थान में ही) रहता है। वह मुनि पद भी धारण कर ले तो भी उसका मिथ्यात्व नहीं छूट सकता है उसी अभिप्राय से छहढाला कर्ता पं० दौलतरामजी ने अनंतवार मुनिपद का उल्लेख कर तीव्र एवं अनाद्यनंत मिथ्वात्म कर्म का रहस्य बताया है।

न्याय सिद्धान्त की जानकारी के बिना भूल

यह भी न्याय शास्त्र सिद्धान्त से समझ लेना चाहिए कि केवल निमित्त ही सब कुछ करता हो सो भी बात नहीं है। किन्तु उपादान की योग्यता और पात्रता भी आवश्यक है। दोनों की योग्यता एवं पात्रता अथवा दोनों की सामर्थ्य के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता है। निमित्त समर्थं भी मिल जाय किन्तु उपादान की पात्रता नहीं हो तो भी कार्य सिद्धि नहीं होती है। इस संबंध में एक कथा का सार यहां लिख देना उपयोगी है—

चतुर्थकाल में एक मुनिराज महीनों तक उपवास, तीव्र गर्मी में तपे हुए पहाड़ों पर ध्यान, तीव्र ठंडे में नदी तट पर ध्यान आदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घोर तपश्चरण करते थे। आसपास के लोग यह समझ रहे थे कि इन महाराज को थोड़े ही समय में केवल ज्ञान होने वाला है। वहां के निवासियों के पुण्योदय रूप निमित्त से अनंत वीर्य भगवान का समवसरण रचा गया जब सभी लोग वहां जा रहे थे तब मार्ग में उन घोर तपस्वी साधु महाराज को एक ढाक (पलास) वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए उन लोगों ने देखा। समवसरण में जाकर उन्होंने सर्वज्ञ अनंतवीर्य भगवान से प्रश्न किया उन मुनि को केवल ज्ञान कब होगा भगवान की वाणी खिरी कि जिस वृक्ष के नीचे वे ध्यान कर रहे हैं उस वृक्ष पर जितने पत्ते हैं उतने भव धारण करना अभी बाकी हैं। जब वे सभी श्रावक समवसरण से लौटकर आये तब उन्होंने देखा कि वे एक इमली के वृक्ष के नीचे बैठे हैं। भगवान की वाणी खिरने के पहले ही वे इमली के वृक्ष के नीचे जा बैठे थे। उन श्रावकों ने बड़े खेद के साथ कहा कि महाराज आपका होनहार अच्छा नहीं है आप ढाक वृक्ष के नीचे ही बैठे रहते तो आपका क्या बिगड़ता था इमली के वृक्ष के नीचे आपका होनहार आपको ले आया। तब महाराज ने बिना विषाद किये प्रसन्नता से कहा कि देखो मैं तो यह समझता था कि यह संसार समुद्र अपार है। मुझे शायद अनंत भवों तक इस संसार में भटकना पड़े परंतु सर्वज्ञ की वाणी से निश्चित हो गया कि अब मेरे भव जघन्य संख्यात मात्र रह गये हैं। इमली के पत्ते अनंत नहीं हैं। परीता संख्यात युक्ता संख्यात और एक जघन्य असंख्यात भी नहीं हैं। उत्कृष्ट संख्या तभी नहीं है साधारण जघन्य हैं। सो अब मेरा तो संसार का अंत अति निकट है। लोगों के चले जाने पर मुनिराज ने निदान बांधा कि मैं मर कर निगोदिया बन जाऊं निदान नीचे का तो झट सफल हो जाता है ऊपर का नहीं भी हो। वे मरकर निगोदिया जीव हो गये।

इस कथा से लोग आश्चर्य के साथ शंका करेंगे कि ऐसे महा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तपस्वी साधु ने निगोद का निदान क्यों किया ? बिना समझे ही ऐसी शंकाऐं होती हैं ।

निगोदिया जीव एक अंतर्मुहूर्त समय में छयासठ हजार एक सौ बत्तीस जन्म और मरण करता है दो इन्द्रिय ते इन्द्रिय पंचेन्द्रियों के भव मिलाकर अन्तर्मुहूर्त में छयासठ हजार तीन सौ छत्तीस जन्म मरण हो जाते हैं । जैसा कि गोम्मटसार है–

तिण्णि सया छत्तीसा छावट्ठि सहस्सकाणि मरमाणि ।
अन्तोमुहुत्त काले तावदिया चे खुद्दभवा ॥

इस सर्वज्ञ प्रतिपादित निगोद जीव के भवों को ध्यान में लेकर ही उन मुनिराज ने निगोद होना शीघ्र मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन समझा । उन्होने इमली के पत्तों बराबर भव अन्यन्त थोड़े समय में पूरे कर डाले वहां से वे सीधे मनुष्य पर्याय में आगये । और मुनि पद धारण कर उसी भव से मोक्ष चले गये ।

इस कथा को कहने का प्रयोजन यह है कि बिना उपादान में पूर्ण पात्रता आये निमित्त भी कुछ नहीं कर सकता है । उन मुनिराज ने निगोद भव को धारण करने के पहले शुक्ल ध्यान के योग्य भावों की विशुद्धि प्राप्त नहीं की इसलिये मुनि पद का निमित्त पाकर भी वे उस भव से मोक्ष नहीं जासके । इसलिये जहां उपादान की योग्यता समर्थ एवं योग्य है वहाँ सम्यदृष्टी मुनिपद का निमित्त पाकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है । जहां उपादान में पात्रता नहीं है वहाँ मुनिपद रूप निमित्त कुछ नहीं कर सकता है अर्थात उपादान और निमित्त दोनों ही सामर्थ्य कार्य माधक है ।

न्याय सिद्धान्त का रहस्य

न्याय सिद्धान्त ही कार्यकारण भाव, हेतु हेतुमद्भाव, ज्ञेय ज्ञायक भाव व्याप्य व्यापक भाव का परिज्ञान कराता है इसी से जैन तत्वों का स्वरूप का परिज्ञान होता है । प्रकरण में यहां विषम व्याप्ति है अनादि काल से जितने भी तीर्थङ्कर और सामान्य केवली मोक्ष गये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। वे मुनिपद धारण करके ही गये हैं अर्थात मुनि पद धारण किये बिना कभी किसी को मोक्ष नहीं हो सकती है। परन्तु जो मुनि पद धारण करें वे सब मोक्ष जायेंगे ऐसा नियम नहीं है जिनकी आत्मा रत्नत्रय विशिष्ट है वे ही मुनि पद से मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इस व्याप्ति से यह सिद्ध हो जाता है कि उपादान और निमित्त कारण दौनों की योग्यता कार्य साधक है। दोनों में यदि एक की समर्थता पूरी नहीं है तो कार्य नहीं होगा। दोनों की सामर्थ्य आवश्यक है इस न्याय सिद्धान्त को बिना मनन किये जो निश्चय एकान्त पर आरूढ़ हो कर निमित्त का निषेध करते हैं वे वस्तु तत्व की जानकारी से वहिर्भूत है।

एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर कोई प्रभाव नहीं

ऐसी मान्यता भी एकान्त निश्चयवादियों की है कि किसी द्रव्य पर दूसरे पदार्थ का कोई असर या प्रभाव या विकार आदि नहीं होता है। सभी द्रव्य स्वतन्त्र हैं।

यहां पर यह खुलासा कर देना आवश्यक है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप कभी नहीं हो सकता है एक द्रव्य का गुण दूसरे द्रव्य में नहीं जासकता है सभी द्रव्य और गुण अपने में ही परिणमन करते हैं यह जैन सिद्धान्त है परन्तु प्रत्येक द्रव्य में और उसके गुणों में दूसरे पदार्थों की वाह्य सहायता से प्रभाव पड़ता है तभी तो द्रव्य गुणों में विकार या विभाव रूप परिणमन होता है। जैसे घड़ा बनता है तो मिट्टी से ही परन्तु जब तक कुम्हार अपने हाथों से चाक को डण्डे से घुमाकर उस चाक पर रखी हुई मिट्टी पर अपना हाथ नहीं घुमावेगा तब तक घड़ा कभी नही बन सकता। हाथों के घुमाने से कुम्हार के गुण दोष घड़े में नहीं आते हैं परन्तु उसकी सहायता मिट्टी में घड़े का आकार बना देती है।

आत्मा पर परद्रव्य का प्रभाव

शब्द जड़ पुद्गल है फिर भी यदि कोई किसी को गाली देता है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो सुनने वाले को तुरन्त क्रोध आजाता है। क्रोध आत्मा का विकारी भाव है बारूद से प्रेरित शब्द कानों की झिल्ली को फाड़ देता है। तब मनुष्य बात सुनने में असमर्थ होता है। सिनेमा आदि देखने से सरागी मनुष्य बहुत प्रसन्न होते हैं यह प्रसन्नता आत्मा का ही राग परिणाम है। कड़वा चिरायरा, गिलोय का काढ़ा पीने में भाव मन अरुचि करता है। मीठा खाने से मन में रुचि होती है यह सब पर द्रव्य का ही आत्मा पर प्रभाव है। तीव्र दुर्गन्ध से मनुष्य नाक मुंह बन्द कर लेता है बुरा अनुभव करता है। इतर की सुगन्ध आने पर मन में सुखद अनुभव होता है यह सब आत्मा पर जड़ पुद्गल द्रव्य का प्रभाव प्रत्यक्ष है। जीवित शरीर में सुई चुभोने से तीव्र कष्ट (दर्द) होता है। यह परद्रव्य का आत्मा पर गहरा प्रभाव नहीं है क्या ? विष भक्षण से मृत्यु हो जाती है यह पर द्रव्य का ही प्रभाव है। आत्मा का स्वभाव सर्वज्ञ एवं वीतराग स्वरूप है परन्तु संसार में पर पदार्थ पुद्गल के संयोग से आत्मा क्रोध मान माया लोभ आदि विकार एवं विभाव में लिप्त हो रहा है इसलिये वह नितान्त प्रत्यक्ष विपरीत बात है कि एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य का बिगाड़ बना व कुछ नहीं कर सकता है। जीव पर द्रव्य पुद्गल का इतना भयंकर एवं दुखद प्रभाव है कि उस ईश्वर पद के सामर्थ्यशाली जीव को रंक एवं जड़ द्रव्य जैसा बना दिया है। घातियाँ कर्मों ने आत्मा के ज्ञान दर्शन, सुख दर्शन, चारित्र गुणों को विकारी बना दिया है।

जो होनहार है वही होगा (क्रमबद्ध पर्याय)

ऐसा भी निश्चय एकान्तवादी कहते हैं कि जिस जीव का जो होना है सो होगा। जो सर्वज्ञ ने देखा है वही होगा। इसी मन्तव्य को क्रमबद्ध पर्याय अथवा नियत पर्याय नाम से कहा जाता है परन्तु—

ऐसी मान्यता तो दि० जैन सिद्धान्त की पूर्ण विघातक है। इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मान्यता से किसी भी जीव को कभी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है इसी का स्पष्टीकरण किया जाता है।

पहली बात तो यह विचारणीय है कि होनहार को मानने वाले कर्मोदय से होनहार मानते हैं या कर्म का आत्मा से सम्बन्ध नहीं मान कर आत्मा की स्वयं की योग्यता से जीव की होनहार बताते हैं यदि कर्मोदय से होनहार बतायी जाती है। तो जीव कर्मबंध करता रहेगा और उसके उदयानुसार चारों गतियों में घूमता रहेगा पुराने कर्म समय पाकर झर जायेंगे नवीन कर्म वंधते रहेंगे ऐसी अवस्था में सविपाक निर्जरा एवं कर्म चेतना तथा कर्म फल चेतना ही बनी रहेगी। जीव को संसार से मुक्त होने का कभी भी अवसर नहीं आसकता है।

यदि कहा जाय कि आत्मा में कर्म का तो सम्बन्ध नहीं है वह अपनी योग्यता से ही गतियों में घूमता है और आत्मा की योग्यता से ही मोक्ष भी हो जाती है तब इस प्रश्न का क्या समाधान है कि वह आत्मा की योग्यता आत्मा का स्वभाव है या विभाव है जिससे संसार और मोक्ष दोनों विरोधी कार्य होते हैं। यदि योग्यता आत्मा का स्वभाव है तो संसार भ्रमण रूप विभाव क्यों हो रहा है ? यदि आत्मा का विभाव है तो आत्मा में किस कारण से आगया है ? और उस विभाव से छूटकर स्वभाव वह किस कारण से कब होगा ? क्योंकि जीव की पर्यायें तो नियत एवं क्रमवद्ध मानी जाती हैं इन प्रश्नों का कोई समाधान नियत क्रमवद्ध पर्याय मानने वाले नहीं दे सकते हैं।

शास्त्राधार से सहेतुक समाधान

गोम्मटसार में नियतिवाद को मिथ्यादृष्टि के भेदों में बताया गया है। जैन सिद्धान्त में इस नियतिवाद अथवा क्रम वद्ध पर्याय को कोई स्थान नहीं है।

जं जम्मि देसे जेण विहाणेण जेण कालंमि इत्यादि भी जैन शास्त्रों में होनहार का उल्लेख है उसका अर्थ यही है कि जो मनुष्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या जीव अपनी पर्याय को खाने, पीने निद्रा, भय, विषयों के सेवन आदि में ही बिताते हैं परलोक का एवं आत्मा के उत्थान का कोई लक्ष्य नहीं रखते हैं ऐसे जीवों का होनहार ही प्रवल रहता है। उनके कर्म बंधते हैं और उदयागत कर्म झरते हैं यह सविपाक निर्जरा होती रहती है। सभी शास्त्रों में पुरूषार्थ को प्रधान बताया गया है और परमार्थ सिद्धि के लिए व्रत तपश्चरण ध्यान संयम समता भाव जिन पूजन मुनिदान आदि साधनों द्वारा कर्मों की निर्जरा करने का विधान है। अविपाक निर्जरा कर्मों की पुरूषार्थ से ही की जाती है इसी आत्मीय पुरूषार्थ से असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा सम्यग्दृष्टि से लेकर श्रावक मुनि उपशम एवं क्षपक के उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इसी आत्मीय चारित्र पुरूषार्थ से अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति करण, इन करणत्रय द्वारा स्थिति खंडन अनुभाग खंडन होजाता है। तथा कर्मों का उत्कर्षण अपकर्षण भी होता है। राजा श्रेणिक ने सातवें नरक की तेतीस सागर की आयु वांधी थी परन्तु क्षायिक सम्यक्त्व एवं तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो जाने से उसकी नरकायु केवल चौरासी हजार वर्ष की रह गयी यह कितना महान परिवर्तन है जो क्षायिक सम्यग्दर्शन आदि विशुद्ध भावों से प्राप्त होगया और श्रेणिक को विशुद्ध भावों की प्राप्ति मुनिराज के प्रभाव पूर्ण संवोधन से हुयी थी। देखिए-भरत चक्रवर्ती गृहस्थ जीवन में विरक्त रहे ओर जब तपोवन को गये तब उनकी परिणाम विशुद्धि इतनी बढ़ गयी कि उन्होंने निर्ग्रन्थ मुनिपद धारण कर केश लुञ्चन आदि क्रियायें की पश्चात् उन्हें केवल ज्ञान होगया। अनंत संचित कर्म समूह उनका क्षण मात्र में झर गया यदि वे होनहार पर ही निर्भर रहते तो क्या वे मोक्ष कभी पा सकते थे? या वन में जाकर मुनि क्यों बनते? मोक्ष सिद्धि का उपाय आत्मीय पुरूषार्थ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को प्राप्त करना है। वह ज्ञान चेतना से ही साध्य है। कर्म और कर्मफल चेतना वाले ही होनहार के भरोसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनंत संसार में घूमते फिरते हैं सर्वज्ञ ने जो देखा है वही होगा। यह तो सर्वथा सत्य हैं, सर्वज्ञ ने उन जीवों को भी देखा है या देखते हैं जो होनहार के भरोसे व्रत, तप, संयम का विरोध करते हैं और अपने कुमतिज्ञान के साथ दूसरों का भी अहित करते हैं। और सर्वज्ञ देव ने उनको भी देखा है और देखते हैं कि जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इन चार आराधनाओं का पालन करते हुए मोक्ष मार्ग में लगे हुए हैं सर्वज्ञ होनहार वालों को और पुरुषार्थ वालों दोनों को देखते हैं जो जब जैसा करता है उसे सर्वज्ञ वैसे रूप में देखते जानते हैं अतः सर्वज्ञ ने जो देखा है वही होता है और जो होना है उसे वे उसी रूप में जानते हैं अतः सर्वज्ञ प्रत्यक्ष दृष्टा हैं। यदि होनहार ही शास्त्र सम्मत होता तो श्रावक धर्म और मुनिधर्म धारण करने का तथा आत्म विशुद्धि एवं वीतरागता प्राप्तकर कर्मों के नाश करने का कथन आचार्य क्यों करते ? शास्त्रों में क्रमबद्ध पर्याय या नियतिवाद मिथ्यावाद का निषेध और आत्मीय पुरुषार्थ का विधान पाया जाता है। व्यवहार धर्म एवं निश्चय धर्म होनहार रूप कर्म संतति को नष्ट करने एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए ही पालन किया जाता है।

होनहार के पात्र कौन हैं ?

होनहार अर्थात् कर्मों के अनुसार जब जिसका जो होना है वह उसका होगा यह भी शास्त्रों में लिखा है उसके पात्र नियम रूप से तो निगोदिया आदि अनंतानंते एकेन्द्रिय जीवों से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक सभी जीव होनहार के ही पात्र हैं। वे मन के बिना स्वात्महित सोचने में असमर्थ हैं अपने कर्मों के अनुसार फल भोगते हैं। ऐसे जीव तो नियम से होनहार के ही पात्र हैं। साथ ही वे संज्ञी मनुष्य भी होनहार के पात्र हैं। जो अपने तीव्र दर्शन मोहनीय कर्मोदय से अपनी ख्याति, पूजा और जनता में मान बढ़ाई चाहने आदि तुच्छ प्रयोजन वंश शास्त्र विरुद्ध नवीन मत चलाने की धुन में अपना

Gaṇesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और दूसरों का अहित करना चाहते हैं ऐसे लोग अपनी भूल से आत्म सिद्धि अथवा और अध्यात्म मार्ग से बहुत दूर हैं।

दि० जैन धर्म एक ऐसा चितामणि अमूल्य रत्न है जिसके द्वारा मनुष्य सन्मार्ग में लगकर सच्चे सुख को प्राप्त कर सकता है। इस असाधारण परम हितकारी धर्म को दो प्रकार से प्राप्त किया जासकता है। या तो वीतराग महर्षियों द्वारा रचे हुए शास्त्रों में बताये हुए तत्वों को आज्ञा मानकर उन पर पूर्ण श्रद्धान कर लेना चाहिए। अथवा यदि उन शास्त्रों को समझने की विद्वत्ता है तो परीक्षा करके तत्व श्रद्धान करना चाहिए। जो कुल परंपरा से दि० जैन नहीं हैं वे इस आत्म सिद्धि कराने वाले सर्वज्ञ भासित सहेतुक एवं अकाट्य प्रमाणसंमत धर्म को परीक्षा प्रधानी वन करके ही ग्रहण करते हैं। आचार्य विद्यानंदि (पात्र केसरी) ने परीक्षा करके ही इस धर्म को धारण किया था। वे जगवंद्य आचार्य वने उन्होंने अष्ट सहस्त्री, श्लोक वार्तिक जैसे महान् गंभीर शास्त्रों की रचना की। वर्तमान में भी अन्यधर्मावलंवी अनेक सत्पुरुषों ने इस दि० जैन धर्म को धारण कर अपनी स्वात्म सिद्धि के लिए सप्तम प्रतिमा क्षुल्लक पद एवं मुनि पद धारण कर स्वपर हित किया हैं। पूज्य क्षुल्लक न्यायाचार्य गणेशप्रसादजी वर्णी साठी वैश्य वैष्णव थे वे दि० जैन सिद्धान्त को पढ़कर दि० जैन एवं पूज्य त्यागी बने। आज भी हमारे सामने परम पूज्य मुनिराज श्रुत सागर महाराज हैं। जो कलकत्ता के व्यापारी श्वेताम्बर जैन थे। उस समय वे कलकत्ता में हमारी कपड़े की दूकान पर आते थे और अनेक शंकाऐं करते थे। उनका समाधान करते हुए हमें अत्यधिक प्रसन्नता होती थी। हमें क्या मालूम थी कि ये श्वेताम्बर शंकाकार आगे शीघ्र ही वंदनीय दि० साधु वन जायेंगे ? उन्होंने परीक्षा करके दि० जैन धर्म को धारण किया और वे आज विशिष्ट विद्वान् एवं तपस्वी निर्ग्रन्थ साधु हैं और धवल आदि दि० सिद्धान्त शास्त्रों का अध्ययन और मनन करते हैं उनके द्वारा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाज का सच्चा कल्याण हो रहा है।

इसलिए चाहे कुल परंपरा से दि० जैन हो चाहे समयसार के निश्चयनय को पढ़कर उस निमित्त से दि० जैन बना हो चाहे परीक्षा प्रधानी हो चाहे जिनवाणी का आज्ञा प्रधानी हो कोई भी हो उसका कर्तव्य है कि वह लोकेषणा-ख्याति पूजा की चाहना छोड़कर अपना परमार्थ साधक सच्चा आत्मीय हित करें। श्रोताओं को भी सन्मार्ग का ही प्रतिपादन करें। इसके विपरीत जो इस दि० जैन धर्म जैसे परम हितकारी चिंतामणि स्वात्म सुख देने वाले दि०जैन धर्म को धारण कर भी जो उसके विपरीत प्रवृत्ति एवं प्रचार करते हैं वे दुःख भाजन अनंत संसारी बनते हैं।

आज समाज के परम सौभाग्य से कई विद्वान दिगम्बर जैन आचार्य हैं और अनेक विद्वान मुनिराज हैं उनके समीप में शास्त्रीय रहस्य समझने का प्रयत्न करना ही श्रेयस्कर है। अन्यथा जिनवाणी के विरुद्ध मान्यता और धर्म विपरीत प्रचार करने वालों की जिन मंदिर निर्माण एवं जिन पूजन आदि क्रियायें केवल दिखावटी एवं समाज के आकर्षण का प्रलोभन मात्र है। जबकि वे राग बताकर इन धार्मिक मोक्ष साधक क्रियाओं को संसारवर्धक एवं त्याज्य बताते हैं और उन्हीं जिन मंदिरों में अपनी मूर्ति स्थापित कराकर उसकी स्तुति आरती पूजा कराते हैं। आचार्यों का यह श्लोक प्रत्येक स्वहित चाहने वालों को ध्यान में लेना चाहिए--

सूक्ष्मं जिनोंदितं तत्वं, हेतुभिर्नैव हन्यते।
आज्ञा सिद्धं च तद्ग्राह्यं नान्यथा वादिनोजिनाः॥

अर्थ–जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित तत्व अत्यन्त सूक्ष्म हैं। वे इतने सप्रमाण एवं सहेतुक है जो किसी वादी प्रतिवादी द्वारा खंडित नहीं हो सकते हैं अतः स्वहित चाहने वाले भव्यों का कर्तव्य है कि वे उन जिनेंद कथित तत्वों को आज्ञा रूप ग्रहण करें क्योंकि जिनेंद्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान सर्वज्ञ एवं वीतराग हैं उनके वचन अन्यथा नहीं हो सकते हैं।

भावि तीर्थंकर होने की घोषणा

निश्चय एकान्तीयों द्वारा एक ओर तो यह कहा जाता है कि पुण्यभिष्टा के समान त्याज्य है दूसरी ओर यह कहा जाता है कि ये भावि तीर्थंकर हैं। निश्चय एकांत के प्रवर्तक के मुख से यह घोषणा की जाती है कि वे विदेह क्षेत्र में सीमंधर स्वामी के समवसरण में राजकुमार की पर्याय में अपने साथियों के साथ बैठे थे। वहीं पर कुंद कुंद आचार्य भी बैठे थे। वहां से यहां मनुष्य पर्याय में आगये हैं।

ये सब ऐसी काल्पनिक बातें हैं जिन पर कोई थोड़ा विचारशील भी विश्वास नहीं कर सकता है। इस प्रसंग में यह सोचने समझने की बात है कि क्या दो हजार वर्ष पहले के भवों को बताने का ज्ञान एक अव्रती साधारण गृहस्थ को हो सकता है। क्या बताने वाले गृहस्थ को अवधि ज्ञान होगया है या विभंगावधि है? या भवों को बताने वाला निमित्त ज्ञान हो गया है? ऐसा निमित्त ज्ञान तो एक सामान्य मुनि को भी नहीं हो सकता है, विशेष ऋद्धि धारी महा तपस्वी परम शुद्ध मुनि ही दो हजार वर्ष पूर्व के भवों को बता सकते हैं। फिर अपने भवों को बताने के साथ दूसरे के भवों को बताना ऐसा तो अवधिमनः पर्यय ज्ञानधारी मुनिराज ही बता सकते हैं। वर्तमान समय में ऐसे मुनि भी नहीं हैं। साधारण गृहस्थ की तो बात क्या? ऐसी निर्मूल निराधार काल्पनिक बातों की घोषणा ये निश्चय एकांती स्वयं अपने मुख से करते हैं फिर भी कुछ भोले लोग एवं कुछ स्वार्थ साधक लोग ऐसी मिथ्या मान्यताओं का आदर एवं समर्थन करते हैं वे अपनी मिथ्या श्रद्धा का परिचय देते हैं। यदि दो हजार वर्ष के भवों को बताने वाला निमित्त ज्ञानी आज कल की एक भी बात का सही उत्तर दे सके तो उसके निमित्त ज्ञान की परीक्षा की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जा सकती है। फिर यह भी विचारणीय बात है कि विदेह क्षेत्र में स्वामी सीमंधर तीर्थंकर के समवसरण में बैठे हुए ये निमित्त ज्ञानी सम्यग्दृष्टि थे या मिथ्यादृष्टि ? यदि सम्यग्दृष्टि थे तो स्वर्ग जाते या आयु बंध पहले कर चुके हों तो भोग भूमि में जाते फिर स्त्री पर्याय से पुरुष पर्याय में कैसे आगये। ये सब बातें ध्यान देने योग्य है। दूसरी बात भावि तीर्थंकर सम्बन्ध की है निश्चय एकान्त प्रवर्तक यदि भावि तीर्थंकर है तो प्रश्न यह है कि तीर्थंकर प्रवृत्ति का बंध उन्होंने कब और कहां पर किया था ? क्योंकि यह शास्त्र प्रमाण है कि--

तित्थयरं बंध पारंभयाणरा केवलि दुगंते (गोम्मटसार)

अर्थः— तीर्थंकर प्रकृति का बंध केवली और श्रुत केवली के चरण सान्निध्य में ही हो सकता है, अन्यत्र नहीं। इस प्रमाण के अनुसार बताना चाहिये कि तीर्थंकर प्रकृति का बंध कब और कहां किया गया इसी के साथ यह भी विचारणीय बात है कि तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यग्दृष्टि पुरुष ही कर सकता है। ऐसा बंध करने वाला सम्यग्दृष्टि मरकर स्वर्ग जाता है। यदि आयु बंध पहले हो गया हो तो नरक भी जाता है जैसे कि राजा श्रेणिक पहले नरक गये हैं वे क्षायिक सम्यग्दृष्टि और तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर चुके थे। अब वे वहां से निकल कर पहले तीर्थंकर महापद्म होंगे।

ये भावि तीर्थंकर यहां मनुष्य पर्याय में कैसे आ गये ? यह बात सर्वथाशास्त्र विपरीत और काल्पनिक है निश्चय एकान्त के प्रवर्तकों के अनुयायी साक्षर लोग भी क्यों चुप हैं। उन्हें ऐसी मनगढन्त काल्पनिक बातों का स्पष्ट रूप से प्रतिवाद कर देना चाहिये। ऐसी सर्वथा धर्म विरुद्ध बातों को तथा निश्चय एकान्त को धर्मात्मा पुरुष मुनिजन तथा श्रावकजन सहन नहीं कर सकते हैं। उन्हें बहुत खेद होता है और सर्व कल्याणकारी दि० जैन धर्म में विकृति एवं एक नया सम्प्रदाय बन जायगा इस बात की चिन्ता है। आचार्य शिरोमणि जिनसेनाचार्य ने कहा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मं निर्मूल विध्वंसं सहन्ते न प्रभावका: ।

इसका अर्थ यह है कि जो धर्म की प्रभावना चाहने वाले धर्मात्मा पुरुष हैं वे धर्म का जड़ मूल से विघात होना सहन नहीं कर सकते हैं।

जो कोई दिगम्बर धर्म को धारण कर और आगम पर पूर्ण श्रद्धा रख कर तदनुसार स्व पर हित में लग जाते हैं उनका धर्मात्मा पुरुष हृदय से आदर प्रतिष्ठा और सराहना करते हैं। आचार्य वर्य अमृतचन्द्र सूरि कहते हैं कि—

सकल नय विलसितानां विरोध मथनं नमाम्यनेकान्तम् ।

अर्थ:— आचार्य अमृतचन्द्र सूरि उस अनेकान्त धर्म को नमस्कार करते हैं जो द्रव्य पर्याय निश्चय व्यवहार इन सापेक्ष नयों से सुशोभित हो रहा है तथा एकान्त नयों के विरोध को सर्वथा नष्ट कर देता है।

इस प्रकार वस्तु तत्व के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने वाला प्रमाण और नय रूप सम्यग्ज्ञान हैं इन्हीं दोनों का शास्त्राधार से थोड़ा सा दिग्दर्शन हमने किया है। पंचाध्यायी ग्रन्थ राज में इन प्रमाण और नयों का विस्तार से विवेचन है स्वाध्यायशील सज्जन उसका मनन और अध्ययन करें।

सर्वं मंगल मांगल्यं सर्वं कल्याण कारकम् ।
प्रधानं सर्व धर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

जैन दर्शनाचार्य
श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का व्यवहार निश्चय
नयों का निरूपक तथा निश्चय
एकान्त का खण्डन विवेचक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ तृतीय अध्याय

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

चतुर्थगुणस्थान में सम्यक्चारित्र अवश्य होता है

व्यवहार सम्यग्दर्शन में ही अष्ट मूल गुणों का पालन अनिवार्य आवश्यक है

समयसार प्रवचनसार पंचास्तिकाय वृहद्द्व्यसंग्रह पञ्चाध्यायी आदि शास्त्रों में सम्यग्दर्शन का निरूपण बहुत विशद स्वरूप से महत्वपूर्ण लिखा गया है। जिस सम्यग्दर्शन गुण के प्रकट होने पर आत्मा नियम से एवं अनिवार्य रूप से मोक्ष प्राप्त कर लेता है उस सम्यग्दर्शन गुण की महिमा अद्भुत है। उसे पढ़ते पढ़ते आत्मा इतना प्रभावित एवं अपने में निर्मलता का अनुभव करता है जितना कहा नहीं जासकता है।

पंचाध्यायीकार ने एक बात बड़े महत्व की सूक्ष्मदृष्टि से लिखी है उन्होंने लिखा है कि चाहे उपशम सम्यक्त्व हो चाहे क्षयोपशम चाहे क्षायिक सम्यक्त्व हो उन तीनों में सम्यग्दर्शन गुण की निर्मलता की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। तीनों में सम्यग्दर्शन की विशुद्धता समान है। भले ही चारित्र मोहनीय कर्मोदय की परवशता से सम्यक्त्व में अधिक नैर्मल्य नहीं है फिर भी सम्यक्त्व गुण का विकाश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीनों में समान है जिससे सम्यग्दृष्टि भव्यात्मा मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। यही बात मोक्ष मार्ग में कही गई है यथा—

"सोतों जैसा सप्त तत्वनिका श्रद्धान छद्मस्थ के भया था तैसा ही केवली सिद्ध भगवान के पाइए है। तातें ज्ञानादिक की हीनता अधिकता होते भी तिर्यंचादिक वा केवली सिद्ध भगवान के सम्यक्त्व गुण समान ही कहना "मोक्ष मार्ग प्रकाश पृष्ठ ४६०" इसी अन्तर्दृष्टि को लक्ष्य में लेकर केवल सम्यक्त्व गुण के सर्वोपरि दिव्य माहात्म्य के धारक सम्यग्दृष्टि को सिद्धपदौपमम् अर्थात् सिद्ध पद की उपमा वाला बताया गया है। यह अतिशयोक्ति नहीं हैं किन्तु सिद्धों में अनंतगुणों की अभिव्यक्ति में सम्यग्दर्शन गुण भी है वह गुण सम्यग्दृष्टि में भी प्रगट हो चुका है जो सिद्ध पद का एक अंश है। जैसे जिनलिंगधारी मुनि को अर्हंत का लघु नंदन कहा जाता है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से प्रगाढ श्रद्धानी आचार्य समंतभद्र स्वामी ने सम्यग्दर्शन का माहात्म्य अनेक श्लोकों द्वारा रत्नकरंड श्रावकाचार में प्रगट किया है, इतना ही नहीं उन्होंने शिवकोटि राजा के सामने उसकी आज्ञा से कोटपाल द्वारा गर्दन पर तलवार रख देने पर भी अर्हंत देव को छोड़कर मिथ्यादेव को नमस्कार नहीं किया किन्तु अपने महान् प्रतिभापूर्ण पाण्डित्य से वृहत्स्वयम् स्तोत्रं की तत्काल रचना की और जब चंद्रप्रभु भगवान की स्तुति की, उस स्तुति में

चंद्र प्रभं चंद्रमरीचिगौरं चंद्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम्
वन्देभिवंद्यं महतामृषीन्द्रं जिनं जितः स्वान्त कषाय वन्धम्
यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः पदं वभूवाद्भुतकर्मतेजाः
अनन्त धामाक्षर विश्व चक्षुः समन्तदुःखक्षय शासनश्च।

इन श्लोकों को रचा उसी समय ज्वाला मालिनी देवी ने भगवान चंद्रप्रभ की रत्नमयी दिव्य प्रतिमा रत्नमयी सिंहासन पर विराजमान करदी उसी समय स्वामी समंतभद्र ने भगवान चंद्रप्रभ को मन वचन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काय : नमस्कार कर अपने दृढ़ सम्यग्दृष्टि होने का चमत्कारी प्रगाढ माहात्म्य प्रगट कर दिया।

इन श्लोकों में आचार्य श्री ने अपने मारे जाने का अनिवार्य प्रसंग आने पर "समंतदु:खक्षय शासनश्च" यह वाक्य रचा है अर्थात् समन्तभद्र पर जो मरने तक का घोर दु:खमय संकट आगया है उस संकट को निवारण करने की परिपूर्ण सामर्थ्य हे भगवान् ! आपके शासन में ही है।

जिस प्रकार सम्यग्दृष्टि पद्मावती देवी भगवान पार्श्वनाथ की भक्ति श्रद्धा के साथ सदैव आराधना करती है उसी प्रकार ज्वाला मालिनीदेवी भी सम्यग्दृष्टि देवी है वह भगवान चंद्रप्रभ की भक्ति और श्रद्धा पूर्ण आराधना करती है, आचार्य समन्तभद्र को ज्वाला मालिनी सिद्ध थी। इसलिये उसने अटल सम्यग्दर्शनधारी आचार्य श्री के धर्म पर आने वाले संकट को तुरंत दूर कर दिया। सम्यग्दृष्टि शासन देव धर्म पर आये हुए अथवा दृढ़ात्मा धर्मात्माओं पर आये हुए संकट को दूर करने में समर्थ हैं।

अव्रत सम्यग्दृष्टि के विषय में भ्रम पूर्ण विवाद

चतुर्थ गुण स्थान वर्ती अव्रत सम्यग्दृष्टि को भी जघन्य पात्र एवं पूज्य पात्र शास्त्रों में बताया गया है। सर्व साधारण एवं स्वाध्याय शील महानुभाव सम्यग्दृष्टि को संसार विरक्त (अविरत) चारित्रधारी मानते हैं। ऐसा मानना विवाद का विषय भी नहीं है शास्त्र सम्मत है।

कोई विद्वान कहते हैं कि चौथे गुण स्थान वर्ती सम्यग्दृष्टि अव्रती है उसके चारित्र नाम मात्र भी नहीं होता है कोई यहां तक कहते हैं कि अविरत सम्यग्दृष्टि स्थावर हिंसा और त्रसहिंसा दोनों को करता है चाहे जो खाता पीता है। कोई विद्वान कहते हैं कि अविरत सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र नहीं होता है। कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्वान सिद्धों में भी चारित्र नहीं मानते हैं। इस प्रकार चारित्र के विषय में विवाद खड़ा होगया है। इस विवाद से सम्यग्दृष्टि के स्वरूप में वाधा आती है, उसके माहात्म्य में बहुत दोष आता है। इसी प्रकार सिद्धों में चारित्र नहीं मानने से सिद्ध स्वरूप एवं मोक्ष मार्ग के स्वरूप में पूरी वाधा आती है। इसीलिये हम इस विवाद को हेतु पूर्वक शास्त्रों के प्रमाण से निवारण करते हैं जिससे भ्रम दूर हो जाय और धर्म प्रवृत्ति में रुकावट नहीं आसके। पूर्वाचार्यों के वचनों के अनुसार ही वस्तु तत्व का स्वरूप यथार्थ है। इसी श्रद्धा से आत्मा का कल्याण हो सकता है। इसी सद्भावना से हम थोड़ा सा खुलासा कर देना उचित एवं आवश्यक समझते हैं।

अविरत सम्यक्दृष्टि के चारित्र अवश्य होता है

जो विद्वान् अविरत सम्यग्दृष्टि के चारित्र का निषेध करते हैं वे गोम्मटसार का प्रमाण देते हैं—

णोइंदियेषु विरदोणोजीवे थावरे तसेवापि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो ॥

अर्थ—जो इंद्रिय सम्बन्धी भोगों से विरक्त नहीं है और स्थावर हिंसा तथा त्रस हिंसा से भी विरक्त नहीं हैं किंतु जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए तत्वों पर पूर्ण श्रद्धान करता है वह अविरत सम्यग्दृष्टि है।

इसी गाथा के प्रमाण से अविरत सम्यदृष्टि के चारित्र का निषेध किया जाता है परन्तु ऐसा समझना और ऐसा गाथा का भाव समझना भूल है। इस गाथा का अर्थ यही है कि अविरति सम्यग्दृष्टि अभी व्रत्ती नहीं है उसके प्रतिमारूप चारित्र नहीं है। वह नैष्ठिक नहीं है। अणुव्रत निभी रतीचार नहीं पालता है। उसके संयम रूप चारित्र नहीं हैं। एक देश संयम अप्रत्याख्यानकषाय के अभाव में होता है। उसके उसका उदय है। परन्तु वह निरर्गल निर्मर्याद धर्म विरुद्ध प्रवृत्ति करता हो सो बात नहीं है। वह संसार से, भोगों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से, विरक्त है। वह अनुकम्पा (दया) रखता है प्रयोजन मात्र रखता है वह जीवों को मारे ऐसी हिंसा का भावना तथा प्रवृत्ति वह नहीं करता है। इसी गाथा की संस्कृत टीका के आधार पर हिन्दी टीका में श्रीमान् पं० खूबचन्दजी शास्त्री ने यह लिखा है कि इस चौथे गुण स्थान में दोनों संयमों प्राण संयम और इन्द्रिय संयम इन दोनों में कोई संयम नहीं होता है अतएव इसको अविरत सम्यग्दृष्टि कहते हैं परन्तु इस चौथे गुण स्थान के लक्षण में जो अपि शब्द पड़ा है उससे सूचित होता है कि वह अविरत सम्यग्दृष्टि बिना प्रयोजन किसी हिंसा में प्रवृत्त नहीं होता है। क्योंकि यहां असंयम भाव से प्रयोजन अप्रत्याख्यानावरणादि कषायों के अनुदय से पांचवें गुण स्थान में पाये जाने वाले देश संयम के निषेध से है। अतएव असंयत कहने का अर्थ यह नहीं कि असंयत सम्यग्दृष्टि की प्रवृत्ति मिथ्यादृष्टि के समान अनर्गल हुआ करती है। क्योंकि चौथे गुण स्थान में ४१ कर्म प्रकृतियों के बंध व्युच्छित्ति हो जाती है।

(गोमटसार हिंदी टीका)

इस कथन से यह सिद्ध हो जाता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि आरंभी उद्योगी विरोधी हिंसा का त्यागी नहीं है किंतु त्रस हिंसा संकल्पी कभी नहीं करता है। और चाहे जो अभक्ष्य भक्षण भी नहीं करता है। निश्चय सम्यग्दृष्टि का यह लक्षण और कथन है जब कि व्यवहार सम्यग्दृष्टि भी अष्टमूल गुणधारी वन जाता है तब निश्चय सम्यग्दृष्टि की महिमा तो निराली है।

णोइंदियेसु विरदो– इसी गाथा की दोनों संस्कृत टीकाओं में स्पष्ट लिखा है– पहली संस्कृत टीका में लिखा है– अपि शब्देन अनुकंपादिगुण सद्भावात् निरपराधहिंसा न करोति इति सूच्यते। दूसरी संस्कृत टीका में लिखा है कि–

अपि शब्देन सम्वेगादि सम्यकत्व गुणाः सूच्यन्ते अपि शब्देन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुकंपादि स्यात् ।। (गोम्मटसार)

इसी गाथा की हिंदी टीका में पंडित प्रवर पं० टोडरमलजी ने इस प्रकार लिखा है—

"बहुरि अपि शब्द करि अनुकंपा भी है भावार्थ कोई जानेगा कि विषयनि विखें सम्यग्दृष्टि की अविरति है तातें विषयानुरागी बहुत होगा सो नहीं है संवेगादिगुण युक्त है। बहुरि हिंसादि विखें अविरति है तातें निर्दयी होगा सो नाहीं है दया भाव संयुक्त है ऐसा अविरत सम्यग्दृष्टि है।" (गोमटसार)

गोमटसार की गाथा, उसकी दोनों संस्कृत टीकाएं तथा श्री पं० टोडरमलजी की हिंदी टीका से यह स्पष्ट होजाता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि दयावान् और संवेगवान् संसार से विरक्त होता है। वह निश्चय सम्यग्दृष्टि मद्यापिका सेवन अथवा त्रसजीवों की हिंसा कभी नहीं कर सकता है।

ऊपर कही गई गोम्मटसार की णोइंदियेसुविरदो इस गाथा में सम्यग्दृष्टि के लक्षण में मूल बात यह कही गई है कि वह अविरत सम्यग्दृष्टि जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रतिपादित कथन का पूर्ण श्रद्धान करता है। सम्यग्दृष्टि के लक्षण में कहा गया है कि वह तीर्थंकर भगवान के द्वारा कहे गये और गणधर देव श्रुत केवली आदि पूर्वाचार्यों द्वारा रचे गये शास्त्रों पर पूर्ण श्रद्धान करता है। जब वह दृढ़ श्रद्धानी है तब वह जीव हिंसा आदि पापों में कभी प्रवृत्त नहीं हो सकता है।

सम्यग्दृष्टि में प्रशम, संवेग, अनुकंपा आस्तिक्य ये गुण प्रगट हो जाते हैं। उनका स्वरूप समझ लेने से यह भली भांति सिद्ध हो जाता है उसकी प्रवृत्ति हिंसादि कार्यों में नहीं हो सकती है। प्रशमादि गुणों का स्वरूप पढ़िये—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रशमगुण–सम्यग्दृष्टि का

प्रशमो विषयेषूच्चैर्भाव क्रोधादिकेषुच ।
लोका संख्यात मात्रेषु स्वरूपाच्छिथिलं मनः ।
सद्यः कृतापराधेषु यद्वा जीवेषु जातुचित् ।
तद्वाधादि विकाराय न बुद्धिः प्रशमो मतः ।

श्लोक ४२६/२७ (पंचाध्यायी)

अर्थ— पंचेन्द्रिय सम्बन्धी विषयों में और असंख्यात लोक प्रमाण क्रोधादि भावों में स्वभाव से ही मन की शिथिलता का न होना अर्थात् क्रोधादि में मन की प्रबृत्ति का नहीं होना प्रशम है। इसी के आगे यह बताया गया है कि यदि यह प्रशम गुण सम्यग्दर्शन के साथ है तो प्रशम गुण है।

सम्यग्दृष्टि का संवेग गुण

संवेगः परमोत्साहो धर्मे धर्म फले चितः
सधर्मेष्वनुरागो वा प्रीतिर्वा परमेष्ठिषु ।
धर्मः सम्यक्त्वमात्रात्मा शुद्धस्यानुभवो यथा
तत्फलं सुखमत्यक्ष मक्षयं क्षायिकं च यत् ।

श्लोक ४३१/४३२ (पंचाध्यायी)

अर्थ— धर्म और धर्म के फल में पूरा उत्साह होना और साधर्मी भाइयों में अनुराग होना तथा पांच परमेष्ठियों में प्रीति का होना संवेग है।

सम्यग्दर्शन स्वरूप आत्मा ही धर्म है अथवा शुद्धात्मा का अनुभव होना ही धर्म है उसका फल कभी नष्ट नहीं होने वाला अतीन्द्रिय क्षायिक सुख है।

सम्यग्दृष्टि की अनुकम्पा

अनुकम्पा क्रियाज्ञेया सर्वसत्वेष्वनुग्रहः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मैत्रीभावोथ माध्यथं नैःशल्यं बैरवर्जनात्

श्लोक ४४६ (पंचाध्यायी)

अर्थ— सम्पूर्ण प्राणियों में उपकार बुद्धि रखना अथवा सब जीवों में मैत्री भाव रखना यह भी अनुकम्पा है। अथवा विरोधी पुरुषों में माध्यस्थ (उपेक्षा) भाव रखना तथा सब जीवों से बैरभाव छोड़ कर निःशल्य कषाय रहित भाव रखना अनुकम्पा है।

इस उपर्युक्त कथन से और गोम्मटसार की उक्त गाथा के ही प्रमाण से तथा पंचाध्यायी तथा राजवार्तिक के प्रमाण से यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्यग्दृष्टि चारित्र पालना है किंतु संयम रूप चारित्र उसके नहीं होता है उसका विरोधी अप्रत्याख्यान कषाय का उदय है जो अविरत सम्यग्दृष्टि के मौजूद है। संयम रूप चारित्र पांचवें गुण स्थान से प्रारम्भ होता है उस गुण स्थान में एक देश संयम है। उसमें संयम रूप चारित्र नियमित एवं प्रतिज्ञा रूप में धारण किया जाता है आगे आगे की प्रतिमाओं में पहली पहली प्रतिमाओं का पालन करना अत्यन्त एवं अनिवार्य आवश्यक है। अन्यथा प्रतिमा भंग हो जायगी। परन्तु संयम रहित चारित्र में अभ्यास दशा है उसमें क्रम से बढ़ने वाली विशुद्धता नहीं है।

सम्यग्दर्शन के दो भेद

एक व्यवहार सम्यग्दर्शन दूसरा निश्चय सम्यग्दर्शन व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप उमास्वामि आचार्य ने—

"तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्" बताया है, आचार्य समंत भद्र स्वामी ने—

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागम तपोभृताम् ।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥

और भी आचार्यों ने श्रद्धा रुचि प्रतीति तथा प्रशम संवेग अनुकम्पा आस्तिक्य आदि सम्यग्दर्शन के लक्षण बताये हैं परन्तु वे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सभी लक्षण ज्ञान परक हैं तत्वों का देव शास्त्र गुरुओं का लोक अलोक आदि का श्रद्धान करना ज्ञान की ही पर्यायें हैं। ज्ञान के द्वरा सम्यग्दर्शन का वाह्य स्वरूप बताया गया है। यह सब कथन व्यवहार सम्यग्दर्शन का स्वरूप है। इनके रहने पर निश्चय सम्यक्त्व हो भी या नहीं भी हो। व्यवहार सम्यक्त्व निश्चय सम्यक्त्व का साधक है। जो जिनेन्द्र भगवान के श्रद्धाभक्ति से दर्शन पूजन करते हैं मुनिदान देते हैं तीर्थयात्रा करते हैं पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराते हैं। जिन मंदिर का निर्माण कराते हैं। ये सब व्यवहार सम्यग्दृष्टि के चिन्ह हैं।

अष्टमूल गुण धारण भी उसी का चिन्ह है

आठ मूल गुण इस प्रकार हैं—

मद्यपल मधुनिशासन पंचफली विरति पञ्चकाप्तनुति
जीव दया जल गालन मिति च क्वचिदष्टि मूल गुणाः
(सागार धर्मामृत)

अर्थ—मदिरा, मांस, मधु का त्याग करना, रात्रि भोजन का त्याग करना, पाँच उदम्बर फलों का त्याग करना, नियम रूप से देव दर्शन एवं पंच परमेष्ठी का पूजन स्तवन करना जीवों पर दया रखना, जल छान कर पीना। यह सब व्यवहार चारित्र की क्रिया है। क्योंकि इनको पालन नहीं करने वाला जैन कहलाने का भी पात्र नहीं है। इसीलिये इन आठ मूल गुणों का पालन करना व्यवहार सम्यदृष्टि का चारित्र है।

अष्टमूल गुण धारण किये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता है

कोई विद्वान यहां तक कहते हैं कि सम्यदर्शन के बाद ही मद्य मांसादि का त्याग होता है उसके पहले नहीं होता। उनकी समझ यह है कि सम्यंदृष्टि केवल जिनेन्द्र कथित पदार्थों की श्रद्धा करता है वह त्रसहिंस का त्यागी नहीं है अतः चाहे जो अभक्ष्य भक्षण करता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है चाहे जैसी संकल्पी हिंसा करता है। ऐसी समझ शास्त्रों के अभिमत को नहीं समझने से है। सम्यग्दृष्टि को उन्होंने सामान्य समझा है जो अनंत संसार के परिभ्रमण को नष्ट कर नियम से मोक्ष का अधिकारी बन चुका है। सम्यग्दृष्टि बहुत विशुद्ध बन चुका है वह मद्यमांसादि का त्याग तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से पहले ही कर देता है। अन्यथा बिना विशुद्ध हुए वह सम्यग्दर्शन कभी प्राप्त नहीं कर सकता है। प्रमाण इस प्रकार है—

निसर्गाद्वा कुलाम्नायादायातास्ते गुणाः स्फुटम्
तद्विना न व्रतं यावत् सम्यक्त्वं च तदाङ्गिनाम्
एतावता विनाप्येष श्रावको नास्ति नामतः
किं पुनः पाक्षिको गूढो नैष्ठिकः साधकोथवा
(पञ्चाध्यायी)

अर्थ—ये आठ मूल गुण स्वभाव से अथवा जैन कुल में उत्पन्न होने से स्वयं पाले जाते हैं। उनके बिना न तो कोई व्रत हो सकता है और न सम्यग्दर्शन ही हो सकता है। यदि आठ मूल गुणों को भी जो नहीं पालता है वह नाम से भी श्रावक (जैन) नहीं है फिर पाक्षिक गूढ़ नैष्ठिक अथवा साधक श्रावक तो बहुत दूर की बात है।

और भी स्पष्ट कथन

मद्य मांस मधुत्यागी त्यक्तोदुम्बरपञ्चकः
नामतः श्रावकःक्षान्तो नान्यथापि तथा गृही (पंचाध्यायी)

अर्थ—मदिरा मांस मधु और पांच उदम्बेर फलों का त्यागी नाम मात्र का श्रावक है। वही साधारण क्षमा धर्म का पालक है अन्यथा वह श्रावक अथवा जैन कहाने का पात्र भी नहीं है। कितना स्पष्ट कथन है। फिर भी जो सम्यग्यदृष्टि के चारित्र नहीं बताते हैं और जो यह कहते हैं कि सम्यग्दर्शन प्रगट होजाने के बाद ही आठ मूल गुण पाले जाते हैं यह सब कहना शास्त्र विरुद्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंद्यं मासं तथा क्षौद्रमथोदुम्बर पञ्चकम्
वर्जयेच्छ्रावको श्रीमान् केवलं कुल धर्म वित्

(लाटी संहिता)

इस श्लोक का अर्थ लाटी संहिता के हिन्दी टीकाकार धर्म रत्न सरस्वती दिवाकर श्रीमान् श्रद्धेय पं० लालारामजी शास्त्री ने इस प्रकार किया है—

"इन आठों का त्याग कर देना आठ मूल गुण कहलाते हैं इन आठ मूल गुणों का पालन करना श्रावकों का कुल धर्म है जब तक इन आठ मूल गुणों को जो धारण नहीं कर लेता तब तक वह अपने कुल धर्म का भी पालन नहीं कर सकता है और की तो बात ही क्या है।" आगे इसी स्वरचित हिंदी टीका में धर्म रत्न पूज्य पं० जी ने लिखा है कि वह इस प्रकार है—

"आचार्य अमृतचंद्र सूरि ने अपने पुरुषार्थ सिद्धचु पाय में लिखा है–

अष्टावनिष्टदुस्तर दुरितायतनान्यमूनि परिवर्ज्यं
जिन धर्म देशनाया भवन्ति पात्राणि शुद्धधियः

(पुरुषार्थ सिद्धयुपाय)

अर्थात् मद्यमाँसादिक आठों हो अनंत पापों के स्थान हैं। इसलिये जो इनका त्याग कर देता है वही शुद्ध बुद्धि वाला पुरुष जिन धर्म के सुनने का पात्र होता है,,

इस कथन से बहुत खुलासा हो जाता है कि बिना मांसादिक का त्याग किये जैन धर्म सुनने का भी पात्र नहीं होता है। सम्यग्दर्शन का प्राप्त करना तो बहुत दूर की बात है।

सम्यग्दर्शन कब प्राप्त हो सकता है?

सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिये पांच लब्धियां बताई गई हैं जैसे—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खाओपसमिय विसोही देसण पाउग्गकरण लद्धीऐ
(गोम्मटसार)

कर्मों का क्षयोपशम होना, आत्म विशुद्धि का होना, गुरु का उपदेश मिलना, संज्ञी, पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक, भव्य होना और करण लब्धि का होना। इन कारणों के मिलने पर ही सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। यदि आत्मा में विशुद्धता और गुरु का उपदेश सुनने की पात्रता नहीं हो और स्थिति खंडन अनुभाग खंडन करने वाले करण त्रय नहीं हों तो सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता है। जो कर्म सत्तर कोटा कोटी सागर तक बंध सकता है वह केवल अंतः कोटा कोटी सागर मात्र स्थिति में बंधे और सत्ता में संख्यात हजार सागर कम अंत कोटा कोटि पर्यन्त उपशम बना रहें। जहां आत्मा की इतनी विशुद्धि हो जाती है साथ ही प्रशम संसार से विरक्तभाव, जीवों पर दया भाव और देव-गुरु शास्त्र तथा तत्वार्थों में जिनेन्द्र की आज्ञानुसार दृढ़ श्रद्धा हो उसी आत्मा में सम्यग्दर्शन हो सकता है। ऐसी अवस्था में मद्यमांसादि का त्याग रूप चारित्र का पालन सम्यग्दर्शन से पहले ही होता है। सम्यग्दर्शन होने पर तो और भी विशुद्धता बढ़ती है और असंख्यात गुणी निर्जरा सम्यग्दृष्टि के होती है।

सात प्रकृतियों के उपशम क्षय क्षयोपशम से होने वाले निश्चय सम्यग्दर्शन के पहले व्यवहार सम्यग्दर्शन और व्यवहार चारित्र का पालन करना अनिवार्य आवश्यक है ऐसे मनुष्य की प्रशंसा पंडित प्रवर आशाधर जी ने इस प्रकार की है—

यावज्जीवमिति त्यक्त्वा महापापानि शुद्ध धी,
जिन धर्म श्रुतेर्योग्यः स्यात्कृतोपनयोः द्विजः
(सागारधर्मामृत)

अर्थात् जीवन पर्यन्त मद्य मासादिक महा पापों का त्याग करके शुद्ध बुद्धि बनता है वही मनुष्य उपनय संस्कार को धारण करके जिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म के सुनने का अधिकारी बन जाता है। इस कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि निश्चय सम्यग्दर्शन के पहले ही व्यवहार चारित्र में अष्ट मूल गुण धारण करने रूप चारित्र का सद्भाव मानना आवश्यक है। यदि मद्य मांसादि के त्याग रूप चारित्र, निश्चय सम्यग्दर्शन होने के पहले नहीं माना जाय तो क्या मद्य मांसादि का सेवन करते हुए सम्यग्दर्शन हो जायगा ? कभी नहीं होगा।

और भी सुनिये—

तत्रादौ श्रद्धधज्जैनी माज्ञां हिंसा मपासितुम्
मद्यमांस मधून्नुजद्धेत् पंच क्षीर फलानि च

अर्थः— जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का श्रद्धान करने वाला सबसे पहले हिंसा को दूर करने के लिए मद्य मांस मधु तथा त्रस जीवों से भरे हुए पाँच उदम्बर फलों का त्याग करें। इसी त्याग के साथ में वह जिन पूजन, मुनि दान, व्रत उपवास, इस त्याग, जीव रक्षण आदि चारित्र का भी पालन करता है। यह सब धार्मिक क्रिया चारित्र ही तो है यह सब व्यवहार चारित्र है। फिर निश्चय सम्यग्दर्शन विशिष्ट चौथे गुण स्थान में कुछ भी चारित्र नहीं होता है ऐसा कहना और समझना शास्त्र सम्मत नहीं हैं।

अनंतानुबंधी में दोनों को घातने की शक्ति है

अनंतानुबंधी कषाय सम्यक्त्व और चारित्र दोनों को घातती है अतः उसके अभाव में आत्मा में चारित्र का अंश प्रकट हो जाता है। उसी का फल मद्यमांसादिक का त्याग है।

कोई शंका करते हैं कि यदि अनंतानुबंधि कषाय के अभाव में चारित्र हो जाता है तो सम्यग्दर्शन भी तीसरे गुण स्थान में हो जाना चाहिये इसके उत्तर में उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि अभी तीसरे गुण स्थान में जात्यंतर सर्वघाति सम्यङ् मिथ्यात्व प्रकृति का उदय है अतः वह सम्यग्दर्शन के प्रगट होने में बाधक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौथे गुण स्थान में जहां सम्यग्दर्शन आत्मा में प्रगट हो जाता है वहां तो प्रशम संवेग अनुकम्पा आस्तिक्य भाव सम्यग्दृष्टि के अविनाभावी गुण बन जाते हैं। इसलिए सम्यग्दृष्टि के संयम रूप चारित्र नहीं होने पर भी चारित्र अवश्य है। और वह सम्यक चारित्र है। क्योंकि सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाने पर ज्ञान सम्यज्ञान और चारित्र सम्यक चारित्र बन जाता है।

शास्त्रों के अनुभव से यह बात जानना चाहिये कि जिन मनुष्यों के मिथ्यात्व कर्म और अनन्तानुबंधि कषाय का उदय है उनके तो मिथ्या चारित्र है जैसे भस्म रमाने वाले, पंचाग्नि तपने वाले, चीमटा रखकर बाल बढ़ाने वाले, चिलम गांजा पीने वाले बाबाजी मिथ्या चारित्र धारी है परन्तु जिनके मिथ्यात्व कर्म एवं अनंतानुबंधि कर्म का उदय नहीं है ऐसे मनुष्य सम्यग्दृष्टि हैं और जो जैन कुलोत्पन्न हैं वे तो स्वभाव से ही मद्यादि का त्याग कर देते हैं। यह चारित्र सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का साधक व्यवहार चारित्र है। सात प्रकृतियों के उपशम क्षय क्षयोपशम से जब निश्चय सम्यग्दर्शन हो जाता है तब उस सम्यग्दृष्टि के तो सम्यक चारित्र नियम से होता है। संयम रूप चारित्र अविरत सम्यग्दृष्टि के नहीं होता है। वर्तमान में बिरले ही निश्चय सम्यग्दृष्टि होंगे। दि० जैन समाज में व्यवहार सम्यग्दृष्टि और व्यवहार चारित्रधारी ही सर्वत्र हैं क्योंकि वे देवशास्त्र गुरु में अटल श्रद्धा रखते हैं और यथा शक्ति त्याग भी करते हैं। अष्ट मूल गुणों का पालन करते हैं। सातिचार व्रतों का भी पालन करते हैं जब ये चारित्र क्रियायें व्यवहार सम्यग्दृष्टि में पाई जाती हैं तब निश्चय सम्यग्दृष्टि के चारित्र नहीं होता है ऐसा मानना शास्त्र सम्मत नहीं है।

क्षायिक सम्यक्त्व की निराली महिमा

क्षायिक सम्यग्दृष्टि की तो महिमा निराली है वह वीतराग सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। जैसा कि लिखा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्म विशुद्धिमात्र मितरत् सप्तानां कर्म प्रकृतीना मात्यंतिकेऽपगमे सत्यां आत्म विशुद्धिमात्र मितरत् वीतराग सम्यक्त्व मुच्यते ।

(राजवार्तिक)

अर्थः— सात प्रकृतियों के अत्यन्त क्षय हो जाने से आत्मा में विशुद्धि का होना वीतराग सम्यग्दर्शन है अविरत क्षायिक सम्यग्दृष्टि की वीतरागता दर्शन मोहनीय जन्य राग के अभाव से कही गई है। यह क्षायिक सम्यग्दर्शन केवली अथवा श्रुत केवली के पाद मूल में ही होता है ऐसे सम्यग्दृष्टि के संसार और भोगों से विरक्तता, जीवों पर दयाभाव तथा परिणामों में निर्मलता आदि होने से सम्यकचारित्र का सद्भाव अवश्य एवं अनिवार्य है। वह शास्त्राधार से सुसिद्ध है। द्रव्य चारित्र और भाव चारित्र दोनों प्रकार का चारित्र अविरत सम्यग्दृष्टि के होता है।

चारित्र का लक्षण

असुहादो विणिवित्ति सुहे पवित्ती ह जाणि चारितं

(द्रव्य संग्रह)

अर्थः— अशुभ से निवृत्ति होना और शुभ में प्रवृत्ति होना चारित्र है। ऐसा आचार्य नेमिचन्द सिद्धांत चक्रवर्ती कहते हैं। चारित्र का यही लक्षण सर्वार्थ सिद्धि और राजवार्तिक में कहा गया है। अविरत सम्यग्दृष्टि की अशुभ से निवृत्ति और शुभ कार्यों में प्रवृत्ति होती है। इसलिये वह सम्यक चारित्रधारी है।

चतुर्थ गुण स्थान में सम्यक चारित्र अवश्य होता है

चतुर्थ गुण स्थान में जो विद्वान किसी प्रकार का चारित्र नहीं मानते हैं उन्हें शास्त्राधारों पर दृष्टिपात कर अपनी धारणा बदलनी चाहिये। सबसे पहला प्रमाण यह है—

तत्वार्थ सूत्र महा शास्त्र में दूसरे अध्याय में जहां जीव के पांच भावों का विधान है वहां मिश्र (क्षयोपशम) भाव को मध्य में कहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया है। इसका कारण यह बताया गया है कि क्षायोपशम भाव सम्यग्दृष्टि और मिथ्या दृष्टि दोनों के होता है। जैसे ज्ञान को क्षयोपशम भाव बताया गया है वैसे चारित्र को भी क्षयोपशम भाव बताया गया है क्षयोपशम भाव अठारह प्रकार का है जैसा कि–

ज्ञानाऽज्ञान दर्शन लब्धय: इस सूत्र द्वारा अठारह भेदों के नाम लिये गये हैं। इसका स्पष्टीकरण यह है कि जैसे ज्ञान क्षयोपममभाव होने से मिथ्या दृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों में रहता है इसी प्रकार चरित्र भी मिथ्या दृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों में रहता है यह अनुभव एवं प्रत्यक्ष सिद्ध है कि मिथ्या दृष्टि मनुष्यों में मिथ्या चारित्र प्रत्यक्ष देखा जाता है क्यों कि वे कुदेव कुशास्त्र और कुगुरुओं को मानते हैं। उन्हें पूजते हैं। भस्म लपेट कर, पंचाग्नि तप कर, रात्रि भोजन कर, अभक्ष भक्षण कर अनेक प्रकार से मिथ्या आचरण द्वारा मिथ्या चारित्र का पालन करते हैं। जब मिथ्या चारित्र का सद्भाव मिथ्या दृष्टियों में पाया जाता है तब सम्यग्दृष्टि के भी चतुर्थ गुण स्थान में चारित्र का सद्भाव अवश्य है। वह चारित्र मिथ्या चारित्र नहीं है। किन्तु सम्यम चारित्र है। सम्यक दृष्टि के चारित्र को अचारित्र अथवा मिथ्या चारित्र बताना सर्वथा सिद्धांत विरुद्ध है जो तीसरे गुण स्थान में मिथ्या दृष्टि का चारित्र था वही चतुर्थ गुण स्थान में सम्यग्दर्शन होने पर सम्यक चारित्र हो जाता है। इसी बात को हम समयसार, राजवार्तिक आदि शास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध करते हैं।

समयसार के संस्कृत टीकाकार अचार्य जयसेन लिखते हैं–

"यदा काल लब्धिवशेन भव्यत्व शक्तेर्व्यक्तिर्भवति तदायं जीवः सहज शुद्धपारिणामिक भाव लक्षण निज परमात्म द्रव्य सम्यक् श्रद्धान ज्ञानानुचरण पर्यायेण परिणमति" (समयसार)

अर्थ–जब काल लब्धि आजाने के कारण भव्यत्व शक्ति प्रकट हो जाती है तब यह जीव स्वभाव से शुद्ध पारिणामिक लक्षण वाले अपने परमात्य द्रव्य का सम्यक् श्रद्धान सम्यक् ज्ञान और सम्यक् अनुसरण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप पर्याय से परिणत हो जाता है। अर्थात् काल लब्धि आने पर इस जीव को सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। उसी समय उसके भव्यत्व गुण का विकाश होता है। और उसी समय सम्यग्दर्शन के साथ सम्य ज्ञान और सम्यक् चारित्र भी हो जाता है। इसका खुलासा यह है कि काल लब्धि और भव्यत्वभाव का विकाश कहने से चतुर्थ गुणस्थान का कथन सिद्ध होता है। और उसी चतुर्थ गुण स्थान में सम्यग्दर्शन के साथ सम्यज्ञान और सम्यक् चारित्र भी होता है यह भली भाँति सिद्ध हो जाता है। पंचाध्यायी में भी यही बात कही गई है कि—

भव्यभाव विपाका द्वा जीवः सम्यकत्वमस्नुते

अर्थात् भव्यत्वभाव के विपाक (पक्क परिणमन) से जीव सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है। यह भी चतुर्थ गुण स्थान का स्पष्ट सूचक श्लोक है अर्थात् चतुर्थ गुण स्थान में सम्यक् चारित्र भी होता है और आत्मा में अनुसरण होने का अर्थ स्वरूपाचरण चारित्र है पंचाध्यायी और समयसार के कथन में कोई अन्तर नहीं है दोनों के कथन से स्वरूपाचरण चारित्र की सिद्धि होती है।

जैन दर्शनाचार्य— **श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक**
रचित इस ग्रन्थ का व्यवहार निश्चय सम्यग्दर्शन
का स्वरूप तथा चतुर्थ गुण स्थान में
सम्यक्चारित्र का प्रतिपादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ चतुर्थ अध्याय

सम्यग्दर्शन मूल धर्म है, उस सम्यग्दर्शन के साथ सम्यक्चारित्र और स्वरूपाचरण चारित्र का भी सद्भाव चतुर्थ गुण स्थान में शास्त्र सम्मत है

चतुर्थ गुण स्थान में स्वरूपाचरण चारित्र शास्त्र सम्मत है

आंशिक स्वरूपाचरण चारित्र चतुर्थ गुण स्थान में अवश्य एवं अनिवार्य होता है यह पूर्वाचार्यों के वचनों से सुसिद्ध है। इस विषय में किन्हीं विद्वानों का मतभेद है परन्तु चतुर्थ गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र नहीं मानने से निश्चय सम्यग्दृष्टि की विशुद्धि और उसके लोकोत्तर असाधारण महत्व को घटाने की बात है। जो विद्वान निश्चय सम्यग्दृष्टि (चतुर्थ गुण स्थान वर्ती) के स्वरूपाचरण चारित्र का सद्भाव नहीं मानते हैं निषेध करने के उनके दो हेतु हैं-

पहला हेतु तो उनका यह है कि जो स्थानक वासी सम्प्रदाय को छोड़कर नये दि० जैन बने हैं वे (सोनगढ़ पंथी) चौथे गुण स्थान में स्वरूपाचरण चारित्र मानते हैं यदि हम भी उनकी इस मान्यता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का समर्थन करें तो उनकी नवीन बिचारधारा की मान्यता बढ़ जायगी । और उनका आगम विरुद्ध प्रचार बढ़ने लगेगा इसलिये स्वरूपाचरण चारित्र अविरत सम्यग्दृष्टि के नहीं मानना चाहिये। परन्तु यह हेतु ठीक नहीं है क्योंकि यदि कोई दि० जैन सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत प्रचार करता है तो उसकी बात का तो विरोध करना आवश्यक है परन्तु उसके विरोध में आगम पक्ष अथवा सिद्धान्त का विरोध नहीं करना चाहिये । निश्चय एकान्तवादी मोक्ष मानते हैं तो क्या आगमवादियों को मोक्ष नहीं मानना चाहिये । वे लोग समयसार का स्वाध्याय करते हैं तो क्या आगमवादी विद्वानों को समयसार का स्वाध्याय छोड़ देना चाहिये । वे जिन दर्शन और जिन पूजा करते हैं तो क्या जिन दर्शन और जिन पूजा यथार्थ श्रद्धानियों को छोड़ देना चाहिये । वे अपने को दि० जैन कहते हैं तो क्या आगम वादियों को दि० जैन कहना छोड़ देना चाहिये ? नहीं ! इसलिये यह पहला हेतु नि:सार है। अनार्षवादी यदि निश्चय सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र का समर्थन करता है तो उसका कहना किसी दूसरे प्रयोजन से है उस पर ध्यान नहीं देकर शास्त्र समस्त सिद्धान्त का तो विरोध नहीं करना चाहिये ।

हम क्या समस्त समाज और विद्वान त्यागी सभी भले प्रकार समझ चुके हैं कि जो लोग खान-पान शुद्धि एवं जिन पूजन मुनिदान आदि धार्मिक क्रियाओं को जड़ शरीर की क्रिया बताते हैं द्रव्य शुद्धि की आवश्यकता नहीं बताते केवल भावों का ही गुणगान करते हैं। साथ ही तीर्थंकर की दिव्य ध्वनि से किसी जीव का कोई हित होना नहीं मानते हैं आत्मा से कर्मों का संबन्ध तक नहीं मानते हैं जो जीव दया जैसे श्रावक तथा मुनियों के मूल भूत व्रत्ताचरण को भी अधर्म और हिंसा बताते हैं और जिन वाणी को परस्त्री के समान त्याज्य बताते हैं।ऐसे अनार्षवादी लोग चौथे गुण स्थान में स्वरूपाचरण चारित्र बताबें या सांख्य मत के समान संसारी आत्मा को भी परम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
5202

शुद्ध मानें तो मानो उनको तो अनार्षवादी ही माना जायगा। परन्तु आगमनिष्ठ विद्वानों को तो आगम का ही समर्थन करना चाहिये। अन्यथा सिद्धान्त एवं वस्तु स्वरूप का अपलाप होता है।

दूसरा कारण यह है कि जो विद्वान चतुर्थ गुण स्थान में स्वरूपाचरण चारित्र के निषेध में जो जो शास्त्रों के प्रमाण देते हैं उनके समझने में भूल है। उसी का खुलासा हम बहुत संक्षेप से सार रूप करते हैं। पहले यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि स्वरूपाचरण चारित्र चौथे गुण स्थान में हो या नहीं हो इससे किसी का या हमारा कोई हानि लाभ नहीं है शास्त्रों से जो सिद्ध हो उसे मानना चाहिये। आगम मानने वालों में कोई मतभेद या पक्ष विपक्ष की बात भी नहीं होनी चाहिये। किन्तु सम्यग्दृष्टि का क्या स्वरूप है और कितनी आत्म विशुद्धि है उस वस्तु स्वरूप का एवं सिद्धान्त का प्रतिपादन ही हितकारक है इसी सद्भावना से हम इस विषय का स्पष्टीकरण करते हैं।

सम्यग्दर्शन धर्म नहीं है उसमें चारित्र भी नहीं है यही मान्यता विरोध का कारण है

सबसे पहली बात यह है कि जो आगम की आज्ञा को मानते हैं वे भी यह बार२ लिखते हैं कि सम्यग्दर्शन धर्म नहीं है किन्तु धर्म का मूल है। एसा वे इसलिये कहते हैं कि चौथे गुण स्थान में स्वरूपाचरण चारित्र का वे निषेध करते हैं इसकी पुष्टि में वे उस गुण स्थान में चारित्र नहीं बताते हैं। उनका दृष्टिकोण यह है कि जब चौथे गुण स्थान में धर्म और चारित्र दोनों नहीं हैं तब स्वरूपाचरण चारित्र वहां कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है इसके प्रमाण में "चारित्तं खलु धम्मो" यह कहते हैं चारित्र धर्म है। सम्यग्दर्शन धर्म नहीं है। परन्तु उनका ऐसा कहना सिद्धान्त विरुद्ध है। आचार्यों ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र को धर्म कहा है यह ठीक है किन्तु और भी तो धर्म है उनका निषेध तो नहीं किया है।

आचार्यों ने–"वत्थु सहावो धम्मो, जीवाणंरक्खणं धम्मो" आदि भी धर्म बताये हैं वस्तुओं का स्वभाव भी धर्म है जैसे पुद्गल का धर्म रूप रस गंध स्पर्श है जीव का धर्म ज्ञान दर्शनादि है। रत्नत्रय भी धर्म है जीवों की रक्षा भी धर्म है अहिंसा परम धर्म है। सम्यग्दर्शन भी धर्म है। जो विद्वान सम्यग्दर्शन को धर्म नहीं बताते हैं वे बहुत बड़ी भूल में हैं। सम्यग्दर्शन तो धर्म का मूल है धर्म एवं मोक्ष मार्ग में प्रधान धर्म है।

सम्यग्दर्शन मूल धर्म है इसके प्रमाण

आचार्य शिरोमणि समन्त भद्र स्वामी ने धर्म का स्वरूप इस प्रकार कहा है–

सद्दृष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वराः विदुः

अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यज्ञान सम्यक् चारित्र ये रत्नत्रय ही धर्म है। ऐसा तीर्थंकर भगवान कहते हैं।

पंचाध्यायी कार कहते हैं—

स धर्मः सम्यग्दृग्ज्ञप्ति चारित्र त्रितयात्मकः
तत्र सद्दर्शनं मूलं हेतुरद्वैतमेतयोः

अर्थः—वह धर्म सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के तीन रूप हैं उन तीनों धर्मों में सम्यग्दर्शन मूल धर्म है। अर्थात इस मूल धर्म के बिना ज्ञान चारित्र दोनों धर्म ही नहीं ठहरते हैं।

जैसे कोई कहे कि जड़ शाखा पुष्प फल रूप वृक्ष है। बीज वृक्ष नहीं है तो यह कहना गलत है। क्योंकि वृक्ष में बीज का अभाव नहीं है किन्तु वह बीज ही वृक्ष रूप परिणत हुआ है। बीज के अभाव में वृक्ष नहीं हो सकता है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारित्र दोनों सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र नहीं कहला सकते हैं। अतः सम्यग्दर्शन तो प्रधान धर्म है। और भी प्रमाण पढ़िये—

ततः सागाररूपोवा धर्मोऽनागार एव वा
सम्यक पुरस्सरो धर्मः न धर्मः तद्विना क्वचित्
(पंचाध्यायी)

अर्थः— चाहे गृहस्थ धर्म हो चाहे मुनि धर्म हो किन्तु सम्यग्दर्शन पूर्वक ही धर्म होता है उसके बिना कुछ भी धर्म नहीं है। अर्थात मुख्य धर्म अथवा पहला धर्म सम्यग्दर्शन हीं है। और भी प्रमाण—

धर्मः सम्यक्त्वमात्रात्मा शुद्धस्यानुभवोऽथवा
तत्फलं सुखमत्यक्षं अक्षयं क्षायिकश्च तत्
(पंचाध्यायी)

अर्थ— सम्यग्दर्शन रूप ही धर्म है अथवा आत्मा का शुद्ध अनुभव धर्म है। उसी धर्म का फल अतींद्रिय अविनाशी क्षायिक सुख है। जिसका अर्हंत भगवान का सुख रूप फल है उस सम्यग्दर्शन को धर्म नहीं कहा जाय यह बात सर्वथा धर्म विपरीत है। कार्य कारण भाव वस्तु स्वरूप है। उपादान कार्य की सिद्धि में वाह्य कारण भी होते हैं परन्तु कार्य से अभिन्न अन्तरंग कारण प्रधान है। जैसे घड़े के बनने में कुम्हार चाक दंडा आदि कारण तो बाहरी हैं वे निमित्त कारण है किंतु घड़ा बनने में मिट्टी उपादान कारण है वह घड़े की ही पूर्व पर्याय हे अथवा घड़े का मूल तत्व है उस मिट्टी को घड़े का कारण या घड़े रूप नहीं कहा जाय तो यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है। वस्तु स्वरूप से एवं कार्य कारण सिद्धान्त से सर्वथा विरुद्ध है। इसी प्रकार धर्म का मूल धर्म सम्यग्दर्शन है उसे धर्म नहीं माना जाय यह सर्वथा सिद्धान्त विरुद्ध है।

सम्यग्दृष्टि के सम्यक्चारित्र हैं

स्वरूपाचरण चारित्र असंयत सम्यग्दृष्टि के नहीं होता है ऐसा मानने वाले विद्वान चौथे गुण स्थान में चारित्र ही नहीं मानते हैं उनके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मत के अनुसार जब चौथे गुण स्थान में चारित्र ही नहीं होता है तब स्वरूपाचरण कैसे हो सकता है ? परंतु उनका ऐसा समझना भी भूल भरा एवं सिद्धान्त सम्मत नहीं है। हम इसी प्रसंग में पहले अनेक प्रमाणों से सिद्ध कर चुके हैं कि व्यवहार सम्यग्दृष्टि के भी चारित्र होता है। तब निश्चय सम्यग्दृष्टि के तो नियम से सच्चारित्र होता है। यह भी हम स्पष्ट कर चुके हैं कि सम्यग्दृष्टि का चारित्र मिथ्या चारित्र नहीं है। क्योंकि मिथ्यात्व कर्म और अनंतानुवधि कर्म का उदय सम्यग्दृष्टि के नहीं है और सम्यग्दर्शन को प्रगट नहीं होने देने वाला सम्यङ मिथ्यात्व का भी चौथे गुण स्थान में उदय नहीं है अतः सम्यग्दृष्टि का ज्ञान और चारित्र दोनों ही सम्यग्दर्शन के प्रगट होते ही सम्यज्ञान और सम्यक चारित्र रूप हो जाते हैं यह सम्यग्दर्शन गुण का माहात्म्य है।

भजनीय का समाधान

चौथे गुण स्थान में चारित्र नहीं मानने वाले विद्वान यह भी कहते हैं कि सम्यग्दर्शन के साथ सम्य ज्ञान तो हो जाता है परन्तु सम्यक चारित्र नहीं होता है वह भजनीय हैं अर्थात् वह आगे के पांचवें गुण स्थान और छठे आदि गुण स्थानों में होगा। प्रमाण राजवार्तिक शास्त्र का देते हैं। परन्तु राजवार्तिक की पंक्तियों को समझ लेने से वह प्रमाण उनके कहने के विरुद्ध ही पड़ता है उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

आत्म स्वरूपाभाव प्रसंगात यदि सम्यग्दर्शन लाभे ज्ञानं भजनीयत्वादसद्विरोधात् मिथ्याज्ञान निवृत्तौ सम्यज्ञानस्य चाभावात् ज्ञानोपयोगाभाव आत्मनः प्रसक्तः (राजवार्तिक)

यहां यह शंका उठाई गई है कि यदि सम्यग्दर्शन हो जाने पर ज्ञान भजनीय है तो मिथ्या ज्ञान के नष्ट होने पर सम्यज्ञान का सद्भाव तो रहेगा नहीं। वह तो भजनीय होगा तब ज्ञानोपयोग का अभाव ही होगा ? इसके उत्तर में कहा गया है कि–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्वचन ज्ञानमित्येतत्परिसमाप्यते श्रुतकेवलयोः यतः श्रुत केवल ज्ञान ग्राही शब्दनयः श्रुत केवल एव इच्छति नान्यज्ज्ञानमपरिपूर्णत्वात् इति तद पेक्ष संपूर्ण द्वादशांग चतुर्दशपूर्वं लक्षणं श्रुतं केवलं च भजनीयमुक्तम्,
(राजवार्तिक)

अर्थात् सम्यग्ज्ञान की समाप्ति श्रुत केवली और केवली में होती है। अतः द्वादशांग लक्षण श्रुतज्ञान तथा केवल ज्ञान भजनीय है। इसका भावार्थ यह है कि सम्यग्ज्ञान तो सम्यग्दर्शन के प्राप्त होते ही हो जाता है उसका अभाव नहीं है किंतु पूर्ण श्रुत ज्ञान और केवल ज्ञान भजनीय है तथा पूर्व सम्यग्दर्शन लाभे देश चारित्रं, संयतासयतस्य सर्वं चारित्रं प्रमत्तादारभ्य सूक्ष्मसांपरायन्तानां यच्च यावच्च नियमादस्ति संपूर्ण यथाख्यात चारित्रं तु भजनीयम्
(राजवार्तिक)

अर्थात् सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाने पर सम्यक्त्वाचरण रूप चारित्र तो हो जाता है आगे देश संयम उसके आगे सकल संयम उसके आगे यथा ख्यात चारित्र भजनीय हैं।

अतः चौथे गुण स्थान में जैसे सामान्य सम्यग्ज्ञान है उसी प्रकार सामान्य चारित्र भी हैं, जैसे सामान्य सम्यग्ज्ञान से ऊपर २ विशेष २ सम्यग्ज्ञान—श्रुत केवल और केवल ज्ञान तक भजनीय है उसी प्रकार चौथे गुण स्थान में सामान्य सम्यक् चारित्र (सम्यक्त्वाचरण रूप) होता है उससे ऊपर देश संयम पांचवे में और सकल संयम (छठे से १०वे गुण स्थान तक) आगे यथा ख्यात चारित्र भजनीय है।

इससे स्पष्ट सिद्ध है जैसे सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान हो जाता है वैसे सम्यक् चारित्र भी हो जाता है।

यही बात श्लोक वार्तिक में "तेषां पूर्वस्य लाभेपि भाज्यत्वादुत्तरस्य च" इस श्लोक से लेकर अनेक शंका समाधान द्वारा यही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्ध किया गया है कि चौथे गुण स्थान में सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र भी होते हैं परन्तु आगे २ विशेष ज्ञान चारित्र की प्राप्ति की जाती है वह पूर्व की अपेक्षा भजनीय है अर्थात् अविरत सम्यग्दर्शन के साथ विशेष ज्ञान और देश संयम आदि विशेष चारित्र नहीं होता है। किन्तु सम्यक् चारित्र तो होता है। राज-वार्तिक का प्रमाण हम दे चुके हैं अतः श्लोक वार्तिक के प्रमाण के स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है।

अनन्तानुबंधी में सम्यक्त्व और चारित्र दोनों को घातने की शक्ति है

चतुर्थ गुण स्थान में असंयत सम्यग्दृष्टि के सम्यक् चारित्र नहीं है। क्योंकि अनंतानुवंधी कषाय केवल सम्यग्दर्शन को ही घातती है ऐसा कोई विद्वान कहते हैं। वे अपने कथन की पुष्टि में यह कहते हैं कि आदि के चार गुण स्थान दर्शन मोहनीय की अपेक्षा से कहे गये हैं।

"दंसणमोहं पडिच्च भणिदाहु" यह गोम्मटसार का प्रमाण देते हैं। उनके कहने का सारांश यह है कि जब चार गुण स्थान दर्शन-मोहनीय की अपेक्षा से होते हैं तो अनंतानुवंधी कषाय सम्यग्दर्शन को ही घातती है चारित्र को नहीं घातती है। परन्तु वे विद्वान इस प्रमाण का एक अंश ही पकड़ते हैं गाथा के आशय को पूर्णता से ग्रहण नहीं करते हैं। उस गाथा का आशय इतना है कि पहले गुण स्थान से लेकर चौथे गुण स्थान अविरत सम्यग्दृष्टि तक दर्शन मोहनीय की अपेक्षा है क्योंकि वहां तक मिथ्यात्व अनंतानुवंधी और सम्यङ्‌मिथ्यात्व इन तीन प्रकृतियों के उदय के कारण सम्यग्दर्शन नहीं होता है। चौथे गुण स्थान में उनका अभाव होने से सम्यग्दर्शन हो जाता है परन्तु वहां देश संयम नहीं होता है क्योंकि उसका घातक अप्रत्याख्यान कषाय है वह अविरत सम्यग्दृष्टि को देश संयम नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने देती है किंतु सम्यग्दर्शन के साथ होने वाले सम्यक्त्वाचरण (स्वरूपाचरण) को घातने वाला अनंतानुवंधी है। उस के अभाव में जैसे सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है वैसे सम्यक्त्वाचरण भी प्रगट हो जाता है।

जो विद्वान् चौथे गुण स्थान में स्वरूपाचरण का निषेध करते हैं वे यह कहते हैं कि अनंतानुवंधी कषाय केवल सम्यग्दर्शन का ही घात करती है चारित्र का घात तो अप्रत्याख्यान कषाय करती है इसलिये चौथे गुण स्थान में स्वरूपाचरण चारित्र नहीं होता है। परन्तु उनका ऐसा समझना शास्त्र सम्मत नहीं है। इस संबंध में शास्त्र सम्मत समाधान इस प्रकार है—

पहली बात तो यह है कि अनंतानुवंधी कषाय चारित्र मोहनीय का भेद है। सोलह कषाय और नवनोकषाय ये पच्चीस भेद चारित्र मोहनीय के हैं अतः चारित्र का घात करना उसका कार्य है। मिथ्यात्व सम्यङ्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति मिथ्यात्व ये तीन भेद दर्शन मोहनीय के हैं यदि अनंतानुवंधी कषाय केवल सम्यग्दर्शन का ही घात करती है तो उसे दर्शन मोहनीय में क्यों नहीं गिनाया गया? इससे यह सिद्ध है कि अनंतानुवंधी चारित्र का तो घात करती ही है साथ ही सम्यग्दर्शन का भी घात करती है। उसमें दोनों को घात करने की शक्ति है। जिस प्रकार धतूरे के वृक्ष में दो प्रकार की शक्ति है। धतूरे के पत्ते और उसके फल में विष होने से मनुष्य को मारने की शक्ति है किन्तु उसकी जड़ में विष को दूर करने की शक्ति है। धतूरे के पत्ते और फल खाने वाले को विष चढ़ जाता है। उसे धतूरे की जड़ पीसकर पिलादी जाय तो उसका विष नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार अनंतानुवंधी में सम्यग्दर्शन और चारित्र दोनों को घात करने की शक्ति है इसका शास्त्र प्रमाण यह है—

धवल सिद्धान्तशास्त्र में आचार्य वीर सेन स्वामी ने लिखा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अणंताणुवंधिणो कोह माण माया लोहा एदे चत्तारिवि
सम्मत चारित्ताणां विरोहिणो दुविहि सत्ति संजत्तादो,,
(धवल शास्त्र)

अर्थ— अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ ये चारों सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की विरोधी प्रकृति है क्योंकि उनमें सम्यग्दर्शन और सम्यकचारित्र दोनों को घातने की शक्ति है। अब दूसरे प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं है। धवल सिद्धान्त शास्त्र का प्रमाण ही पर्याप्त है। इसी प्रकरण में आचार्य वीरसेन स्वामी ने और भी शंकायें उठाकर समाधान किया है। उन्होंने अनन्तानुबंधी में दोनों प्रकार की शक्ति सिद्ध करने के लिए लिखा है–

"न तस्य मिथ्यादृष्टि व्यपदेश: किन्तु सासादन इति व्यपदिश्यते किमित मिथ्यादृष्टि रिति न व्यपदिश्यते चेन्न अनंतानुवन्धिनां द्विस्वभावत्व प्रतिपादन फलत्वात्" (धवलसिद्धांत शास्त्र)

अर्थ:— दूसरे गुण स्थान को सासादन कहा गया है इसी से सिद्ध होता है कि अनन्तानुबधी कषाय में सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र दोनों को घातने की शक्ति है अन्यथा अनंतानुबंधी यदि सम्यग्दर्शन का ही घात करती तो दूसरे गुण स्थान सासादन को अलग कहने की आवश्यकता नहीं होती केवल मिथ्यादृष्टि पहला गुण स्थान कह दिया जाता। अर्थात अनन्तानुबंधी चारित्र मोहनीय का भेद होने से वह स्वरूपाचरण चारित्र (सम्यक्त्वाचरण) को रोक देती है। आगे और भी स्पष्ट किया गया है–

"यस्माच्च विपरीताभिनिवेशोऽभूदनंतानुबंधिनो न तत्दर्शन मोहनीयं तस्य चारित्रावरणत्वात् तस्योभयप्रतिवंधकत्वात् उभयव्यवदेशो न्याय्य: इतिचेन्न इष्टत्वात् सूत्रे तथानुपदेशो नयापेक्ष:" (धवल शास्त्र)

जो विपरीत अभिनिवेश (विपरीत परिणाम) अनन्तानुबंधी कषाय से होता है वह विपरीत भाव दर्शन मोहनीय के उदय से नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है किन्तु वह चारित्र मोहनीय के उदय से होता है यहां इस शंका का भी समाधान किया गया है कि जब अनंतानुबंधी दोनों का घात करती है तब उसे दोनों रूप कहना चाहिये इसके उत्तर में वीरसेन स्वामी कहते हैं कि उभय रूप कहना हमें इष्ट है किन्तु नय विवक्षा से वैसा नहीं कहा गया है। नय विवक्षा भी यही है कि चौथे गुण स्थान तक असंयम की प्रधानता है। और सम्यङ्मिथ्वात्व के अभाव में होने वाले सम्यग्दर्शन की प्रधानता है। देश संयम नहीं होने से चारित्र की प्रधानता नहीं लीं गई है। किन्तु अनंतानुबंधी के उदय में सम्यग्दर्शन और उसका अविनाभावी सम्यक्त्वाचरण नहीं होता है। इसीलिये अनंतानुबंधी कषाय को चारित्र मोहनीय में गिनाया गया है दो मिथ्यात्व प्रक्रुतियां और अनंतानुबंधी चार प्रक्रुतियां ये छह प्रक्रुतियां सम्यग्दर्शन को प्रगट नहीं होने देती हैं इसलिये आदि के चार गुण स्थान दर्शन मोहनीय की अपेक्षा से कहे गये है परन्तु अनंतानुबंधी में चारित्र घातने की भी शक्ति होने से दूसरा सासादन गुणस्थान कहा जाता है। यदि अनंतानुबंधी में केवल सम्यग्दर्शन को घातने की शक्ति होती तो उसके उदय में औदेयिक भाव कहा जाता किन्तु सासादन गुण स्थान को पारिणामिक भाव कहा गया है क्योंकि उसमें दर्शन मोहनीय का उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम नहीं है। इससे स्पष्ट है कि अनन्तानुबंधी चारित्र मोहनीय का भेद होने पर भी उसमें सम्यग्दर्शन और चारित्र दोनों को घातने की शक्ति है।

धवल सिद्धान्त का इतना स्पष्ट प्रमाण मिलने पर भी अनंतानुबंधी को केवल सम्यग्दर्शन का ही घातक मानना सिद्धान्त शास्त्रों के विरुद्ध हैं।

श्लोक वार्तिक में लिखा है

भव हेतु प्रहाणाय वहिरभ्यंत्तर क्रिया विनिवृत्तिः परं सम्यक्चारित्रम्। नापि सा मिथ्यादृशः तद्भवति ज्ञानिनः इति वचनाम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः— संसार के कारणों को हटाने के लिए वाह्य और अभ्यन्तर क्रिया की निवृत्ति होना ही मुख्य सम्यक चारित्र है वह वाह्य और अभ्यन्तर क्रिया की निवृत्ति मिथ्यादृष्टि को नहीं हो सकती है क्योंकि ज्ञानी के ही हो सकती है ऐसा कहा गया है। अर्थात् वह क्रिया निवृत्ति सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के ही होती है। इससे स्पष्ट है कि चौथे गुण स्थान में उसके सम्यक चारित्र होता है।

राजवार्तिक में लिखा है कि– "अज्ञान पूर्वकाचरण निवृत्यर्थं सम्यग्विशेषणम्" अर्थात अज्ञान पूर्वक आचरण की निवृत्ति के लिए सम्यक विशेषण दिया गया है। इस वार्तिक से भी यह सिद्ध होता है कि सम्यग्दर्शन के साथ जो ज्ञान और चारित्र है वह सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र है। वह चौथे गुण स्थान का द्योतक है क्योंकि चौथे गुण स्थान में अज्ञान पूर्वक आचरण नहीं होता है सम्यग्दृष्टि की क्रयायें परंपरा मोक्ष साधक होती हैं अज्ञान पूर्वक आचरण मिथ्या दृष्टि के होता है। अतः सम्यग्दृष्टि का आचरण सम्यक चारित्र है। सम्यग्दृष्टि के चारित्र को मिथ्या चारित्र नही कहा जासकता है। श्लोकवार्तिक में स्पष्ट लिखा है–

मिथ्यादृगादि हेतुः स्यात् संसारः तदपक्षये क्षीयमाणात्वतो वातविकारादिजरोगवत् । सम्यक चारित्र वतस्तु मिथ्या चारित्र स्याऽपक्षये तद्भवमात्र संसार सिद्धेः मोक्ष प्राप्तेः सिद्धमेव संसारस्य क्षीयमाणात्वम् । (श्लोक वार्तिक)

अर्थः— मिथ्या दर्शन आदि (आदि पद से अनंतानुबंधि प्रकृति) संसार के कारण हैं। उन मिथ्यात्वादि के नाश होने पर जैसे औषधि से वात विकारादि रोग नष्ट हो जाते है उसी प्रकार सम्यक चारित्र वाले का मिथ्या चारित्र नष्ट हो जाता है। उस सम्यग्दृष्टि का तो संसार उसी भव तक रह जाता है अर्थात क्षायिक सम्यग्दृष्टि उसी भव से भी मोक्ष जासकता है संसार उसका नष्ट हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां पर चारित्र मोहनीय का अभाव नहीं बताया गया है किंतु मिथ्या दर्शन और अनंतानुबंधी का ही अभाव बताया गया है इससे चतुर्थ गुण स्थानवर्ती का ही सम्यक चारित्र लिया गया है यह बात प्रामाणिक है कि सम्यग्दृष्टि का संसार नाम मात्र थोड़ा रह जाता है अनन्त संसार उसके नहीं हो सकता है।

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

दृङ्मोहोपशमे सम्यग्दृष्टेरुल्लेख एव सः
शुद्धत्वं सर्व देशेषु त्रिधा बंधापहारियत् (पंचाध्यायी)

अर्थः— दर्शन मोहनीय कर्म के उपशम होने पर सम्यग्दृष्टि का आत्मा सर्व देशों में (सर्व आत्म प्रदेशों में) शुद्ध हो जाता है और तीन प्रकार के बंध को द्रव्यबंध, भावबंध, उभयबंध को नष्ट कर देता है। सम्यग्दृष्टि का संसार एक प्रकार छूट जाता है।

आचार्य समंत भद्र कहते हैं–

मद्य मांस मधु त्यागैः सहाणुव्रत पञ्चकैः
अष्टौ मूलगुणानाहुः गृहिणां श्रवणोत्तमाः (रत्नकरंडश्रा)

अर्थः– मद्य, मांस मधु के त्याग के साथ पंचाणुव्रत को धारण करना आठ मूल गुण कहे जाते हैं। इस कथन से चौथे गुण स्थान में सम्यक चारित्र का विधान सिद्ध होता है।

पंडित दौलतराम जी का भी समर्थन है

पंडित प्रवर दौलतराम जी के छहढाला का प्रमाण देकर अविरत सम्यग्दृष्टि के चारित्र नहीं होता है। ऐसा जो कहते हैं वे स्वयं भ्रम में हैं छहढाला में कहा गया है कि "चरित मोहवस लेस न संयम" अर्थात चारित्र मोहनीय के उदय की परवशत्ता से अविरत सम्यग्दृष्टि के लेशमात्र भी संयम नहीं है। इसका स्पष्ट अर्थ वाक्य से ही हो जाता है। दौलतराम जी चौथे गुण स्थान में चारित्र का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निषेध नहीं करते हैं किन्तु संयम का निषेध करते हैं एक देश संयम अप्रत्याख्यानावरण कषाय के अभाव में होता है । किंतु अनंतानुबंधी कषाय के अभाव में चारित्र अवश्य होता है परंतु वह चारित्र तीसरे गुण स्थान तक मिथ्या चारित्र है । सम्यङमिथ्यात्व का अभाव होने पर सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है । तभी वह चारित्र सम्यक चारित्र हो जाता है । इसके प्रमाण में आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने चारित्र के दो भेद बताये हैं एक सम्यक्त्वाचरण दूसरा संयमाचरण जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं ।

सम्यग्दर्शन का विशेष माहात्म्य

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य ज्ञान चारित्र से भी वढ़कर है जैसा कि आचार्य समतभद्र स्वामी ने कहा है—

दर्शनं ज्ञानचारित्रात् साधिमानमुपाश्नुते
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्षते (रत्नकरंडश्रा

अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र से भी अधिक एवं प्रधान है मोक्षमार्ग में वह खेवटिया के समान माना जाता है । ऐसा अपरिमि माहात्म्य वाला सम्यग्दर्शन केवल श्रद्धान रूप ही नहीं है किंतु अल विशुद्ध एवं जीव दया पालक चारित्रयुक्त भी है ।

और भी खुलासा यह है कि पहले से तीसरे गुण स्थान ज्ञान भी है और चारित्र भी है । उन दोनों का सद्भाव है इसीलि मिथ्याज्ञानी के क्रियावादी आदि भेद गोमटसार में बताये गये हैं । पाखण्डी मिथ्या चारित्र वालों के ही भेद हैं । किन्तु जब चतुर्थ स्थान में सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है तभी उसके प्रभाव से सम्यज्ञान और चारित्र सम्यक् चारित्र बन जाता है । इसलिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनों का अविनाभाव होने से चौथे में तीनों सद्भाव एवं मोक्ष मार्ग का प्राथमिक रूप है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौथे गुण स्थान में चारित्र और स्वरूपाचरण विधायक प्रमाण

अविरत सम्यग्द्रष्टि के स्वरूपाचरण और सम्यक् चारित्र अवश्य होता है इसकी सिद्धि इस प्रकार है–

आचार्य मुकुट कुंदकुंद स्वामी कहते हैं–

जिणणाम दिट्ठि सुद्धं पढमं सम्मत्त चरण चारित्तं
विदियं संजय चरणं जिणणाण सदेसियं तंपि

(चारित्र पाहुड़)

आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहते हैं कि चारित्र दो प्रकार का है पहला चारित्र सम्यक्त्वाचरण है दूसरा चारित्र संयमाचरण चारित्र है। दोनों प्रकार का चारित्र जिनेन्द्र भगवान ने बताया है।

जो कोई विद्वान यह लिखित समाधान करते हैं कि चौथे अविरत गुण स्थान में किसी प्रकार का कोई चारित्र नहीं होता है क्योंकि वह अविरत सम्यग्दृष्टि है उसके नाम मात्र भी चारित्र नहीं होता है उन्हें ऊपर के गाथा से समझ लेना चाहिये कि देश संयम से पहले भी भगवान कुंदकुंद स्वामी ने चारित्र बताया है। वह भी सहेतुक है क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टि के अनंतानुवंधी चारित्र मोहिनी कषाय का अभाव होने के चारित्र प्रगट हो गया है और वह चारित्र सम्यग्दर्शन के साथ होने से सम्यज्ञान के समान सम्यक चारित्र है। इसी सम्यक्त्वाचरण का खुलासा कुंदकुंद स्वामी ने और भी किया है वह भी पढ़िये–

एवं चियणाऊणय सब्वे मिच्छत्त दोस संकाइ
परिहरि सम्मत्तमला जिणभणिया तिविह जोगेण

(आचार्य कुंदकुंद स्वामी)

अर्थः– इस प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्र को जानकर समस्त मिथ्यात्व कर्म के उदय से होने वाले शंकादि दोषों को और सम्यग्दर्शन में आने वाले मलों का मन बचन काय से त्याग करदो ऐसा जिनेन्द्र भगवान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ने कहा है। अर्थात् सम्यक्त्वाचरण चारित्र से सभी दोष और मलों का त्याग कर दिया जाता है।

तं चेव गुण विसुद्धं जिण सम्मत्तं सुमुक्ख ठाणाय
जं चरइ णाण जुत्तं पढमं सम्मत्त चरण चारित्तं
(चारित्र पाहुढ)

आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहते हैं कि जो सम्यक्त्वाचरण से विशुद्ध सम्यग्दर्शन है वह मोक्ष का देने वाला है उसका जो सम्यज्ञान के साथ आचरण किया जाता है। वह सम्यक्त्वाचरण चारित्र है। वह पहला चारित्र है।

सम्मत्त चरण शुद्धा संजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा
णाणी अमूढ दिठ्ठी अचिरे पावंति णिव्वाणं
(चारित्र पाहुढ)

अर्थः- जो सम्यग्दृष्टि सम्यक्त्वाचरण से शुद्ध हैं और संयमाचरण चारित्र से भी सुप्रसिद्ध है वे सम्यज्ञानी अमूढ़ दृष्टि शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

इन उपर्युक्त भगवत् कुंदकुंद स्वामी के वचनों से यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि के भी सम्यकचारित्र है। आचार्य महाराज ने चारित्र के दो भेद बताये हैं एक सम्यक्त्वाचरण दूसरा संयमाचरण अविरत सम्यग्दृष्टि का चारित्र अनंतानुबंधी चारित्र मोहनी के अभाव में होता है। सम्यङमिथ्यात्व प्रकृति के अभाव में सम्यग्दर्शन के प्रगट हो जाने पर वह चारित्र सम्यकचारित्र हो जाता है। यही सम्यक्त्वाचरण चारित्र स्वरूपाचरण है। क्योंकि वह चारित्र आत्मा में स्थिति-स्व स्वरूप में स्थिति रूप है। इसलिये सम्यक्त्वाचरण का अपर नाम स्वरूपाचरण है। यह तो बताया गया है कि सम्यग्दर्शन के साथ ज्ञान सम्यज्ञान और चारित्र सम्यक चारित्र हो जाता है यह चारित्र सरूपावलोकन रूप ही है इसीलिये सम्यक्त्वा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चरण का अपर नाम ही स्वरूपाचरण है इसी बात को आचार्य अमृतचन्द्र सूरि नीचे लिखे श्लोक से स्पष्ट करते हैं।

दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्म परिज्ञान मिष्यते ज्ञानम्
स्थितिरात्मनि चरित्रं कुतः ऐतेभ्यो भवति वन्धः
(आचार्य अमृतचन्द्र सूरि)

अर्थः- आत्मा का निश्चय (प्रगाढ़ श्रद्धा) सम्यग्दर्शन है आत्मा का परिज्ञान होना सम्यग्ज्ञान है और आत्मा में स्थिति होना (स्व स्वरूप में लग जाना) चारित्र है। इन तीनों से वंध कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं होता है।

इस श्लोक से भी स्पष्ट हो जाता है कि सम्यग्दर्शन से सम्यक्त्वा चरण चारित्र कथंचित् भिन्न और उसका अविनाभावी है और वह स्वरूप में स्थिति रूप है उसी का नाम स्वरूपाचरण चारित्र है। इस रत्नत्रय से बंध नहीं होता है इसीलिये आचार्य ने कहा है कि बध का कारण राग है रत्नत्रय नहीं है। यही बात अमृतचन्द्र सूरि स्पष्ट करते हैं-

येनांशेन सुदृष्टि स्तेनांशेन वंधनंनास्ति
येनांशेन तु रागस्तेनांशेन बंधनं चास्ति

अर्थात् सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र वंध के कारण नहीं है वे तो आत्मा के विशुद्ध गुण हैं किंतु वंध का कारण राग है। इतना समझना चाहिये कि जो बंध सम्यग्दर्शनादि के प्रगट होने पर होता है वह शुभ राग से होता है उस शुभ राग को प्रशस्त राग कहा गया है राग तो दसवें गुण स्थान तक रहता है अतः प्रशस्त राग से जो बंध होता है वह पुण्य बंध है वह परम्परा मोक्ष का ही साधक है जैसा कि आचार्य देवसेन स्वामी ने कहा है-

सम्माइट्ठी पुण्णं संसार कारणं णत्थि
सम्माइट्ठि पुण्णं मोक्खस्सैव व कारणं होइ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् सम्यग्दृष्टि का पूण्य संसार का कारण नहीं है किन्तु मोक्ष का ही कारण है। उस पुण्य से उत्तम कुल, वज्र वृषभ नाराच संहनन जैन धर्म, मुनि दर्शन की प्राप्ति, जिनेन्द्र श्रद्धा भक्ति, इन्द्र पद जो नन्दीश्वर द्वीप की पूजा पञ्चकल्याणकों में साक्षात् तीर्थंकर भगवान की सेवा आदि का महान् पुण्य का फल प्राप्त करें एक भव धारण कर नियम से मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है। तीर्थंकर पद की प्राप्ति भी पुण्य का फल है। इसलिये सम्यग्दृष्टि का पुण्य वंध आत्महित साधक है। वास्तव में तो सभ्यग्दर्शन हो जाने पर संसार का परिभ्रमण एक प्रकार से छूट ही जाता है वह सम्यग्दृष्टि मोक्ष के निकट पहुँच चुका है। अतः उसका बंध अवंध जैसा है।

सम्यग्दृष्टि संसार वर्धक क्रियाओं से मुक्त होजाता है

"संसार कारण विनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतो वाह्याभ्यन्तर क्रिया विशेषोपरम, सम्यक्चारित्रम्,, (राजवार्तिक)

अर्थ—संसार को बढ़ाने वाले कारणों को दूर करने के लिये प्रयत्नशील जो सम्यज्ञानी पुरुष है उसके वाह्य और अभ्यन्तर संसार वर्धक क्रियाओं का रुक जाना सो सम्यक् चारित्र है यह चारित्र चतुर्थ गुण स्थान में भी है। देखिये सर्व एव आत्मा ज्ञानवान् चैतन्यात्, मिथ्या दर्शनोदये विपरीतार्थग्राहित्वात्, मिथ्यादृष्टिः अज्ञः तदभावे याथा तथ्येन अर्थविभावनात् सम्यग्दृष्टिः प्रशस्तज्ञानः तस्य ज्ञानवतः (राजवार्तिक)—

अर्थ—सभी आत्माऐं ज्ञानवान् हैं क्योंकि चैतन्य लक्षण सभी आत्माओं में पाया जाता है। मिथ्यादर्शन कर्म के उदय में विपरीत अर्थ का ग्रहण होता है इसलिये मिथ्यादृष्टि जीव अज्ञ-अज्ञानी कहा जाता है। उस मिथ्यात्व कर्म के अभाव में यथार्थ पदार्थ का ग्रहण होने से सम्यग्दृष्टि प्रशस्त समीचीन ज्ञानी कहा जाता है। उस सम्यज्ञानी के संसारवर्धक वाह्य अभ्यन्तर क्रियाओं का निरोध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(अभाव) हो जाता है यही सम्यग्दृष्टि का सम्यक् चारित्र है।

राजवार्तिक के ऊपर की और नीचे की पंक्तियों का संबंध है उनको मिलाकर पढ़ने से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुण स्थान वर्ती आत्मा में भी सम्यक् चारित्र होता है। क्योंकि राजवार्तिक में चारित्र मोह का अभाव (इन पंक्तियों में) नहीं बताया गया है किंतु दर्शन मोह का अभाव बताया गया है इससे बहुत खुलासा हो जाता है कि यह चरित्र का लक्षण चतुर्थ गुण स्थान में भी लिया गया है। उत्तरोत्तर चारित्र मोहनीय की कमी होते २ वह चारित्र बढ़ता जाता है वीतराग अवस्था में उत्कृष्ट हो जाता है। सम्यग्दृष्टि आत्मा तत्व विचार और आचरण आगमानुकूल ही करता है। अतंरंग और वाह्य में मिथ्या विचार और मिथ्या क्रियाऐं वह नहीं करता है क्योंकि सम्यग्दृष्टि का आत्मा विशुद्ध है अतः उसका चारित्र भी सम्यक् चारित्र है।

असंख्यात गुणी निर्जरा

जो कर्म बंध के कारण हैं उन कार्यों के अभाव में चारित्र होता है बन्ध के कारण पांच हैं उनमें मिथ्यात्व कर्म के अभाव अथवा अनुदय में १६ प्रकृतियों की बंधत्युच्छित्ति हो जाती है। दूसरे गुण स्थान में २५ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति हो जाती है। चौथे असंयत सम्यग्दृष्टि के १० प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति हो जाती है इसलिये ५१ प्रकृतियों की वंधव्युच्छित्ति हो जाने से कर्मों के आगमन की क्रिया का निरोध हो जाना ही चारित्र है अतः असंयत सम्यग्दृष्टि के सम्यक् चारित्र का सद्भाव अवश्य है।

इतना ही नहीं उसके असंख्यात गुणी निर्जरा भी होती है। सम्यग्दृष्टि श्रावक विरतानंतवियोजकदर्शन मोह क्षपकोपशमकोपशान्त मोहक्षपकक्षीणमोह जिनाः (तत्वार्थसूत्र)

सम्यग्दृष्टि के असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा होती है उससे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असंख्यात असंख्यात गुणी निर्जरा श्रावक, विरत, अनन्तानुबंधी का विसंयोजक दर्शन मोह क्षपक चारित्र मोह उपशमक उपशांत चारित्र मोह क्षपक क्षीण मोह और संयोग तथा अयोग केवली इन सबों के होती है यह चारित्र के कारण से होती है अतः सम्यग्दृष्टि के भी सम्यक्त्वाचरण चारित्र अथवा स्वरूपाचरण चारित्र जन्य विशुद्धि है इसीलिये उसके असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।

सम्यग्दृष्टि की संसार से विरक्तता

सम्यग्दृष्टि रसौ भोगान् सेवमानोप्यसेवकः
नीरागस्य न रागाय कर्माऽकामकृतं यतः
आरंभादि क्रिया तस्य दैवाद्वा स्यादकामतः
अन्तः शुद्धेः प्रसिद्धत्वान्नहेतुः प्रशमक्षने: (पंचाध्यायी)

अर्थः— सम्यग्दृष्टि भोगों को सेवन करता हुआ भी विरक्त है चारित्र मोहनीय के वश सेवन करता है परन्तु वह वास्तव में भोगों से उदास रहता है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि को भोगों में राग नही है अतः बिना इच्छा के किया हुआ कार्य उसके लिए राग वर्धक नहीं हो सकता है। वह जितनी भी आरंभादिक क्रिया करता है वह बिना इच्छा के उदासीनता से चारित्र मोहवश करता है अन्तरंग परिणाम उसके विशुद्ध हैं। आत्मा में परम शान्ति है।

यह व्यवहार सम्यग्दर्शन का कथन नहीं है किंतु सात प्रकृतियों के उपशम क्षय क्षयोपशम से होने वाले निश्चय सम्यग्दर्शन का कथन है इसलिये मिथ्यात्व तथा अनन्तानुबंधी जन्य राग वहां नहीं है। जो राग अनंत संसार को बढ़ाने वाला है वह राग सम्यग्दृष्टि के नहीं रहा है उसका संसार तो नियम से समाप्त होने वाला है। उस सम्यग्दृष्टि के संयम रूप चारित्र नहीं होने पर भी स्वरूपाचरण चारित्र अवश्य हैं। पंचाध्यायी ग्रन्थराज में सम्यग्दृष्टि का अपूर्व माहात्म्य बताया गया है। उसके स्वरूपाचरण और शुद्धोपयोग बताया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया है। आठ अंगों के प्रकरण में यह कहा गया है। और भी–

रागदीनामनुद्रेक: प्रशम: संसारभीरुता संवेग: सर्वं प्राणिषु मैत्री अनुकम्पा, जीवादयोर्था: यथा स्वभावै: सन्तीति मति रास्तिक्यम् ए एतैरभिव्यक्त लक्षणं प्रथमं सराग सम्यक्त्व मित्युच्यते।

सप्तानां प्रकृतीनां आत्यन्तिकेऽपगमे सत्यात्म विशुद्धि मात्र मितरत् वीतराग सम्यक्त्व मित्युच्यते। (राजवार्तिक)

अर्थ:– अविरत सम्यग्दृष्टि की आत्मा में रागादिक का प्रकोप नहीं है अर्थात् मिथ्यात्व एवं अनंतानुबंधी जन्य रागादि दुर्भाव उसके नहीं होते हैं इसलिये वह प्रशमवान् है संसार से सदैव उसे भय रहता है वह संसार के दु:खों से भयभीत होकर संसार को छोड़ने की भावना करता है ऐसा संवेग उसके रहता है। सर्व जीवों में उसका मैत्री भाव रहता है किसी जीव को वह सताना या मारना नहीं चाहता है इसलिये वह दयाभाव रखता है और सर्वज्ञ देव द्वारा कथित समस्त पदार्थों पर पूर्ण श्रद्धा रखता है अत: वह परमास्तिक्या वाला है। ये सभी गुण अविरत सम्यग्दृष्टि में रहते हैं यह उपशम और क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि का स्वरूप है। किंतु सातों प्रकृतियों का सर्वथा नाश करने वाला क्षायिक सम्यग्दृष्टि तो वींतराग है।

वीतरागं सरागं च सम्यक्त्वं कथितंद्विधा
विरागं क्षायिकं तत्र सरागमंपरं द्वयम् ६५

(अमितगति श्रावकाचार)

अर्थात् उपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्वसराग हैं तथा क्षायिक सम्यग्दर्शन बीतराग है।

अर्थात् असके मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी राग नहीं है। अत: वह अत्यन्त विशुद्ध वीतराग है वह या तो उसी भव से मोक्ष चला जाता है अथवा तीसरे या चौथे भव से नियम से मोक्ष प्राप्त कर लेता है। ऐसे विशुद्ध परिणाम वाले को चारित्र और स्वरूपाचरण नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानना शास्त्र सम्मत नहीं है।

धर्मध्यान चौथे से सातवें तक होता है

धर्मध्यान चौथे गुण स्थान से लेकर सातवें गुण स्थान तक होता है। तो क्या उन गुण स्थानों में स्वरूपाचरण चारित्र नहीं हो सकता है ? जबकि सातिशम अप्रमत्त (सातवें गुण स्थान से) उपशम श्रेणी अथवा क्षपक श्रेणी तक आरोहण हो जाता है और क्षपक श्रेणी में अन्तर्मुहुर्त में केवल ज्ञान हो जाता है तब वहां स्वरूपाचरण नहीं हो यह बात सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है।

स्वरूपाचरण और ज्ञान चेतना अविरत सम्यग्दृष्टि के भी (चौथे गुण स्थान से सातवें गुण स्थान तक भी) होती है इसका बहुत खुलासा धर्म ध्यान के प्रकरण में तत्वानुशासन में किया है। उन प्रमाणों को ध्यान से पढ़िये–

देखिये धर्म्यध्यान का स्वरूप बताते हुए पुरातन आचार्य रामसेनाचार्यं रचित तत्वानुशासन शास्त्र में स्वात्म स्वरूप की लवलीनता में कितना खुलासा करते हैं–

विध्यासुः स्वं परं ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थितम्
विहायान्यदनर्थित्वात् स्वमेवावैतु पश्यतु
पूर्वं श्रुतेन संस्कारं स्वात्मन्या रोपयेत्ततः
तत्रैकाग्र्यं समासाद्य न किञ्चिदपि चिन्तयेत्

(तत्वानुशासन श्लोक १४३। १४४)

इसकी हिन्दी टीका श्री पं० जुगलकिशोर जी मुखतार ने वनाई है, उन्होंने उक्त दौनों श्लोकों का अर्थ इस प्रकार किया है–

"जो स्वावलम्बी निश्चय ध्यान करने का इच्छुक है वह स्व को और पर को यथावस्थित रूप में जानकर तथा श्रद्धान कर और फिर पर को निरर्थक होने से छोड़कर स्व को अपने आत्मा को ही जानो और देखो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः पहले श्रुतआगम के द्वारा अपने आत्मा में आत्म संस्कार को आरोपित करें आगम में आत्मा को जिस यथार्थ रूप में वर्णित किया है उस प्रकार की भावनाओं द्वारा उसे संस्कारित करें तदनुसार उस संस्कारित स्वात्मा में एकाग्रता तल्लीनता प्राप्त करके और कुछ भी चिंतवन न करें।"

ऊपर के दोनों श्लोक और उनके अर्थ से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि आत्मा के निज स्वरूप को पहले आगम से अच्छी तरह समझ लेवें और उसे दृढ़ता से श्रद्धान कर लेवें फिर उस प्रकार की भावना एवं चिंतन से आत्मा को संस्कारित करे पीछे उस आत्म स्वरूप में तल्लीन बन जावे।

इसे स्वरूपाचरण के सिवा और क्या कहा जाय? यह स्वरूपाचरण चौथे गुण स्थान से लेकर सातवें गुण स्थान तक-धर्म ध्यान में आचार्य ने बताया है। जो विद्वान् वीतराग अवस्था में ही स्वरूपाचरण बताते हैं वे इस स्पष्ट प्रमाण पर सोचें।

इसी शास्त्र में नीचे के दो श्लोकों में पं० जुगुलकिशोरजी मुखतार ने—"स्वसंवित्ति द्वारा आत्म दर्शन" इन शब्दों से उनका अर्थ लिखा है। श्लोक—

उभयेस्मिन्निरुद्धेतु स्याद्विस्पष्टमतीन्द्रियम्
स्वसंवेद्यं हि तद्रूपं स्वसंवित्यैव दृश्यताम् १६७
वपुषोऽप्रतिभासेपि स्वातन्त्र्येण चकासते
चेतना ज्ञानरूपेऽयं स्वयं दृश्यत एव हि १६८
(तत्वानुशासन)

इन दोनों श्लोकों का अर्थ पं० जुगुलकिशोरजी मुखतार ने इस प्रकार किया है—

"इंद्रिय और मन दोनों के निरुद्ध होने पर अतींद्रिय ज्ञान विशेष रूप से स्पष्ट होता है अतः अपना वह रूप जो स्वसंवेदन के गोचर है उसे स्वसंवेदन के द्वारा ही देखना चाहिये,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"स्वतंत्रता से चमकती हुई यह ज्ञानरूपाचेतना शरीर रूप से प्रतिभासित न होने पर भी स्वयं ही दिखाई पड़ती है। यहां पूर्व पद्य में उल्लिखित स्वसंवित्ति को स्पष्ट करते हुए बतलाया गया है कि यह संवित्ति ज्ञान रूपा चेतना है जोकि पर की अपेक्षा न रखते हुए स्वतन्त्रता के साथ चमकती हुई स्वयं ही दिखाई पड़ती है। शरीर रूप से उसका कोई प्रतिभास नहीं होता।"

इन दोनों श्लोकों से यह भी भलीभांति स्पष्ट हो जाता है कि चौथे गुण स्थान से सातवें गुणस्थान तक धर्म ध्यान में स्वसंवित्ति-स्वरूपावलोकन रूप ज्ञान चेतना आत्मा में प्रगट हो जाती है। वह इंद्रिय जन्य ज्ञान नहीं है किंतु स्वयं आत्म प्रत्यक्ष-आत्मावलोकन रूप ज्ञान चेतना है।

जो विद्वान् ज्ञान चेतना को और स्वरूपाचरण को वीतराग अवस्था (बारहवे तेरहवें गुण स्थानों में) में ही मानते हैं उन्हें इन पूर्वाचार्य प्रणीत आगम के प्रमाणों से अपनी समझ को वदल लेना चाहिये। ग्रन्थराज पंचाध्यायी में जो स्वरूपाचरण और ज्ञान चेतना का कथन सम्यग्दर्शन के साथ अविनाभावी रूप से किया गया है वह कथन और तत्वानुशासन ग्रन्थ का कथन सर्वथा एक रूप है।

स्वरूपाचरण का लक्षण समझने में भूल

स्वरूपाचरण चारित्र अविरत सम्यग्दृष्टि के चौथे गुण स्थान में नहीं होता है किंतु वह तेरहवें चौदहवें गुण स्थानों में परम वीतराग अवस्था में ही होता है। ऐसा कहने वाले विद्वान् प्रमाण भी देते हैं। परंतु उसका अर्थ समझने में भूल है देखिये—

"राग द्वेषाभावलक्षणं परमं यथाख्यातरूपं स्वरूपे
चरणं निश्चयचारित्रं भणन्ति,, (परमात्मप्रकाश)

इसका अर्थ वे विद्वान् यह करते हैं कि "रागद्वेष के अभाव लक्षण यथाख्यात चारित्र स्वरूपाचरण चारित्र है। उन्होंने और भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखा है कि संज्वलन कषायोदय के अभाव में यथाख्यात चारित्र होता है। इस यथाख्यात चारित्र को ही स्वरूपाचरण चारित्र कहा गया है,,

परंतु ऊपर लिखी संस्कृत की पंक्तियों के समझने में भूल है उसी से ऐसा अर्थ किया गया है।

पंक्तियों में "स्वरूपेचरणं" लिखा है। इसी पर ध्यान देना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि राग द्वेष के अभाव में यथाख्यात रूप निश्चय चारित्र होता है। उस चारित्र में आत्मा अपने स्वरूप में आचरण करता है अर्थात् निश्चय चारित्र-यथाख्यात चारित्र धारी आत्मा अपने स्वरूप के अवलोकन में, स्थिर हो जाता है। न कि यथाख्यात ही स्वरूपाचरण है। इसी मूल में समझने की भूल से यथाख्यात चारित्र को ही स्वरूपाचरण कहा जाता है। और यथा-ख्यात चारित्र से नीचे के गुण स्थानों में उस स्वरूपाचरण का निषेध किया जाता है। स्वरूपेचरणं यह सप्तमी विभक्ति है और यथाख्या-तम् यह प्रथमा विभक्ति है। इसलिये यथाख्यात के लक्षण को ही स्वरूपाचरण मान लेना यही भूल एवं विवाद का विषय बन गया है। यथार्थ में यहां कार्य कारण भाव है यथाख्यात चारित्र कारण है स्वरूपाचरण उसका कार्य अथवा फल है।

यथा ख्यात चारित्र में स्वरूपाचरण उत्कृष्ट रूप में होता है। अनेक शास्त्रों में उत्कृष्ट कथन किया गया है। जैसे गोम्मटसार में मार्गणाओं में उत्कृष्ट संख्या बताई गई हैं कहीं जघन्य भी बताई गई है प्रकरण में जहां परम वीतरागता है वहां उत्कृष्ट स्वरूपाचरण है। नीचे नीचे कम वीतरागता है वहां स्वरूपाचरण मध्यम एवं जघन्य है।

स्वरूपाचरण व्यापक है

(इसे ध्यान से पढ़िये)

जिस प्रकार चारित्र के भेद है, मुनियों में सामायिक छेदोप-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्थापना परिहार विशुद्धि सूक्ष्मसांपराय यथाख्यात ये चारित्र भेद हैं। उन्हीं भेदों में महाव्रत समिति गुप्ति आदि हैं। श्रावकों में अष्टमूल गुण अणुव्रत ग्यारह प्रतिमा ये चारित्र भेद हैं उस प्रकार स्वरूपाचरण कोई चारित्र भेद नहीं है। वह व्यापक है और सभी भेदों में जघन्य मध्यम उत्कृष्ट रूप से पाया जाता है अर्थात क्रम क्रम से संयम एवं विरागता की वृद्धि में आत्मास्वरूप में स्थिर हो जाता है। जितनी जितनी विशुद्धि जहां हैं अथवा जितता जितना चारित्र जहां है वहां उतना उतना ही स्वरूपावलोकन अथवा आत्मीयवृत्तिरूप स्वरूपाचरण होता है। चौथे गुण स्थान से लेकर चौदहवें गुण स्थान तक सर्वत्र स्वरूपाचरण है। चौथे में अन्यन्त जघन्य अथवा अंशमात्र है। आगे क्रम क्रम से संयम की विशुद्धि बढ़ने से स्वरूपाचरण भी बढ़ता गया है। इसलिये वह व्यापक है।

जो विद्वान् पूर्ण वीतरागता में तेरहवें गुण स्थान में ही स्वरूपाचरण मानते हैं उनके कथनानुसार क्षपक श्रेणी में भी स्वरूपाचरण नहीं होगा। क्योंकि उन गुण स्थानों में सूक्ष्म लोभ का उदय है पूर्ण वीतरागता नहीं है। परंतु क्षपक श्रेणी वाला महामुनि अंतर्मुहूर्त में ही केवल ज्ञान नियम से प्राप्त कर लेता है। तो क्या वहां भी स्वरूपाचरण नहीं होगा? इसलिये स्वरूपाचरण का कोई नियमित गुण स्थान नहीं है किंतु आत्म विशुद्धि की तरतमता से चौथे से लेकर चौदहवे गुण स्थान तक सर्वत्र स्वरूपाचरण हैं।

परमावगाढ़ के समान

जिस प्रकार क्षायिक सम्यग्दर्शन चौथे से लेकर सातवें गुण स्थान तक नियम से परिपूर्ण हो जाता है फिर परमावगाढ़ सम्यक्त्व चौदहवे गुण स्थान में क्यों बताया गया है? इसी प्रकार क्षायिक चारित्र भी बारहवें में परिपूर्ण हो जाता है। फिर परमावगाढ़ चारित्र भी चौदहवें में क्यों माना गया है? इसी प्रकार स्वरूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निरीक्षण अथवा स्वरूपाचरण भी उत्तरोत्तर विशुद्धि के बढ़ने से विशेष होता है। चौथे गुण स्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि के कम विशुद्धि नहीं है उसने दर्शन मोह को जो अनंत संसार का कारण है सर्वथा नष्ट कर बहुत ही विशुद्धि प्राप्त की है। इसलिये वहां भी आत्म निरीक्षण एवं स्वात्म संचरण एक देश होता ही है। मिथ्यात्व के साथ चारित्र मोहनीय की प्रधान प्रकृति अनंतानुबंधी को नष्ट कर वह सम्यग्दृष्टि भी निर्मोही वन चुका है।

जिन वीतराग मुनियों को अनेक वड़ी वड़ी ऋद्धियां हो जाती हैं जिनको अवधि और मनः पर्याय ज्ञान भी हो जाता है उन महर्षियों को स्वरूपलीनता स्वरूपाचरण नहीं हो यह बात युक्ति एवं आगम के विरुद्ध है। देखिये–

अस्ति चात्म परिच्छेदि ज्ञानं सम्यग्दृगात्मनः
स्व संवेदन प्रत्यक्षं शुद्धं सिद्ध पदोपमम् (पंचाध्यायी)

अर्थः—सम्यग्दृष्टि का ज्ञान आत्मा का अवलोकन करने वाला है। वह आत्मा का प्रत्यक्ष संवेदन करता है वह शुद्ध है सिद्ध पद की उपमा वाला है। सम्यग्दृष्टि के विषय में इससे अधिक महत्व की बात और क्या हो सकती है।

स्वरूपाचरण प्राप्ति का और भी प्रवल प्रमाण

दृङ मोहे स्तंगते पुंसः शुद्धस्यानुभवोभवेत्
न भवेत् विघ्नकरः कश्चित् चारित्रावरणोदयः (पंचाध्यायी)

अर्थः— दर्शन मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने पर पुरुष का शुद्धानुभव होता है उस शुद्धात्मा के अनुभव में कोई चारित्र मोहनीय कर्म का उदय विघ्नबाधा नहीं कर सकता है कितना स्पष्ट कथन है। शुद्धात्मा का अनुभव ही तो स्वरूपाचरण है। भगवान कुंदकुंद स्वामी और भी स्पष्ट करते हैं–

जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहि णिद्दिट्ठं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ववहारो णिच्चयदो अप्पाणं होइ सम्मत्तं चरणं

अर्थात् जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना व्यवहार सम्यक्त्व है और आत्मा का सम्यक्त्वाचरण निश्चय सम्यक्त्व है। श्री पंडित टोडरमल जी ने इसी का खुलासा लिखा है—

व्यवहार और निश्चय सम्यक्त्व

जो विद्वान यह कहते हैं कि चौथे गुण स्थान में निश्चय सम्यक्त्व नहीं होता है केवल व्यवहार सम्यक्त्व ही होता है उन्हें इस गाथा पर ध्यान देना चाहिये—

जीवादी सद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णतं
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं

पंडित प्रवर टोडरमल जी ने इस गाथा का अर्थ यह लिखा है— "तत्वार्थ का श्रद्धान सो तो व्यवहार में सम्यक्त्व है बहुरि अपना आत्म स्वरूप का अनुभव करि तिसकी श्रद्धा प्रतीति रुचि आचरण सों निश्चय ते सम्यक्त्व है सो वह सम्यक्त्व आत्मा ते जुदा वस्तु नाहीं है। आत्मा का ही परिणाम है सो आत्मा ही है ऐसे सम्यक्त्व अर आत्मा एक ही वस्तु है वह निश्चय का आशय जानना।"

(मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ट ३०)

चौथे गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि को निश्चय सम्यग्दृष्टि कहा गया है और उसे आत्मस्वरूप का अनुभव तथा आचरण करने वाला भी बताया गया है।

मुख्य बात:— वास्तविक बात यह है कि जहां केवल तत्वों का श्रद्धान है वह तो व्यवहार सम्यग्दर्शन है। क्योंकि वह ज्ञान का विषय है निश्चय आत्मस्वरूप की प्राप्ति नहीं है। किन्तु जब आत्मा में दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम क्षय क्षयोपशम हो जाता है तब आत्मा का निज गुण सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है। वह आत्मा का शुद्ध निज गुण है। वह निश्चय सम्यग्दर्शन है। यदि आत्मा के निज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण की प्रगटता को भी व्यवहार कहा जाय तो फिर निश्चय सम्यक्त्व का कोई स्वरूप ही नहीं सिद्ध होगा। इसलिये चतुर्थ गुण स्थान से लेकर ऊपर के सभी गुण स्थानों में निश्चय सम्यक्त्व और स्वरूपावलोकन है। यही बात पंडित प्रवर टोडरमल जी ने खुलासा की है। उन्होंने आत्म स्वरूप को अनुभव करने वाला सम्यग्दृष्टि है ऐसा कहा है।

यदि केवल श्रद्धान का नाम ही सम्यग्दर्शन होता तो निश्चय और व्यवहार ऐसे सम्यक्त्व के दो भेद आचार्य क्यों करते ? और यदि सम्यग्दृष्टि के चारित्र नही होता तो भगवत्कुंदकुंद स्वामी चारित्र के दो भेद क्यों बताते ? और यदि सम्यग्दृष्टि का चारित्र स्वरूपाचरण नहीं होता तो आत्मा में रमण करने का नाम निश्चय सम्यक्त्व क्यों बताते ?

पं० दौलतराम जी ने अपने पद में यही बात कही है–

चिन्मूरति दृगधारी की मोहि रीति लगत है अटापटी
बाहर नारक कृत दुख भोगे अन्तर समरस गटागटी

यह अविरत सम्यग्दृष्टि का कथन है इस पद में बड़े महत्व की बात यह स्पष्ट की गई है कि असंयत सम्यग्दृष्टि वहिरंग में तो नरक में दुख भोग रहा है परन्तु अन्तरंग में वह समरस अर्थात आत्मरस का आनन्द ले रहा है। अर्थात् स्वस्वरूप के चिंतवन में लग जाता है। अब विद्वान विचार करें कि स्वरूपाचरण और क्या है ?

सम्मतचरण सुद्धा संजम चरणस्स जइव सुपसिद्धा
णाणी अमूढदिठ्ठी अचिरे पावति णिव्वाणं

(षटप्रामृत)

आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहते हैं कि जो सम्यक्त्वाचरण से शुद्ध हैं अथवा संयमाचरण से सुप्रसिद्ध हैं वे अमूढ़दृष्टि ज्ञानी शीघ्र ही निर्वाण को प्राप्त करते हैं। इस गाथा में सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण दोनों प्रकार के चारित्र की विशुद्धि बताई गई है। और भी–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावेहि भाव सुद्धं रइयं चरण पाहुणं चेव

(षट् प्राभृत)

आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहते हैं कि शुद्ध भावों से उत्पन्न हुआ चारित्र सार की भावना करो, इस गाथा की टीका में लिखा है कि "चेव शब्दात् दर्शनाचरणंच्चोद्दिशितम्" इसका अर्थ है कि च शब्द से दर्शनसार की भावना भी करो। यहां पर दर्शनाचरण और संयमाचरण की भावना से स्वरूप निरीक्षण ही प्रयोजन है। सम्यक्त्वाचरण में दर्शन मोह रहित वीतरागता एवं विशुद्धता है। संयमाचरण में चारित्र मोह रहित वीतरागता एवं विशुद्धता है। स्वरूप निरीक्षण स्वरूपाचरण दोनों में है। किंतु संयमाचरण में विशेष रूप से है और वह उत्तरोत्तर अधिकर है।

स्वरूपाचरण चारित्र होने में और भी स्पष्ट प्रमाण

कर्मादान क्रियारोधः स्वरूपाचरणं चयत्
धर्मः शुद्धोपयोगः स्यात् सैषः चारित्रसंज्ञिकः

(लाटी संहिता)

इसका अर्थ इसके टीकाकार धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर विद्वत् रत्न श्री पं० लालाराम जी शास्त्री ने इस प्रकार किया है–

"कर्मों को ग्रहण करने वाली क्रियाओं का रुक जाना ही स्वरूपाचरण चारित्र है वही स्वरूपाचरण चारित्र धर्म है वही शुद्धोपयोग है और उसी को चारित्र कहते हैं।" पंचाध्यायी ग्रन्थ का उद्धरण देते हुए उक्त धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर जी ने लाटी संहिता की टीका में यह भी लिखा है–

"जिस प्रकार सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान अविनाभावी है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के साथ स्वरूपाचरण चारित्र भी अविनाभावी है। चौथे गुण स्थान में सम्यग्दर्शन के साथ स्वरूपाचरण चारित्र भी आत्मा में प्रगट हो जाता है, इसका कारण यही है कि सम्यग्दर्शन को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घात करने वाली सात प्रकृतियाँ हैं। अनंतानुवंधी क्रोध, मान, माया, लोभ मिथ्यात्व, सम्यङमिथ्यात्व और सम्यक प्रकृति मिथ्यात्व। इन सातों में अन्त के तीन भेद तो दर्शन मोहनीय के और आदि के चार भेद अनंतानुबंधी चारित्र मोहनीय के हैं। अनंतानुबंधी कषाय यद्यपि चारित्र मोहनीय का भेद है तथापि उसमें दो प्रकार की शक्ति है। वह सम्यग्दर्शन का भी घात करती है और सम्यक् चारित्र का भी घात करती है। अनंतानुवंधी कषाय का उदय दूसरे गुणस्थान तक रहता है इसीलिये चौथे गुण स्थान में निरावाध सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट हो जाता है,,

"उपर्युक्त कथन से यह वात भी सिद्ध हो जाती हैकि जव स्वरूपा चरण चारित्र और सम्यग्ज्ञान दोनों ही सम्यग्दर्शन के साथ होने वाले हैं तो तीनों ही अविनाभावी है इसीलिये ग्रन्थकार ने तीनों को अविनाभावी बतलाते हुए तीनों को अखंडित कहा है अतः सम्यग्दर्शन का अविनाभावी स्वरूपाचरण चारित्र है।,, (लाटी संहिता)

लगभग सौ सवासौ संस्कृत शास्त्रों के टीकाकार महान् अनुभवी एवं मूलग्रन्थ के अनुसार ही टीका रचने वाले प्रामाणिक विद्वान् सरस्वती दिवाकर धर्मरत्न श्रीमत्पंडित लालारामजी शास्त्री ने इस लाटी संहिता चारित्रग्रन्थ की टीका की है। अतः उक्त श्लोक के प्रमाण से अब किसी को यह शंका करने का स्थान नहीं रहता है कि चतुर्थ गुण स्थान में स्वरूपाचरण चारित्र नहीं होता है।

इसी बात को अनेक श्लोकों द्वारा पंचाध्यायी कार ने बहुत ही खुलासा किया है। पंचाध्यायी का स्वाध्याय करने वाले अच्छी तरह से जानते होंगे कि सम्यग्दर्शन की विशुद्धता उसके अविनाभावी स्वरूपाचरण चारित्र का ही परिणाम है।

मूल बात यह है कि स्वरूपाचरण चारित्र का ऐसा कोई लक्षण नहीं है कि वह बारहवे और तेरहवे गुण स्थानों में ही हो किन्तु दर्शन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोह और चारित्र मोह के अभाव में जहां २ जितनी २ विशुद्धि आत्मा में बढ़ती जाती है वहां २ उतना २ आत्मा विशुद्ध होता हुआ अपने स्वरूप का अवलोकन करता है। जहां वीतरागता परिपूर्ण है वहां आत्मा स्व स्वरूप में पूर्ण रूप से लीन हो जाता है। वीतरागता स्वरूपाचरण का लक्षण नहीं है किंतु वह उसका कारण है। अर्थात् स्वरूपाचरण उसका फल है। अतः जहां जितनी वीतरागता है। 'दर्शनमोहनी चारित्र मोहनी के अभाव में' वहां उसी अनुपात से स्वरूपा चरण होता है।

इसलिये उपशमश्रेणी क्षपक श्रेणी, अप्रमत्तध्यान तथा चौथे गुणस्थान तक जितनी बीतरागता है वहां उतनी विशुद्धि और स्वरूपा वलोकन है। सम्यग्दृष्टि भी संसार के भोगों से विरक्त एवं वैराग्य की ओर झुक जाता है और स्वात्मनिरीक्षण करता है।

समयसार के निर्जरा अधिकार का १३६वाँ श्लोक भी स्वरूपाचरण चारित्र को प्रगट करता है। वह इस प्रकार है–

सम्यग्दृष्टि र्भवति नियतं ज्ञान वैराग्य शक्तिः।
स्वं वस्तुत्वं कलयितुमयं स्वान्यरूपाप्तिमुक्त्या ॥
यस्माज्ज्ञात्वा व्यतिकरमिदं तत्वतः स्वं परं च ।
स्वस्मिन्नास्ते विरमति परात्सर्वतोरागयोगात् ॥

अर्थ–सम्यग्दृष्टि के नियम से ज्ञान और वैराग्य की शक्ति प्रगट हो जाती है। क्योंकि यह सम्यग्दृष्टि आत्मस्वरूप को जानने के लिए अपने स्वरूप की प्राप्ति करता है और अपने से पर पदार्थ का परित्याग करता है इस प्रकार यह सम्यग्दृष्टि इस कर्ममिश्रित आत्म तत्व में स्व को स्वरूप से जानकर और पर को पररूप से जानकर अपने स्व स्वरूप में रमण करता है अर्थात् अपने आत्म स्वरूप में स्थिर होजाता है और रागादिभाव रूप जो पर पदार्थ हैं उनसे विरक्त हो जाता है। इस प्रकार इस आगम प्रमाण के आधार से यह बात सिद्ध होती है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दृष्टि स्व स्वरूप में रमण करता है। और स्व स्वरूप में रमण करने का नाम ही चतुर्थ गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि जीव की स्वरूपाचरण चारित्र की प्राथमिक अवस्था है।

जो बात ऊपर समयसार में कही गई है वही पंचाध्यायी में कही गई है। पंचाध्यायी के प्रकरण गत चार श्लोक नीचे दिये जाते हैं उनसे ऊपर दिये गये समयसार के श्लोक से समानता स्पष्ट प्रतीत होती है देखिये—

सत्य माद्य द्वयं ज्ञानं परोक्षं पर संविदि
प्रत्यक्षं स्वानुभूतौ तु दृङ्मोहोपशमादितः (श्लोक ४६२)
अस्ति चात्मपरिच्छेदि ज्ञानं सम्यग्दृगात्मनः
स्व संवेदनप्रत्यक्षं शुद्धं सिद्धास्पदोपमम् (श्लोक ४८९)
दृङ्मोहेऽस्तंगते पुसः शुद्धस्यानुभवो भवेत्
नभवेद्विघ्नकरः कश्चित् चारित्रावरणोदयः (श्लोक ६८८)
स्व संवेदन प्रत्यक्षं ज्ञानं स्वानुभवद्वयम्
वैराग्यं भेद विज्ञान मित्याद्यस्तीह किं वहु (श्लोक ९४१)
(पंचाध्यायी)

अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान दोनों पर पदार्थ के ज्ञान करने में परोक्ष हैं किंतु दर्शन मोहनीय के उपशमादि होने पर स्वात्मानुभूति करने में प्रत्यक्ष हैं।

सम्यग्दृष्टि के आत्मा का ज्ञान-स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है वह शुद्ध है सिद्ध पद की उपमा वाला है। दर्शन मोहनीय (मिथ्यात्व कर्म) का अभाव होने पर पुरुष को शुद्ध स्वरूप का अनुभव होता है। उसमें चारित्र मोहनीय कर्म का उदय कुछ भी विघ्न वाधा नहीं कर सकता है।

सम्यग्दृष्टि को स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है। स्वानुभव रूप ज्ञान होता है। भेद विज्ञान रूपं वैराग्य होता है। यह सव सम्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्दर्शन गुण के प्रगट होने पर होता है। अधिक क्या कहा जाय।

इन श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है कि अविरत सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र अवश्य होता है वह सब वर्णन स्वरूपाचरण चारित्र का ही द्योतक है अथवा स्वरूपाचरण का ही स्वरूप है अन्य प्रवचनादि ग्रन्थों में ही इसी प्रकार का कथन है।

आचार्य कुंदकुंद स्वामी के रचे हुए समयसार आदि शास्त्रों के टीकाकार तलस्पर्शी महान् विद्वान् आचार्य अमृतचंद्र सूरि तत्वार्थसार शास्त्र में सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के विषय में कितना स्पष्ट लिखते हैं—

पश्यति स्व स्वरूपं यो जानाति च चरत्यपि
दर्शन ज्ञान चारित्र त्रय मात्मैव तन्मयः श्लोक ६

(तत्वार्थ सार नवम अध्याय)

अर्थ—आत्मा अपने निज स्वरूप को देखता है इसलिये वह सम्यग्दृष्टि है आत्मा अपने निज स्वरूप को जानता है इसलिये वह सम्यग्ज्ञानी है। आत्मा स्व स्वरूप में आचरण करता है इसलिये स्व स्वरूप-रत्नत्रय में तन्मय रहने वाला आत्मा ही है।

इस श्लोक से यह स्पष्ट होजाता है कि सम्यग्दृष्टि अपने निज स्वरूप को देखता है और उसी स्वरूप में आचरण करता है। आचार्य अमृतचंद्र सूरि ने इस प्रकरण में कई श्लोक लिखे हैं उनमें व्यवहार रत्नत्रय और निश्चय रत्नत्रय रूप से रत्नत्रय के दो भेद किये हैं जो केवल पर पदार्थों का आगमानुसार श्रद्धान करता है उन्हें श्रुत ज्ञान से जानता है और भेद बुद्धि से उन जीवादि तत्वों की उपेक्षा करता है उसे तो उन्होंने व्यवहारावलंबी रत्नत्रयधारी बताया है और जो अपने निज स्वरूप को देखता है उसी निज स्वरूप को अभेद रूप से जानता है और उसी निजस्वरूप में आचरण करता है उसे निश्चयावलंबी रत्नत्रयधारी बताया है महाशास्त्र तत्वार्थ सूत्र में आचार्य उमा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामी ने "सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि मोक्ष मार्गः,, इस सूत्र द्वारा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को मोक्ष मार्ग बताया है। इसी मोक्ष मार्ग के व्यवहार मोक्ष मार्ग और निश्चय मोक्षमार्ग ऐसे दो भेद हैं। यही बात आचार्य समंभतद्रस्वामी ने रत्न करंडे श्रावकाचार में बताई है। श्लोक इस प्रकार है—

सद्दृष्टि ज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वराः विदुः
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धतिः

अर्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनों को सर्वज्ञ देव और गणधरादि महर्षियों ने धर्म बताया हैं और इनके विपरीत मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र को अधर्म और ससार बढ़ाने वाला बताया है। इस कथन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पहले तीन गुण स्थानों तक मिथ्या दृष्टि है, चतुर्थ गुण स्थान से सम्यग्दृष्टि है। चौथे गुण स्थान में भी रत्नत्रय प्रगट हो जाता है अतः मोक्ष मार्ग चौथे गुण स्थान से चालू हो जाता है। सम्यग्दृष्टि का मोक्षमार्ग साध्य साधक दोनों रूप हैं अर्थात् व्यवहार निश्चयात्मक है। एक देश और सकल संयम का साधक होने से (क्रियात्मक प्रवृत्ति होने से) चौथे गुण स्थान का रत्नत्रय व्यवहार रूप है और दर्शन मोहनीय तथा अनंतानुवंधी चारित्र मोहनीय का अनुदय-उपशम क्षय क्षयोपशम होने से चतुर्थ गुण स्थान वर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि का सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र निश्चयात्मक भी है। क्योंकि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व से उपशम श्रेणी में सम्यग्दृष्टि जाता है और क्षायिक सम्यग्दर्शन तो चौथे गुण स्थान से लेकर चौदहवे गुण स्थान तथा मोक्ष तक सदैव आत्मा में रहता है। इसलिये चतुर्थ गुण स्थान वाला आत्मा भी रत्नत्रयात्मक है। क्योंकि गुणों के घातक कर्मों के अभाव में आत्मीय गुणों का प्रगट होजाना ही निश्चयमोक्ष मार्ग है। आचर्य अमृतचन्द्र सूरि ने उसी सम्यग्दृष्टि को स्वरूपाचरण चारित्र धारी बताया है। इतना समझ लेना चाहिये कि स्वरूपाचरण चारित्र दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय दोनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के अभाव में होता है अतः जितना दोनों मोहनी कर्मों का अभाव (अनुदय) होगा या क्षय होगा उतना २ स्वरूपाचरण चारित्र बढ़ता जायगा। चौथे गुण स्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि का रत्नत्रयात्मक मोक्ष मार्ग जघन्य एवं प्रारम्भिक है अतः उसका स्वरूपाचरण चारित्र भी जघन्य अथवा अंश रूप है। ऊपर के गुण स्थानों में उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। पूर्ण वीत राग अवस्था में स्वरूपाचरण भी पूर्ण रूप से हो जाता है। वहां तो केवल स्वरूप में ही लीनता है।

इतने प्रमाणों द्वारा इतना स्पष्टीकरण होने पर चौथे गुण स्थान में स्वरूपाचरण मानने में शंका या विवाद का कोई स्थान नहीं रहता है। सभी परोक्ष ज्ञानी एवं अल्प ज्ञानियों को गंभीर और सूक्ष्म तत्वों पर आगमानुसार श्रद्धान करना ही सम्यक्त्व का चिन्ह है।

जैन दर्शनाचार्य- श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का चतुर्थ
गुण स्थान में स्वरूपाचरण
चारित्र विधायक

चतुर्थो अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री ब्र. राजुल्मति श्राविकाश्रम
१९७, बुधवार पेठ, सोलापूर.

अथ पंचम अध्याय

चौथे गुण स्थान में ज्ञान चेतना होती है वह स्वरूपाचरण को सिद्ध करती है

एसी भी शंका उठाई जाती है कि चौथे गुण स्थान में ज्ञान चेतना होती है क्या ? इसके उत्तर में पंचाध्यायीकार ने बहुत खुलासा किया है इस सम्बन्ध में पंचाध्यायी में ही ज्ञान चेतना के प्रकरण को ध्यान से पढ़ने और समझ लेने से शंका का समाधान अच्छी तरह हो जाता है। इसलिये यहां पर बहुत ही संक्षेप में सार भूत उत्तर देना पर्याप्त है ।

चेतना के आचार्यों ने तीन भेद किये हैं। कर्मफल, चेतना कर्म चेतना और ज्ञान चेतना । इनके स्वामी क्रम से एकेन्द्री से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक, संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि, तथा सम्यग्दृष्टि हैं । कर्मफल चेतना एकेद्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक होती है। एकेन्द्रिय जीव अपने काय योग के द्वारा तथा द्वीन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक अपने काय योग तथा बचन योग के द्वारा तथा कषाय के द्वारा जैसा भी कर्म बन्ध करते हैं तदनुसार उसका फल भोगते रहते हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि मन से जैसा बिचार करते हैं और बचन तथा काय योग से जैसा व्यवहार करते हैं तदनुसार कर्म बंध करते हैं । परन्तु सम्यग्दृष्टि का ज्ञान सम्यज्ञान हो जाता है और उसका चारित्र सम्यक् चारित्र हो जाता है इसलिये उसके विचार और आचार धर्म साधक होते है।

यह ज्ञान चेतना भी स्वरूपाचारण चारित्र के समान चौथे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण स्थान में होती है इसके बिरुद्ध वह बीत राग अवस्था में ही होती है ऐसा जो मानते हैं उन्हें यह समझना चाहिये कि जैसे संयम देश संयम से लेकर तेरहवें गुण स्थान तक क्रम से बढ़ जाता है वैसे ज्ञान चेतना भी क्रम से चौथे से लेकर तेरहवें तक बढ़ती जाती है। यदि ऐसा नहीं माना जावे तो क्या सम्यग्दृष्टि का ज्ञान मिथ्या ज्ञान है जो उसके ज्ञान चेतना नहीं हो ? चौथे गुण स्थान में दर्शन मोहनीय के अभाव में मिथ्या राग नष्ट हो चुका है अतः वह भी वीत राग है जैसा कि राजवार्तिक में क्षायिक सम्यग्दृष्टि को वीत राग कहा गया है उसके अनन्तानुबन्धी कषाय नहीं रही है अतः उस कषाय से होने वाला मिथ्या राग भी नहीं है अतः उसके ज्ञान चेतना का होना अवश्यं भावी है।

अर्थाज्ज्ञानं गुणः सम्यक् प्राप्तावस्थानांतरं यदा
आत्मोपलब्धि रूपं स्या दुच्यते ज्ञान चेतना
सा ज्ञान चेतना नूनमस्ति सम्यग्दृगात्मनः
न स्यान् मिथ्यादृशः क्वापि तदात्वे तद संभवात्

(पंचाध्यायी)

अर्थ—सम्यग्दर्शन गुण के प्रगट हो जाने पर जब ज्ञान गुण सम्यग्ज्ञान बन जाने से विशेष अवस्था में पहुंच जाता है तब आत्मा की उपलब्धि (स्वरूपावलोकन) होती है उसका नाम ज्ञान चेतना है। वह ज्ञान चेतना निश्चय से सम्यग्दृष्टि के होती है।

अस्ति चैकादशांगानां ज्ञानं मिथ्यादृशोपि यत्
नात्मोपलब्धि रस्त्यास्ति मिथ्या कर्मोदयात् परम्

(पंचाध्यायी)

अर्थ—यद्यपि मिथ्यादृष्टि के ग्यारह अंगों का ज्ञान हो जाता है तो भी उसके आत्मा की उपलब्धि नहीं होती है मिथ्या कर्म का उदय उसे नहीं होने देता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे के श्लोकों में यह स्पष्ट किया गया है कि सम्यग्दृष्टि के शुद्धात्मा की उपलब्धि भी होती है और कभी २ अशुद्ध रूप की उपलब्धि भी होती है। इसका अर्थ यह है कि वीतारागता में तो सदैव शुद्धोपलब्धि ही रहती है। किन्तु सम्यष्दृष्टि के शुद्धोपलब्धि और मिथ्यात्व कर्म के उदय होने पर अशुद्धोपलब्धि होती है।

सत्यं शुद्धास्ति सम्यकत्वे सैवा शुद्धस्ति तद्विना
असत्यबंध फला तत्र सैव बंध फलान्यथा
(पंचाध्यायी)

अर्थ—सम्यग्दर्शन के होजाने पर शुद्धोपलब्धि होती है और जहां मिथ्यादर्शन का उदय है वहां अशुद्ध है। शुद्ध उपलब्धि बंध फल नहीं देती है और मिथ्या उपलब्धि बंध फल देती है। अर्थात् सम्यग्-दृष्टि के भी बंध होता है। परन्तु वह बंध बंध नहीं हैं क्योंकि अनंत संसार वर्धक बध जो मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी से होता था वह उसके अब सम्यग्दर्शन होने पर नहीं होता है। सम्यग्दृष्टि के तो संसार का अन्त निकट है और मोक्ष प्राप्ति भी अति निकट है।

चौथे गुण स्थान में स्वानुभूति होती है। यह सम्यग्दर्शन के होने पर ही होती है। यह स्वानुभूति क्या है? यह आत्मानुभव है। इसी का खुलासा पढ़िये—

वैराग्यं परमोपेक्षा ज्ञानं स्वानुभवः स्वयम्
तद्द्वयं ज्ञानिनो लक्ष्म जीवन्मुक्तः स एव च श्लोक २३२
ततः स्वादु यथा व्यस्तं स्व मासादयति स्फुटम्
अविशिष्टमसंयुक्तं नियतं स्वमनन्यकम् श्लोक २३४
(पंचाध्यायी)

अर्थ—यह अविरत सम्यग्यदृष्टि का स्वरूप कथन है। अविरत सम्य-ग्दृष्टि को संसार से उपेक्षा-उदासीन रूप वैराग्य हो जाता है। तथा अपनी आत्मा का स्वयं अनुभव होता है। ये दोनों सम्य ज्ञानी के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्षण हैं वह सम्यग्दृष्टि जीवन्मुक्त वन जाता है वह अपनी आत्मा का प्रत्यक्ष स्वाद लेने लगता है वह अपने को अन्य शरीरादिक पदार्थों से रहित मानता है। उनसे संयुक्त अपने को नहीं मानता है किन्तु अपने को उन वाह्य पदार्थों से सर्वथा भिन्न चिन्मूर्ति मानता है। यह सब कथन अविरत सम्यग्दृष्टि का है पंचाध्यायी के ३७३ श्लोक से लेकर ४०० श्लोकों तक और आगे भी सब अविरत सम्यग्दृष्टि का ही कथन है।

इत्येवं ज्ञात तत्वो सौ सम्यग्दृष्टि निजात्मद्रक्
वैषयिके सुखे ज्ञाने रागद्वोषौ परिज्यजेत्

अर्थ—इस प्रकार पर तत्व और आत्म तत्व को समझने वाला अविरत सम्यग्दृष्टि अपने निज स्वरूप को देखता है अर्थात् स्वानुभव एवं स्वरूपावलोकन करता है। वह इंद्रिय सम्बन्धी विषयों के सुख और उसी संसारी सुख सम्बन्धी इस अनिष्ट रूप ज्ञान से होने वाले राग द्वेष को छोड़ देता है।

अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है पंचाध्यायी का स्वाध्याय मनन और चिंतन पूर्वक करने से अबिरत सम्यग्दृष्टिका स्वरूप और ज्ञान चेतना तथा स्वरूपाचरण चारित्र का खुलासा हो जाता है। चौथे गुण स्थान से लेकर ऊपर के गुण स्थानों में विशुद्धता बढ़ने से सर्वत्र दोनों का बिकाश बढ़ता जाता है और पूर्ण बीतरागता में यह ज्ञान चेतना और स्वरूपाचरण चारित्र परम उत्कृष्ट रूप में होते हैं। ये दोनों नीचे के गुण स्थानों में नहीं होते हैं ऐसा निषेध कहीं नहीं पाया जाता है इसलिये पंचाध्यायी के कथन में कोई विरोध नहीं है। किंतु सामान्य और विशेष कथन है।

स्वानुभव आत्मा का परम आस्तिक्य गुण है

स्वात्मानुभूति मात्रं स्या दास्तिको परमो गुण:
भवेत्मावा पर द्रव्ये ज्ञान मात्रं पर त्वत: श्लोक ४६३
(पंचाध्यायी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—आत्मा का स्वानुभव स्वरूपावलोकन होना आत्मा का परम आस्तिक्य गुण है। पर पदार्थ में तो ज्ञान मात्र ही होता है। नीचे के श्लोक में यह भी लिखा है—

सत्य माद्य द्वयं ज्ञानं परोक्षं पर संविद
प्रत्यक्ष स्वानुभूतौ तु दृङ्मोहोपशमादित: श्लोक ३६२
(पंचाध्यायी)

अर्थ—आदि के मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान दोनों ज्ञान पर पदार्थ के जानने में तो प्रत्यक्ष हैं किन्तु दर्शन मोहनीय कर्म और अनन्तानुबन्धी तथा सम्यङ् मिथ्यात्व कर्म के उपशम, क्षय, क्षयोपशम होने से अपनी आत्मा की स्वानुभूति-स्वानुभव-स्वस्वरूपावलोकन में दोनों ज्ञान प्रत्यक्ष हैं।

इन श्लोकों से यह बहुत खुलासा हो जाता है कि सम्यग्दृष्टि को ज्ञान चेतना होती है और स्वरूपाचरण चारित्र भी होता है। ज्ञान चेतना और स्वरूपाचरण दोनों सम्यग्दर्शन के अविना भावी हैं।

प्रमेय कमल मार्तण्ड आदि न्याय शास्त्रों में तथा वृहद्द्रव्य संग्रह में मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान को स्वसंवेदन में प्रत्यक्ष बताया गया है।

समयसार में कुंदकुंद स्वामी कहते हैं—

एवं सम्माइट्ठी अप्पाणं मुणदि जाणग सहावं
उदयं कम्म विवागंय मुअदि तच्चं वियाणंतो
(समयसार निर्जराधिकार गाथा २००)

अर्थ—इस प्रकार ऊपर कहे हुए गाथाओं के अनुसार सम्यग्दृष्टि ज्ञायक स्वभाव आत्मा को जानता है और तत्व-आत्म तत्व को जानता हुआ उदय को प्राप्त जो कर्म विपाक है उसे छोड़ता है।

इसकी संस्कृत टीका में आचार्य अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं—

"एवं सम्यग्दृष्टि: सामान्येन विशेषेण च पर स्वभावेभ्यो भावेभ्यो सर्वेभ्योपि विविच्य टंकोत्कीर्णैक ज्ञायक भावस्वभाव मात्मन स्तत्वं विजानाति तथा तत्वं विजानश्च स्व पर भावोपादानापोहन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निष्पाद्यं स्वस्य वस्तु त्वं प्रथयन कर्मोदय विपाक प्रभवान् भावान् सर्वानपि मुञ्चति ततोयं नियमात् ज्ञान वैराग्य सम्यन्नो भवति"।

(समयसार संस्कृत टीका)

अथात् यह सम्यग्दृष्टि सामान्य और विशेष रूप से समस्त पर भावों से भिन्न टंकोत्कीर्ण एक ज्ञायक स्वभाव जो आत्मा है उसे जानता है और अपने स्वरूप के ग्रहण और पर स्वरूप के छोड़ने रूप जो आत्मा का स्व स्वरूप है उसे प्रसिद्ध एवं प्रगट करता हुआ कर्मोदय से होने वाले समस्त भावों को त्याग देता है इसलिये यह सम्यग्दृष्टि नियम से ज्ञान वैराग्य से सम्पन्न हो जाता है।

सम्यग्दृष्टि का यह कितना महत्वपूर्ण स्वरूप बिवेचन है। इस बिवेचन से सम्यग्दृष्टि के ज्ञान चेतना और स्वरूपाचरण दोनों सिद्ध हो जाते हैं। और भी—

संवर अधिकार की गाथा १८७ में और भी स्पष्ट कथन सम्यग्दृष्टि के विषय में इस प्रकार है—

अप्पाण मप्पणा रुंधिऊण दो पुण्णपाव जो एसु
दंसण णाणम्मि ठिदो इच्छा विरुदोंय अणम्मि

इस गाथा में यह कहा गया है कि जो आत्मा पुण्य पाप में लगा हुआ है वह अपनी आत्मा के द्वारा अपनी आत्मा को पुण्य पाप के योगों से रोक कर सम्यक्दर्शन और सम्य ज्ञान में स्थित हो जाता है और अन्य आत्मा से भिन्न पदार्थों की इच्छा छोड़ देता है वहीं आत्मा शीघ्र ही कर्मों से मुक्त हो जाता है।

सम्यग्दृष्टि की ज्ञान चेतना का समर्थन समयसार में

समयसार के सर्व विशुद्ध ज्ञान अधिकार में गाथा ३१९ की संस्कृत टीका में आचार्य अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं—

ज्ञानी हि कर्म चेतना शून्यत्वेन कर्म फल चेतना शून्यत्वेन च स्वयमकर्तृत्वादवेदयित्वाच्च न कर्म करोति न वेदयते च, किन्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान चेतना मयत्वेन केवलं ज्ञातृत्वात् कर्म वन्धं कर्म फलञ्च शुभ मशुभंवा केवल मेव जानाति।

अर्थात् सम्य ज्ञानी आत्मा कर्म चेतना और कर्म फल चेतना से रहित है इसलिये वह कर्म चेतना का कर्त्ता और भोक्ता नहीं है किन्तु ज्ञान चेतना स्वरूप होने से उन कर्मफल चेतना और कर्म फल चेतना का ज्ञाता मात्र है।

इससे आगे गाथा में यह सिद्ध किया गया है कि वास्तव में कर्म चेतना और कर्म फल चेतना का कर्त्ता भोक्ता भी मिथ्यादृष्टि है। सम्यग्दृष्टि तो सम्य ज्ञानी होने से ज्ञान चेतना वाला बन गया है इसलिये वह कर्म बंध और कर्म फल में उलझा हुआ नहीं है।

इसी से आगे समयसार की गाथा ३८६ की संस्कृत टीका में आचार अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं—

'वर्तमानं कर्म विपाकं आत्मनोऽत्यन्त भेदेनोपलभमानः स्वस्मिन्नेव खलु ज्ञान स्वभावे निरन्तर चरणाच्चारित्रं भवति चारित्रं तु भवन् स्वस्यज्ञान मात्रस्य चेतनात् स्वयमेव ज्ञान चेतना भवतीतिभावः।

अर्थात् सम्यग्दृष्टि सम्य ज्ञानी वर्तमान कर्म विपाक को आत्मा से सर्वथा अत्यन्त भिन्न समझता हुआ अपने ज्ञान स्वभाव में ही निरन्तर आचरण करने से (स्वरूपावलोकन करने से) चारित्र कहलाता है। चारित्र बनता हुआ अपने ज्ञान मात्र का अनुभव करने से ज्ञान चेतना वाला बन जाता है।

अस्ति चात्मपरिच्छेदि ज्ञानं सम्यदृगात्मनः
स्वसंबेदन प्रत्यक्षं शुद्धं सिद्धपदोपमम्

(पंचाध्यायी ४८९ श्लोक)

अर्थ—सम्यदृष्टि का ज्ञान अपनी आत्मा का स्वसंबेदन प्रत्यक्ष करने वाला है वह शुद्ध है और सिद्ध पद की उपमा वाला है। और भी स्पष्ट कथन—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृङ् मोहेस्तं गते पुसः शुद्धस्यानुभवो भवेत्
न भवेद्विघ्न करः कश्चित् चारित्रा बरणोदयः
(पंचाध्यायी श्लोक ६८८)

अर्थ—दर्शन मोहनीय कर्म का उपशमादि होने पर सम्यग्दृष्टि पुरुष को अपनी आत्मा का शुद्ध रूप अनुभव होता है। उस शुद्धानुभव में चारित्र मोहनीय कर्म का उदय कुछ भी बिघ्न वाधा नहीं कर सक्ता है। और भी खुलासा—

स्वसंवेदन प्रत्यक्षं ज्ञानं स्वानुभव द्वयम्
वैराग्यं भेद विज्ञानभित्या द्यस्तीह किं बहु
(पंचाध्यायी श्लोक ६४१)

अर्थ—स्वानुभव रूप मति, श्रुत दोनों ज्ञान अपने आत्मा का प्रत्यक्ष करते हैं। उसका ही यह फल है कि सम्यग्दृष्टि की आत्मा में वैराग्य हो जाता हैऔर भेद विज्ञान होजाता है और अधिक क्या कहा जाय-

स्वरूपाचरण चारित्र सम्यग्दृष्टि के होता है इस वात का स्पष्ट कथन ऊपर के श्लोकों से भली भांति सिद्ध हो जाता है। वैराग्य और भेद विज्ञान सम्यग्दृष्टि के हो जाता है यही वात भगवान कुंदकुंद स्वामी और आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने कही है।

भगवत्कुंदकुंद स्वामी कहते हैं—

सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेहिसो साहू
सम्मतपरिणदो उण खवेइदुट्ठकम्माणं
(मोक्ष पाहुड गाथा १४)

अर्थ—जो सम्यदृष्टि साधु अपने आत्म द्रव्य में रत है वह सम्यक्त्व परिणाम साधु दुष्ठ अष्ट कर्मों का क्षय करता है।

यह कथन मुनि पदधारी सम्यग्दृष्टि का है उसको स्वात्मरत अर्थात् अपने निजात्म स्वरूप में लगा हुआ बताया गया है। अभी वह दुष्ट कर्मों का क्षय नहीं कर सका है आगे करेगा इसलिये वह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीतरागी नहीं है फिर भी उसे स्वरूपाचरण वाला बताया गया है इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वरूपाचरण चारित्र पूर्ण बीतराग अवस्था में ही होता हो। नीचे के गुण स्थानों में नहीं होता है। इसका निराकरण (खण्डन) इस गाथा से भली भांति हो जाता है। अतः स्वरूपाचरण चौथे गुण स्थान से लेकर चारित्र की क्रम २ से वृद्धि में सर्वत्र होता है। और पूर्ण बीतरागता में आत्मा अपने स्वरूप में पूर्ण रूप से रत एवं तन्मय हो जाता है।

निष्कर्ष—फलितार्थ

चतुर्थ गुण स्थान में निश्चय सम्यग्दर्शन, और स्वरूपाचरण चारित्रहोता है इस सम्बन्ध में समयसार आदि शास्त्रों में जितना भी निश्चय सम्यग्दृष्टि का स्वरूप बताया गया है उससे उसके स्वरूपाचरण चारित्र की सिद्धि होती है। इसलिये इस प्रकरण को हम समाप्त करते हैं। पूज्य त्यागी और आगम श्रद्धालु विद्वान इस प्रकरण का मनन करें और मत भेद को दूर करें। यदि पूर्वाचार्य रचित किसी शास्त्राधार से स्पष्ट रूप से मत भेद प्रतीत होता हो तो उसे प्रगट करें। आचार्य बचन ही आगम बादियों के लिये प्रमाण और हितकारी हैं।

सम्यग्दृष्टि के शुद्धोपयोग भी होता है

वृहद्द्रव्य संग्रह ग्रन्थ में पृष्ठ १७३ निर्विचिकित्सा अंग के स्वरूप निरूपण में इस प्रकार लिखा है—

"निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहार निर्विचिकित्सा गुणस्य वलेन समस्त द्वेषादि विकल्प रूपकल्लोल माला त्यागेन निर्मलात्मानु भूति-लक्षणे निज शुद्धात्मनि व्यवस्थानं निर्विचिकित्सा गुणः"।

अर्थ—और निश्चय से तो इसी व्यवहार निर्विचिकित्सा गुण के बल से जो समस्त रागद्वेष (दर्शन मोहनीय सम्बन्धी) आदि बिकल्प रूप तरंगों का त्याग कर के निर्मल आत्मानुभव लक्षण निज शुद्ध आत्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में स्थिति करना निर्विचिकित्सा गुल है"।

(हिन्दी टीका वृहद्द्रव्य संग्रह)

इसी वृहद्द्रव्य संग्रह के पृष्ठ १७७ में प्रभावना अंग लक्षण में संस्कृत टीका यह लिखा है—

"निश्चयेन पुनस्तस्यैव व्यवहार प्रभावना गुणस्यवलेन मिथ्यात्व विषय कषाय प्रभृति समस्त विभाव परिणाम रूप पर समयानां प्रभावं हत्वा शुद्धोपयोग लक्षण स्वसंबेदन ज्ञानेन बिशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभाव निज शुद्धात्मनः प्रकाशन मनुभवनमेव प्रभावनेति"।

अर्थ—"और निश्चय से इसी व्यवहार प्रभावना गुण के बल से मिथ्यात्व विषय कषाय आदि सम्पूर्ण विभाव परिणाम रूप पर मतों के (विभाव-पर भाव) प्रभाव को नष्ट कर के शुद्धोप योग लक्षण स्वसंबेदन ज्ञान से निर्मल ज्ञान दर्शन रूप स्वभाव के धारक निज शुद्ध आत्मा का जो प्रकाशन, अनुभवन करना प्रभावना हैं"।

(वृहद्द्रव्य संग्रह हिन्दी टीका)

इस उपर्युक्त कथन से दो बातें सिद्ध होती हैं। एक तो यह है कि चतुर्थ गुणबर्ती सम्यग्दृष्टि के उपयोग को भी शुद्धोपयोग कहां गया है। और उस शुद्धोपयोग द्वारा स्वरूपावलोकन रूप स्वरूपाचरण भी बताया गया है। यह सब कथन सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुण स्थानवर्ती का है। क्योंकि संस्कृत में स्पष्ट लिखा हैं कि—

"मिथ्यात्व बिषय कषाय" इसमें चारित्र मोहनीय का उल्लेख नहीं है। आगे इसी पंक्ति में यह भी लिखा है कि— "बिशुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव" यहां चारित्र का उल्लेख भी नहीं है। और यह प्रकरण भी अबिरत सम्यग्दृष्टि का है।

रत्न करंड श्रावका चार में भी आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने "सम्यग्दर्शन शुद्धाः" इस वाक्य से सम्यग्दर्शन धारक को शुद्ध बताया है। इसी श्लोक की हिन्दी टीका में पं० सदासुख जी ने लिखा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"जिन के शुद्ध सम्यग्दर्शन है किन्तु अव्रती है वे भी नरक गति और तिर्यं च गति में नहीं जाते हैं"।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने अविरत सम्यग्दृष्टि का ही ऊपर के श्लोक में वर्णन किया है। उन्होंने सम्य ज्ञान और सम्यक् चारित्र का वर्णन आगे किया है इसी बात को पं० सदासुख जी ने लिखा है। इस सब कथन से यह सिद्ध है कि चतुर्थ गुण स्थान में अविरत सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र और शुद्धोपयोग भी होता है। यहां पर यह विचार है कि दर्शन मोहनीय के अभाव में शुद्ध सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया, ज्ञान भी सम्यज्ञान हो गया। आत्मावलोकन में सम्य ज्ञान का उपयोग भी शुद्ध है। अतः शुद्धोपयोग चौथे में है। परन्तु सदैव स्थायी नहीं है शुभोपयोग भी है इसलिये संयम से होने वाला शुद्धोपयोग वहां नहीं है।

बिशेष खुलासा यह है कि शास्त्रों में शुद्धोपयोग शुल्क ध्यान में (आठवें गुण स्थान से) बताया गया है इस कथन में किसी को कोई शंका या विरोध नहीं है परन्तु नीचे के गुण स्थानों में दशवें से चौथे गुण स्थानों में भी शुद्ध सम्यग्दर्शन और शुद्धोपयोग पाया जाता है ऐसा भी शास्त्रों का कथन है। इन दोनौं कथनौं पर कोई २ विद्वान बिरोध प्रगट करते हुए यह कहते हैं कि शुद्धोपयोग तो आठवें से ही होता है। उनके दृष्टिकोण से उनका कहना भी ठीक है किंतु नीचे के गुण स्थानों में शुद्धोपयोग और शुभोप योग भी होता है। शुभोपयोग तो चौथे से दशवें तक अवश्य होता है पर शुद्धोपयोग कमी २ होता है। शुद्धोपयोग चारित्र मोहनीय के क्षयोपशम उपशमादि की अपेक्षा से तो होता ही है, और दर्शन मोहनीय के अभाव में भी होता है जेंसा कि वृहद्द्रव्य संग्रह के उद्धरणों से सिद्ध है। दूसरी बात यह भी है कि आठवें से जो शुद्धोपयोग होता है। नीचे शुभोपयोग और आंशिक शुद्धोपयोग भी होता है। अथवा आठवे गुण स्थान से तो शुद्धोपयोग का उत्कृष्ट कोटिका कथन है जो पूर्ण बीतरागता में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्ण होता है। नीचे के गुण स्थानों में जैसे २ चारित्र मोहनीय का अभाव होता है बैसे २ शुद्धोपयोग होता है। चौथे में दर्शन मोहनीय के अभाव में जघन्य एवं आंशिक शुद्धोपयोग तथा मुख्य रूप से शुभोपयोग होता है। परन्तु शास्त्रों के कथन में बिरोध नहीं है किन्तु अपेक्षा अथवा बिवक्षा दृष्टि के भेद से भेद है। शास्त्रों के मनन से हमने शास्त्राधार से ऐसा अभिमत प्रगट किया है। विशेषज्ञ विद्वान् इस कथन पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार कर दोनों प्रकार के कथनों पर समन्वय अपेक्षा दृष्टि से करें। शास्त्रों के कथन बहुत सूक्ष्म, बहुत गंभीर और रहस्य पूर्ण है। और वे हम सरीखे स्वल्प ज्ञानियों के अत्यन्त परोक्ष हैं। इसलिये अपने दृष्टिकोण से शास्त्रों में विरोध अथवा किसी को आर्ष और किसी को अनार्ष कहने का हमें अधिकार नहीं है। क्योंकि हम स्वल्पज्ञानी हैं।

दशवें गुण तकस्थान तथा शुभोपयोग ही ऐसा नियम नही है

कोई विद्वान धवल शास्त्र का प्रमाण देकर यह कहते हैं कि दशवें गुण स्थान तक कषाय का उदय रहता है अतः वहां तक शुभोपयोग ही रहता है शुद्धोप योग तो ग्यारहवें से प्रारम्भ होता है? परन्तु ऐसा नियम नहीं है। शुभोपयोग की मर्यादा दशवें गुण स्थान तक है यह ठीक है किन्तु वहां तक शुभोपयोग ही हो ऐसा समझना शास्त्र सम्मत नहीं है। क्योंकि, आठवें गुण स्थान से जहां क्षपक श्रेणी का प्रारम्भ होता है वहां शुल्क ध्यान का भी प्रारम्भ हो जाता है। तब वहाँ शुद्धोप योग नहीं हो यह कैसे माना जा सक्ता है? अतः नीचे के गुण स्थानों में शुभोपयोग और शुद्धोपयोग दोनों ही मानना शास्त्र सम्मत है।

सिद्धाँत मर्मज्ञ पूज्य त्यागियों एवं अनुभवी विद्वानों का अभिमत

स्वरूपाचरण चारित्र चतुर्थ गुण स्थान वर्ती निश्चय सम्यग्दृष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के जघन्य रूप से होता है इस विषय में सिद्धान्त मर्मज्ञ पूज्य त्यागियों और अनुभवी विशिष्ट विद्वानों का अभिमत नीचे लिखे अनुसार है—

(१) परम पूज्य आचार्य सुधर्मसागर जी महाराज ने चारित्र चूड़ामणि आचार्य शान्ति सागर संघस्थ सभी मुनिराजों को संस्कृत का अध्ययन करा कर उन्हें विद्वान बनाया तथा धर्म ध्यान प्रदीप सुधर्म श्रावकाचार आदि संस्कृत ग्रन्थों की रचना की है। उन्होंने सुधर्म श्रावकाचार शास्त्र में सम्यग्दर्शन के स्वरूप निरूपण में कई श्लोक लिखे हैं उनमें आत्मानुभूति का वर्णन है जैसे—

शुद्ध ज्ञायकचिद्भावो स्व के येनानुभूयते
सम्यक्त्वं तन्मतं शुद्धं स्व स्वरूपानु लोकनम् (श्लोक ५६)

इस ग्रन्थ की टीका धर्मरत्न सरस्वती दिवाकर श्री पं० लालाराम जी शास्त्री ने की है। ऊपर के श्लोक का अर्थ उन्होंने यह लिखा है—

"जिस आत्म गुण के द्वारा अपने ही आत्मा में शुद्ध ज्ञायक स्वरूप चैतन्य मय परिणामों का अनुभव होता है उसको शुद्ध सम्यग्दर्शन कहते हैं। अथवा अपने आत्म स्वरूप का अवलोकन करना भी शुद्ध सम्यग्दर्शन कहलाता है" स्पष्ट कथन है। इसी का नाम जघन्य रूप में स्वरूपाचरण है।

(२) धर्म रत्न सरस्वती दिवाकर श्री पं० लालाराम जी शास्त्री ने करीब ८०/६० संस्कृत शास्त्रों की टीकायें बनाई हैं। उन्होंने उन टीकाओं में निश्चय सम्यग्दृष्टि के आंशिक रूप से स्वरूपाचरण का उल्लेख किया है।

(३) श्री पं० जयचन्द जी जयपुर वालों ने सर्वार्थ सिद्धि अष्ठ पाहुड़ आदि शास्त्रों की टीकायें बनाई हैं। वे आज से १२५ वर्ष पहले हुए हैं। उनकी प्रशस्ति में उन्हें श्री पं० टोडरमल जी के समकक्ष लिखा है। उन्होंने अष्ट पाहुड़ शास्त्र की अपनी टीका में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पष्ट लिखा है—

"जो वाह्य लिंग संयुक्त हैं अरअभ्यन्तर कहिये भाव लिंग रहित हैं सो स्वरूपाचरण चारित्र से भ्रष्ट भया मोक्ष मार्ग का नाश करने वाला है"।

(अष्ट पाहुड़ (मोक्ष पाहुड़) गाथा ६१)

दर्शन पाहुड़ के छठे पृष्ठ में उन्होने लिखा है—

"तहां अन्तरंग सम्यग्दर्शन है सो तो जोव का भाव है और निश्चयकरि उपाधि से रहित शुद्ध जीव का साक्षात् अनुभव होता है" यही तो स्वरूपाचरण है।

(४) श्री पं० सदासुख जी जयपुर वालों ने रत्न करंड श्रवि-काचार की बिस्तृत हिन्दी टीका लिखी है उन्होंने रत्न करंड श्राव-काचार के इकतालीसवें श्लोक की टीका में वाक्य लिखे हैं—

"ऐसे दर्शन मोहनीय के अभाव में सत्यार्थ श्रद्धान, सत्यार्थज्ञान, प्रगट होय है। अर अनन्तानुवन्धी के अभाव में स्वरूपाचरण चारित्र सम्यग्दृष्टि के प्रगट होय है। यद्यपि अप्रत्याख्यान के उदय तें देश चारित्र नाहीं भया है अर प्रत्याख्यानावरण के उदय तें सकलचारित्र नाहीं प्रगट भया है तो हू सम्यग्दृष्टि के देहादिक पर द्रव्य तथा राग द्वेष आदिक कर्म जनित पर भाव इनमें दृढ़ भेद विज्ञान ऐसा भया है" आदि।

(रत्न करंड श्रावकाचार हिन्दी टीका पृष्ठ ६४)

अविरत सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण चारित्र का सम्दाव प्राचीन विद्वान श्री पं० सदासुख जी ने कितना स्पष्ट लिखा है—

(५) स्व. पं. गोपालदासजी बरैया जिन्होंने अनेक सिद्धांत ग्रन्थों का मनन अनुभव एवं अध्यापन किया है स्वरूपाचरण चारित्र चतुर्थ गुण स्थान में वताते हैं उन्होंने जैन सिद्धांत प्रवेशिका-सिद्धात का लक्षण ग्रन्थ बनाया है उसमें उन्होंने चारित्र के चार भेद लिखे हैं-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूपाचरण चारित्र का चौथे गुण स्थान से प्रारम्भ बताया है। देश चारित्र पांचवें में सकल चारित्र छठे से दशवें तक और यथाख्यात ग्यारहवें से बताया है।

ऊपर के महान् विद्वानों के समय में स्वरूपाचरण का कोई बिवाद भी नहीं था। परन्तु शस्त्रों के मनन से उन्होंने लिखा है।

(६) श्री पं० ब्र. सुरेन्द्रनाथजी ईसरी वालों ने चौथे गुण स्थान में सहेतक स्वरूपाचरण बताया है। ये अर्हनिश स्वाध्यायशील विद्वान् हैं।

(७) श्री पं. ब्र. हुकमचन्दजी हस्तिनापुर वालों ने भी स्वरूपाचरण चौथे गुण स्थान में सम्यग्दर्शन का अविनाभावी बताया है। ये भी अर्हनिश स्वाध्यायशील विद्वान् हैं।

(८) परम पूज्य आचार्य महावीर कीर्ति जी ने सम्यक्त्वाचरण का उल्लेख करते हुए सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण बताया है।

(९) परम पूज्य आचार्य देश भूषण महाराज ने स्वरूपाचरण का जघन्य रूप चौथे गुण स्थान में बताया है। परम पूज्य आचार्य विमलसागर जी भी सम्यग्दर्शन का अविनाभावी स्वरूपाचरण बताते हैं।

(१०) परम पूज्य आचार्य नेमीसागर जी वोरीवली चौथे गुण स्थान में स्वरूपाचरण बताते हैं।

(११) श्री पं० प्रवर टोडरमल जी ने लिखा है—

"समयसार विखे एकत्वे नियमतस्य इत्यादि कलशा लिखा है तिस विखें ऐसा कहा है कि जो इस आत्मा का पर द्रव्य ते भिन्न अवलोकन सो ही नियम ते सम्यग्दर्शन है"।

(मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ट ४६०)

यहां आत्मा के अवलोकन का अर्थ स्वरूपावलोकन अथवा स्वरूपाचरण ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२) श्री मत्पंडित प्रवर टोडरमल जी जयपुर ने गोमट्टसार, लब्धिकार, क्षपणासार आदि सिद्धांत ग्रन्थों की टीकाएें बनाई है उन की विद्वता एवं शास्त्रीय मनन बहुत अच्छा और ऊंचा था इस बात को भी विद्वान् मानते है। वे भी स्वरूपाचरण चारित्र को चतुर्थ गुण स्थान में मानते थे। उन्होने मोक्ष मार्ग प्रकाशक के चौथे अधिकार में मिथ्यादर्शन, निथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का (जैन ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई द्वारा प्रकाशित में) पृष्ठ १०५ से लेकर पृष्ठ १२६ तक लिखा है। मिथ्या चारित्र का बर्णन करते पृष्ठ १२९ में लिखा है।

"वहुरि इन राग द्वेषनि ही के विशेष क्रोधमान माया लोभ हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्री वेद, पुरुष वेद नपुंसक बेद रूप कषाय भाव हैं ते सर्व इस मिथ्या चारित्र के भेद जानने। इनका वर्णन पूर्व किया ही है बहुरि इस मिथ्या चारित्र विखें 'स्वरूपाचरण रूप' चारित्र का अभाव है तातें याका नाम चारित्र भी कहिये। बहुरि यहां परिणाम मिटै नाहीं अथवा बिरक्त नाहीं तातें याही का नाम असंयम कहिये है वा अविरत कहिये है"।

(मोक्ष मार्ग प्रकाशक पृष्ट १२९)

यह मिथ्या चारित्र का वर्णन तीसरे गुण स्थान तक का है इसीलिये अचारित्र अथवा असंयम अथवा अबिरत ऐसा नाम उन्होंने लिखा है। इससे स्पष्ट है कि श्री पं० टोडरमल जी चौथे गुण स्थान में सम्यक चारित्र और स्वरूपाचरण चारित्र बताते हैं।

(१३) स्वरूपाचरण के सम्बन्ध में आचार्य शांतिसागर जी का अभिमत—

चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य आचार्य शांतिसागर जी महाराज का जीवन चरित्र श्री पं० सुमेरचन्द जी दिवाकर न्यायतीर्थ शास्त्री ने लिखा है उसमें एक स्थल पर उनके ये वाक्य है—

"आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने कहा कि सम्यक्त्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और चारित्र का घनिष्ठ सम्बन्ध है"। तब एक ही की प्रशंसा क्यों की जाती है सम्यक्त्व के अभाव में भी 'सासादन गुण स्थान वर्ती जीव नरक गति में क्यों नहीं जाता इसका कारण यह यह है कि उसके पास कुछ चारिश है। चारित्र चक्रवर्ती ग्रन्थ के लेखक श्री पं० सुमेर-चन्द जी दिवाकर ने उसी ग्रन्थ में यह लिखा है कि—

"यहां आचार्य श्री की दृष्टि यह है कि सम्यक्त्व के होने पर अनन्तानुबन्धी नामक चारित्र मोहनीय के अभाव में स्वरूपाचरण चारित्र होता है। अतः चारित्र सम्यक्त्व का साथी है"।

(चारित्र चक्रवर्ती)

वर्तमान मुनि सृष्टि के दीक्षा गुरु आचार्य शिरो मणि, आचार्य शांतिसागर जी, महाराज धवल आदि सिद्धांत शास्त्रों के पूर्ण अनुभवी थे वे भी चौथे गुण स्थानबर्ती सम्यग्दृष्टि के सम्यक् चारित्र और स्व-रूपाचरण मानते थे जिसका समर्थन श्री दिवाकर जी ने किया है।

(१४) परम पूज्य मुनिराज समन्तभद्र महाराज सम्यक्त्वाचरण का उल्लेख करते हुए उसी का अपर नाम स्वरूपाचरण बताते हैं।

(१५) परम पूज्य मुनिराज वृषभसागर जी महाराज (आचार्य शिवसागर जी संघस्थ) अविरत सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण का सम्दाव अविना भावी एवं ज्ञान चेतना भी बताते हैं।

(१६) परम पूज्य मुनिराज निर्वाण सागर जी चौथे गुण स्थान में स्वरूपाचरण आंशिक रूप में बताते हैं।

(१७) श्री ब्र. पं० विहारीलाल जी शास्त्री (आचार्य महावीर कीर्ति महाराज संघस्थ) भी चतुर्थ गुण स्थान में स्वरूपाचरण का होना आवश्यं भावी बताते हैं।

(१८) न्यायाचार्य श्री पं० माणिकचन्द्र जी चौथे गुण स्थान में स्वरूपाचरण का सम्दाव सम्यग्दर्शन के साथ आवश्यक बताते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूपाचरण पर पूज्य क्षुल्लक श्री सूरिसिंह का ग्रन्थ

पूज्य श्री क्षुल्लक स्व० सूरिसिंह जी पहले छात्रावस्था में मोरेना महाविद्यालय में पढ़े थे। उन्होंने शास्त्री न्याय तीर्थ तक बिद्वत्तापूर्ण अध्ययन और उत्तम अनुभव प्राप्त किया था। उन्हें पढ़ाते हुए हमको उनकी गहरी गवेषणा से बहुत प्रसन्नता होती थी। वे दक्षिण प्रांत के निवासी थे। पढ़ने के बाद उन्होंने दक्षिण में जाकर वाल ब्रह्मचारी अवस्था में क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण करली, फलटण की विद्वन्मण्डली ने आपको सिद्धांत रत्नाकर पद से बिभूषित किया था। पूज्य श्री क्षुल्लक सूरिसिंह जी ने आज से ३४ वर्ष पहले एक 'सम्यक्त्वादर्श' नामक संस्कृत ग्रन्थ की रचना की है। उस ग्रन्थ में लिखा है—

सा चातिशय सम्पन्ना श्रुति माहात्म्य भावना
तथा स्वरूपताचार भवेद्भव बिनाशकम् पृष्ठ ४५
सोंह मित्यात्त संस्कारो बिशुद्धात्मानु भूतिकः
सर्व द्वन्द्वविनिर्मुक्तः स्वात्म भावोहि सौख्यदः पृष्ठ ३६
(सम्यक्त्वादर्श)

अर्थ—मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धि कषाय के शांत हो जाने से (इसके पूर्व के श्लोक द्वारा कथित) आत्मा में श्रुत ज्ञान जनित माहात्म्य भावना अतिशय रूप धारण करती हुई स्वरूपाचरंण चारित्र को प्रगट कर देती है। जो संसार को नष्ट कर देती है। उस आत्मा में सोहं, ऐसा संस्कार उत्पन्न हो जाता है वह विशुद्ध आत्मानुभूति रूप संस्कार सर्व द्वन्द्व-विकल्पों से रहित एवं आत्मीय सुख देने वाला स्वत्मानुभव रूप है। और भी—

सम्यक्त्वस्य स्वरूपं च विशुद्धात्मानु भूतिकम्
सम्यक्त्वे स्वानुभूतौ हि सम व्याप्ति प्रजायते पृष्ठ ४०
(सम्यक्त्वादर्श)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—विशुद्ध आत्मानुभवरूप सम्यग्दर्शन का स्वरूप और सम्यग्दर्शन के साथ होने वाली स्वानुभूति इन दोनों की सम व्याप्ति है।

समव्याप्ति का यह अर्थ है कि सम्यग्दर्शन और स्वरूपाचरण ये दोनों अविनाभावी हैं। अर्थात् सम्यग्दर्शन के साथ स्वरूपाचरण चारित्र भी नियम से साथ ही होता है।

सम्यक्त्व, ज्ञान चेतना, स्वरूपाचरण तीनों एक समय में

सम्यक्त्वं स्वानुभूतिश्च समता ज्ञान चेतना
स्वरूपाचरणं चेति सह काले भवन्ति वै पृष्ठ १७६
(सम्यक्त्वादर्श)

अर्थः— जिस समय आत्मा में सम्यग्दर्शन प्रकट होता है उसी समय स्वानुभूति ज्ञान चेतना और स्वरूपाचरण ये तीनों निश्चय से एक काल में ही होते हैं। ग्रन्थाकार ने "वै" पद दिया है इसका स्पष्ट यही है कि सम्यग्दर्शन के प्रगट होते ही उसी समय ज्ञान चेतना और स्वरूपाचरण साथ ही नियम से प्रगट हो जाते हैं उस समय सम्यग्दृष्टि समताभाव (प्रशम संवेगादि) को धारण कर लेता है।

जिन्होंने क्षुल्लक पद में रहते हुए जीवन भर सिद्धान्त ग्रन्थों का मनन एवं चिंतन किया है और कई संस्कृत ग्रन्थों की रचना की है वे स्वरूपाचरण और ज्ञान चेतना का सद्भाव चतुर्थ गुण स्थान में बहुत स्पष्ट रूप से लिख रहे हैं।

इन उपर्युक्त विद्वानों एवं पूज्य त्यागियों का अभिमत उनके रचे हुए शास्त्रों से, उनसे समक्ष में हुई चर्चा से, और पत्राचार से प्राप्त हुआ है।

निश्चय सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा का स्वयं संवेदन करता है हम लोगों को तो वह शास्त्रानुसार बिचारमात्र का विषय है। जैसे घी चखने वाले से कोई पूछता है कि घी का स्वाद कैसा है। चखने वाला उत्तर देता है कि घी मीठा है। पूछने वाला कहता है कि घी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पेड़ा सरीखा मीठा है। चखने वाला कहता है नहीं। फिर प्रश्न होता है क्या गुड़ या दाख जैसा मीठा है। उत्तर नहीं। तो फिर कैसा मीठा है ? इस प्रश्न के उत्तर में यह कहा जाता है कि चखकर देखलो तभी घी के मीठेपन का परिचय एवं स्वाद मालूम हो जायगा।

ठीक यही बात सम्यग्दृष्टि के स्वरूपाचरण की है यह विवाद का विषय नहीं है किन्तु जो शास्त्र सम्मत है उसे मानना चाहिये। निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर स्वरूपावलोकन स्वयं अनुभव का विषय है। फिर अन्तिम बात यह है कि जिनको जैसा जचे वैसा वे मानें। परन्तु सिद्धान्त एवं आगम का अनुशरण एवं आदेश ही सबों के लिये हितकारी है।

जैन दर्शनाचार्य- श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक

विरचित इस ग्रन्थ का ज्ञान चेतना शुद्धोपयोग तथा परमपूज्य आचार्यों, मुनिराजों एवं विद्वानों द्वारा समर्थित स्वरूपाचरण चारित्र का निरूपक

पंचम अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ छठवां अध्याय

श्रावक धर्म, मुनि धर्म, स्त्रियों द्वारा अभिषेक विधान, पूजन प्रकरण, प्रतिष्ठा प्रकरण तथा यज्ञोपवीत और आध्यात्म विषय निरूपण

सबसे जघन्य श्रेणी का जो श्रावक है वह पाक्षिक श्रावक होतां है उसके लिए अष्टमूल गुणों का धारण करना आवश्यक है यह तो ऊपर लिखा जाचुका है। साथ ही उसका कर्तव्य धर्म यह बताया गया है कि—

देव पूजा गुरु पास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः
दानञ्चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने

अर्थः— गृहस्थ श्रावक का कर्तव्य धर्म यह है कि वह प्रति दिन जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता रहे। मुनियों की उपासना अर्थात् मुनियों की पूजा भी करता रहे। स्वाध्याय करता रहे। यथा शक्ति संयम का पालन करता रहे, यथा शक्ति तप भी करता रहे और मुनि जन आदि पात्रों को दान देता रहे। ये सब कर्तव्य गृहस्थ श्रावक को प्रतिदिन करना आवश्यक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन छह कर्तव्यों का खुलासा यह है कि देव पूजा का आशय शास्त्रानुसार यह है कि श्रावक अपने घर से शुद्ध अष्ट द्रव्य लेजाकर भगवान की पूजा करे। जो केवल भगवान के दर्शन ही करता है उसे भी कम से कम एक द्रव्य– चाहे अक्षत चाहे फल, कोई भी द्रव्य भगवान के चरणों में चढ़ाकर ही भगवान के दर्शन करना चाहिये। खाली-रीते हाथों से दर्शन करने का निषेध है। जब एक राजा के सामने रुपया या मोहर (गिन्नी) आदि भेंट कर उससे मिलते हैं तब तीन लोक के स्वामी भगवान के दर्शन अष्ट द्रव्य में से कोई द्रव्य चढ़ाकर ही करना चाहिये। यही उनकी विनय और भक्ति है। पूजा के पहिले भगबान का अभिषेक करना चाहिये। यदि अभिषेक पहले हो चुका है तो भी दुबारा अभिषेक अन्य व्यक्ति कर सकता है वह सामुदायिक नहीं है किन्तु व्यक्तिगत है। अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। एक बार या दो वार का भी नियम नहीं है। जब भी जो पूजन करे अभिषेक कर सकता है। अभिषेक पूर्वक पूजन का बहुत अधिक पुण्य फल है। अभिषेक के बिना पूजन का भी पुण्य फल है। और पूजन के बिना केवल दर्शन का भी पुण्य फल है। किन्तु अभिषेक पूर्वक अष्ट द्रव्य से पूजन का अधिक फल है।

नग्न दिगम्बर साधुओं की पूजा भी अष्ट द्रव्य से प्रति दिन करना चाहिये। जहां मुनि महाराज नहीं हैं वहां उनकी परोक्ष पूजा की जाती है। जहां उनका विहार हो रहा हो वहां जाकर उनकी पूजा करना चाहिये और उत्तम पात्र दान देकर उत्तम पुण्य फल प्राप्त करना चाहिये।

चारों अनुयोगी शास्त्रों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये। उनमें गृहस्थ के लिए प्रथमानुयोग और और चरणानुयोग के शास्त्रों का स्वाध्याय अधिक उपयोगी है। प्रथमानुयोगी शास्त्रों में मोक्ष प्राप्त और मोक्षगामी पुरुषों के जीवन चरित्र हैं उन्हें पढ़ने से और सुनने से आत्मा पर हितकारक एवं धर्म धारण करने की उत्कट भावना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्पन्न हो जाती है। चरणानुयोगी शास्त्रों के स्वाध्याय से यह ज्ञान हो जाता है कि गृहस्थ को प्रारम्भ से कौन कौन क्रिया पालन करना चाहिये, कौन२ व्रत पालन करना चाहिये। गृहस्थ धर्म का आचार कहां तक है आदि बातें चरणानुयोग से विदित होती है। करणानुयोगी शास्त्रों से लोक अलोक का स्वरूप, लोक रचना का विस्तार, असंख्यात द्वीप समुद्र आदि का परिज्ञान होता है। अमरीका, अफ्रीका, जापान, रूस, इंग्लैण्ड, फ्रांस जर्मन आदि सभी विदेश भरत क्षेत्र के आर्य खंड में ही हैं। द्रव्यानुयोगी शास्त्रों से द्रव्य गुण पर्याय, षट द्रव्य, उनका धर्म, आत्मा का स्वरूप आदि का बोध होता हैं। सर्वज्ञ प्रतिपादित एवं गणधर श्रुत केवली आचार्य प्रत्याचार्यों द्वारा रचित शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिये। उन प्राकृत संस्कृत शास्त्रों की जो हिंदी मराठी, गुजराती भाषा में बनाई हुई टीकायें यदि मूल ग्रन्थ के पूर्ण रूप से अनुकूल हैं वे भी आर्ष हैं। क्योंकि वीतराग महर्षियों के बचनों के अनुकूल हैं। इसीलिये वे प्रमाण हैं। किन्तु जो टीकाये शास्त्रों के प्रतिकूल हैं टीकाकार ने अपने स्वतन्त्र बिचार टीका में भर दिये हैं वे टीकायें आर्ष नहीं हैं और प्रमाण नहीं हैं।

आज कल दैनिक समाचार पत्र प्रातःकाल घर घर में लिये जाते हैं उनको प्रदिदिन लोग पढ़ते हैं। उन पत्रों से देश विदेश के समाचार, घटनायें, व्यापारिक एवं औद्योगिक बातों का परिचय मिलता है परन्तु उनसे आत्मा के हित की कोई बात नहीं मिलती है अतः समाचार पत्रों का पढ़ना स्वाध्याय नहीं है। आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ही स्वाध्याय है।

गृहस्थ का यह भी कर्तव्य धर्म है कि वह हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पापों का एक देश त्याग करें, इन्द्रिय विषयों में आसक्त न होकर उनसे बिरक्त होने का प्रयत्न करें। जीवों के रक्षण में, सदैव सावधान रहे। अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करे। इसी प्रकार एकाशन, उपवास रसों का त्याग, ब्रह्मचर्य पालन, जपन, सामायिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि तप का पालन भी यथाशक्ति करें। यह सब गृहस्थ का कर्तव्य धर्म है।

नेष्ठिक श्रावक एक देश संयमी कहा जाता है। वह पहली प्रतिमा से लेकर दशमीं प्रतिमा तक क्रम से प्रतिमाओं में नियत व्रतों का अनिवार्य पालन करता है। आगे की प्रतिमा धारण करने वाले को उसके पहले की सभी प्रतिमाओं का पालन करना परमावश्यक है दशमी प्रतिमा तक श्रावक घर में रह सकता है परन्तु वह गृह कार्य व्यापारादिक तथा विवाह आदि कार्यों में अपनी सम्मति नहीं देता है। वह वानप्रस्थ (गृह कार्यों से विरक्त केवल धर्म साधन में अनुरक्त) अवस्था वाला बन जाता है। उससे आगे ग्यारहवीं प्रतिमा में वह श्रावकोत्तम कहलाता है। उस समय वह घर से निकल कर मुनियों के चरण सान्निध्य में क्षुल्लक पद अथवा ऐलक पद की दीक्षा लेता है। फिर वह घर से सर्वथा सम्बन्ध हटाकर मुनियों के पास ही रहता है और वह मुनि का लघुनन्दन त्यागी बन जाता है।

क्षुल्लक पद में एक लंगोटी तथा एक खण्ड वस्त्र रखने का विधान है। और अपने शिर के केश (बाल) छुरा कैंची से बनवा सकता है। अभ्यास के लिए एकान्त में केश लुंचन कर सकता है। और बैठ कर एक छोटे पात्र में दाता के घर पर भोजन करता है। क्षुल्लक के लिए भी अर्घ्य देने का विधान हैं।

ऐलक का पद उससे बड़ा है। वह केवल लंगोटी रखता है। बैठकर या खड़े होकर हाथ में दिया हुआ ही आहार लेता है। हाथों से केश लुंचन करता है। मुनि के समान उसका पाद प्रक्षालन अर्घ्य दान होता है।

यही चर्या स्त्री की है। वह क्षुल्लिका और आर्यिका बन जाती है। आर्यिका पद ऐलक से भी ऊंचा है। यद्यपि ऐलक एक लंगोटी मात्र परिग्रह रखता है। आर्यिका १२ हाथ की साड़ी रखती है फिर भी ऐलक पहले उसे वंदना करता है आर्यिका पीछे उसकी प्रतिवंदना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करनी है। इसका कारण यह है कि स्त्रियों में प्राकृतिक एवं स्वाभाविक लज्जा गुण रहता है। अतः आर्यिका वस्त्र छोड़ने में असमर्थ है फिर भी वह उपचार से मुनि तुल्य मानी जाती है। अतः पाद प्रक्षालन केशलुंचन आदि क्रिया में मुनि के समान वह करती है।

स्त्रियां भी अभिषेक करने की अधिकारिणी हैं

स्त्रियां भगवान का अभिषेक कर सकती हैं या नहीं ? इस विषय पर समाज में बहुत मतभेद एवं विवाद है आधा भाग समाज का स्त्रियों द्वारा अभिषेक का समर्थक है और आधा भाग उसका निषेधक है। यह समर्थन और निषेध शास्त्राधार से है ऐसा भी नहीं है किन्तु घरानों की परम्परा और संस्कारों से विधान और निषेध किया जाता है। जो पक्ष स्त्रियों द्वारा अभिषेक होने का निषेध करता है उस पक्ष का यह कहना है कि स्त्रियां सदैव अशुद्ध रहती हैं इसलिये वे अभिषेक करने की पात्र नहीं हैं। इतना ही नहीं किन्तु वह निषेध करने वाला पक्ष यह भी कहता है कि जहां जहां जो स्त्रियां अभिषेक करती हैं वह धर्म विरुद्ध कार्य है। ऐसा समझकर वह अभिषेक करने वाली स्त्रियों का गहरा विरोध और उस परम्परा को– स्त्रियों द्वारा भगवान के अभिषेक करने की प्रथा को नितान्त अनुचित समझ कर बुरी दृष्टि और घृणा की दृष्टि से देखता है। इसीलिये हम यहां पर इस विषय का खुलासा करना आवश्यक समझते हैं। स्त्रियाँ अभिषेक करें या नहीं करें। अथवा जहां जैसी मान्यता है उस विषय में हम हस्तक्षेप नही करना चाहते हैं। परन्तु जहां जो स्त्रियां अभिषेक करती हैं वे धर्म विरुद्ध अथवा आगम विरुद्ध कार्य करतीं हैं ऐसी धारणा और मान्यता जो रखते हैं उसका समाधान करना हम आवश्यक समझते हैं। इस सम्बन्ध में अपने अभिप्राय या विचारों को स्वतन्त्र रूप से कोई पक्ष पकड़ कर कुछ भी कहना हम आगम विरुद्ध मानते हैं।

हम तो यह स्पष्ट कह देना उचित समझते हैं कि स्त्रियां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगमानुसार भगवान का अभिषेक कर सकती हैं या नहीं ? अथवा वे अभिषेक करने की पात्र हैं या नहीं ? या वे सदैव अशुद्ध ही रहती हैं क्या ? इस सम्बन्ध में आगम का क्या विधान है ? और सदैव से चतुर्थ काल से स्त्रियां अभिषेक करती आरहीं हैं इसी का खुलासा हम करते हैं फिर कोई करो या मत करो या जहां जैसी मान्यता है वैसा करें इस विषय में हम कुछ भी नहीं कहना चाहते हैं।

अधिकार का समाधान

अधिकार के सम्बन्ध में शास्त्रों (पूर्वाचार्यों) का विधान यह है कि तीन वर्ण– (ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य) वाले मनुष्य मुनिदान, भगवान का अभिषेक करने के पात्र हैं। ये ही तीनों बर्ण वाले मनुष्य दीक्षा ग्रहण करने के पात्र हैं जैसा कि– "दीक्षायोग्यास्त्रयो वर्णाः" यह भगवज्जिनसेनाचार्य का वाक्य है। इन तीनों वर्णों से भिन्न शूद्र वर्ण वाले मनुष्य न तो अभिषेक और मुनिदान के अधिकारी हैं और न वे दीक्षा के अधिकारी हैं। शूदों में भी स्पृश्य और अस्पृश्य ऐसे दो भेद हैं। जैन धर्म धारण करने का जोवमात्र को अधिकार है। परन्तु अस्पृश्य शूद्र जैन धर्म धारण कर लेने पर भी जिन मन्दिर के भीतर नहीं जासकते हैं। वे मन्दिर के बाहर रहकर ही भगवान के दर्शन करते हैं। जैसे उच्च वर्ण की धर्मनिष्ठ रजस्वत्वा स्त्री अशुद्धि के कारण तीन चार दिन तक जिन मन्दिर में नहों जाती हैं उसी प्रकार अशुद्ध पिंड, अशुद्ध पेशा, अशुद्ध प्रवृत्ति में सना हुआ अस्पृश्य जिन मन्दिर के भीतर प्रवेश करने का पात्र नहीं है। परमपूज्य आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने एक महतर को जैन बनाया था। वह रात्रि में भोजन नहीं करता था औप मन्दिर के बाहर बैठकर ढप बजाकर भगवान की स्तुति करता था। यह हमने दक्षिण में प्रत्यक्ष देखा था यह तो अधिकार की बात है परन्तु ऐसे मनुष्यों से भी घृणा नहीं करके प्रेम और दयाभाव से उन्हें वस्त्र भोजन आदि देकर उसकी सहायता करनी चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकरणगत आगम यह है कि जो व्यक्ति भगवान का अभिषेक करने का अधिकारी है वही मुनिदान देने एवं दीक्षा लेने का अधिकारी है। स्त्रियां मुनिदान देती हैं, दीक्षा भी ग्रहण करती हैं अतः वे भगवान का अभिषेक करने की भी अधिकारिणी हैं।

अभिषेक करने का पात्र

जो अष्ट मूल गुण धारी पाक्षिक श्रावक है वह भगवान का अभिषेक साधिकार करता है। वर्तमान में व्यवहार सम्यग्दृष्टि पाक्षिक श्रावक भगवान का अभिषेक निर्विवाद रूप से अभिषेक करते हैं। तो क्या कारण है कि पाक्षिक श्राविका अभिषेक नहीं कर सकें। स्त्रियां तो मुनि तुल्य आर्यिका पूज्य पद भी ग्रहण करती हैं और वर्तमान में अनेक आर्यिकाएं हमारे सौभाग्य से सर्वत्र संघों के साथ विहार कर रही हैं। इतना सर्वोपरि महान पूज्य पद प्राप्त करने वाली स्त्रियां भगवान का अभिषेक करने की पात्र नहीं हैं ऐसा समझना शास्त्र विरुद्ध है।

अशुद्धता का समाधान

यह तर्क भी मिथ्या एवं आगम विरुद्ध है कि स्त्रियां सदैव अशुद्ध रहती हैं। यह तर्क प्रत्यक्ष वाधित भी है। परम विशुद्ध आहार ग्रहण करने वाले मुनि गण स्त्रियों द्वारा बनाया हुआ और उनके हाथों से दिया गया आहार लेते हैं। आज भी लेते हैं और चतुर्थ काल में भी लेते थे। वे जिन मन्दिरों में पूजन करती हैं और शास्त्रों का स्वाध्याय भी करती हैं ऐसी अवस्था में उन्हें सदैव अशुद्ध बताना प्रत्यक्ष वाधित है।

विवेकपूर्ण शुद्धता

स्त्रियां सदैव भगवान का अभिषेक और मुनिदान नहीं कर सकती है। उनमें भगवद्भक्ति के लिए विवेक एवं शुद्धता भी आवश्यक है। इस शंका का स्पष्टीकरण इस प्रकार है–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्री पर्याय में उत्तम संहनन नहीं होता है और स्वाभाविकी लज्जा के कारण वह सवस्त्र ही रह सकती है इसलिये वह स्त्री पर्याय से मोक्ष जाने की अधिकारिणी नहीं है। इसी प्रकार प्रति माह उसमें मासिक धर्म से होने वाली अशुद्धि के कारण वह अस्पृश्यसम अशुद्ध भी बन जाती है। इसीलिये अशुद्ध अवस्था में वह मुनि दान और अभिषेक कर नहीं सकती हैं। साथ ही जिन मन्दिर में जाने का भी उसे अधिकार नहीं है। जब पांचवें दिन शुद्ध हो जाती है सभी वह मुनिदान और अभिषेक कर सकती है।

जिन स्त्रियों को असमय में मासिक धर्म होता है और कभी भी अशुद्धता आसकती है उन्हें मुनिदान और अभिषेक करने का सर्वथा निषेध है। विवेक की सर्वत्र आवश्यकता है। विवेक पूर्वक अशुद्धता की संभावना में भी अभिषेक और मुनिदान उन्हें नहीं करना चाहिये अन्यथा पुण्य कमाने के स्थान में भारी पाप बंध होगा।

समय पर मासिक धर्म वाली स्वस्थ एवं निरोग स्त्रियों को भी मासिक धर्म होने के दो चार दिन पहले ही मुनि दान और अभिषेक नहीं करना चाहिये। एक बात यह भी है कि प्रायः स्त्रियां प्रति दिन शिर से स्नान नहीं करती हैं किन्तु गले से स्नान करती हैं ऐसी स्त्रियां मुनिदान और प्रभिषेक करने की पात्र नहीं हैं। अतः मुनि दान और भगवान का अभिषेक वे ही स्त्रियां कर सकती हैं जो शिर से स्नान करती हैं। सिद्धान्त यह है कि वस्त्र शुद्धि शरीर शुद्धि और स्वस्थ निरोग अवस्था में ही स्त्रियां भगवान का अभिषेक और मुनि दान की पात्र हैं। परन्तु विवेक पूर्वक शुद्ध अवस्था वाली स्त्रियां अभिषेक नहीं करें। अथवा स्त्री पर्याय में अभिषेक नहीं करना चाहिये ऐसी जिनकी धारणा है वह आगम विरुद्ध है और स्त्रियों के धर्म साधन में वाधक है साथ ही जो स्त्रियां अभिषेक करती हैं उन्हें धर्म विरुद्ध बताना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुरुष स्त्रियों का समानाधिकार

गृहस्थ जीवन में पति पत्नी का धार्मिक प्रवृत्ति में शास्त्रों में समान अधिकार बताया गया है। पंच कल्याणक प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा सिद्धचक्र विधान, आदि धार्मिक कार्यों में पति पत्नी दोनों दम्पती कंकण बंधवाकर एक साथ अभिषेक पूजन करते हैं, अभिषेक करते हैं रथ में साथ बैठते हैं। वस्त्र भी पीले पहनते हैं।

स्त्रियों को अभिषेक करने के अनेक प्रमाण

स्त्रियों को अभिषेक करने के पूर्वाचार्यों ने अनेक प्रमाण बताये हैं। पुराण शास्त्रों और कथा ग्रन्थों में व्रत विधानों में सर्वत्र स्त्रियों द्वारा अभिषेक एवं पंचामृताभिषेक करने का विधान पाया जाता है। कुछ प्रमाण यहां दिये जाते हैं—(सुगंध दशमी कथा ग्रन्थ से उद्धृत)

भद्र भाद्र पदे मासे शुल्केस्मिन् पंचमी दिने।
उपोष्यते यथाशक्ति क्रियत्ते कुसुमाञ्जलिः॥ ५६ लोक
तथा षष्टम्यां च सप्तम्या अष्टम्यां नवमी दिने
जिनाना मग्रतो भूयो दशम्यां जिनवेश्मनि ६० श्लोक
उपवास समाध्यय विधिरेष विधीयत्ते।
चतुर्विंशतितीर्थेषां स्नपनं प्रणीयते॥ ६१ श्लोक

इन श्लोकों की नीचे हिन्दी टीका छपी है उसमें अर्थ यह छपा है— मुनिराज बोले— उत्तम भाद्र पद मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी के के दिन उपवास करना चाहिये और भगवान को कुसुमाञ्जलि चढ़ाना चाहिये उसी प्रकार मन्दिर में षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नौमी फिर दशमी को भी भगवान के आगे कुसुमाञ्जलि चढ़ाना चाहिये। दशवीं को पुनः उपवास धारण करके निम्न विधि से व्रत पालन करना चाहिये। उस दिन चौबीसौ भगवान का अभिषेक करके दश पूजायें, दश स्तुतियां पढ़ना चाहिये दश वार जाप देना चाहिये।

सुगन्ध दसवीं व्रत दश वर्ष तक पालन करके अन्त में उद्यापन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना चाहिये। उस अवसर पर शान्ति विधान आदि करना चाहिये यथा–

पूर्णेथ दशवें वर्षे तदुद्यापनमाचरेत् ।
शान्तिकं वाऽभिषेकम्वा महान्तं विधिवात् सृजेत् ॥ ९६

अर्थः– दशवें वर्ष में व्रत पूर्ण होने पर उद्यापन करना चाहिये उसमें शान्ति विधान भगवान का महान् अभिषेक विधिवत् करना चाहिये। (सुगन्ध दशमी कथा)

यह सब वर्णन बहुत विस्तार से सुगन्ध दशवीं कथा में लिखा गया है। यह ग्रन्थ भारतीय ज्ञान पीठ वनारस से प्रकाशित है। ११)रु० इस ग्रन्थ का मूल्य है। यह ग्रन्थ प्राकृत संस्कृत भाषाओं में डेढ़ हजार वर्ष पहले महात् आचार्य श्रुत सागर आदि पूर्वाचार्यो ने रचा है। ग्रन्थ प्रारम्भ में लिखा है कि राजा श्रेणिक ने गौतम गणधर से सुगन्ध दशमी व्रत की कथा पूछी उत्तर में गणधर देव ने उस ब्रत का विधान फल आदि सब बताया।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि पुरातन काल में पूर्वाचार्यों ने तथा गणधर देव ने स्त्रियों द्वारा अभिषेक करने का विधान वताया है। इतना महान प्रमाण मिलने पर स्त्रियों द्वारा अभिषेक का निषेध करना पूर्वाचार्यों, गणधर देव और शास्त्रों का विरोध एवं तिरस्कार करता है।

और भी प्रमाण पूर्वाचार्यों के पढ़िये

उत्तर पुराण के रचयिता भगवद्गुण भद्राचार्य कृत
जिनदत्त चरित्र सर्ग १

गृहीत गन्ध पुष्पादि प्रार्चनाः सपरिच्छदा ।
अथैकदा जगामैषा प्रातरेव जिनालयम् ॥५५॥
त्रिः षरीत्य ततः स्तुत्वा जिनांश्च चतुराशया ।
संस्नाप्य पूजयित्वा च प्रयाता यति संसदि ॥५६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थः- एक दिन की बात है सेठानी जी बंजसा स्नान आदि से शुद्ध होकर दास दासियों के साथ सवेरे ही जिन मन्दिर में भगवान जिनेन्द्र देव के दर्शन के लिये गईं। वहां पहुंच कर उसने पहिले तो जिनदेव की तीन प्रदक्षिणा दीं और बाद स्तुति पूर्वक भगवान का विंवाभिषेक किया, पूजन की और फिर वह मुनियों की सभा में गई।

यह जिनदत्त चरित्र भगवद्गुणभद्राचार्य द्वारा बनाया गया है। भगवद्गुणभद्राचार्य हर एक विषयों में कितना अगाध पांडित्य रखते थे और महान् ग्रन्थों के रचने में उनकी कितनी असाधारण क्षमता थी यह बात तो केवल इसी से जानी जासकती है कि अनेकों शिष्यों के रहते हुए भी महापुराण को पूर्ण करने का श्रेय केवल उनको मिला।

भगवद् गुणभद्राचार्य के वर्तमान में आदि पुराण से अवशिष्ट भाग के अलावा उत्तरपुराण, आत्मानुशासन और जिनदत्त चरित्र ये तीन ग्रंथ मिलते हैं।

वृहन्नेमिचंद्र कृत श्रीपाल चरित्र पृष्ठ नं० ६

अथैकदा सुता सा च सुधी मदन सुन्दरी।
कृत्वा पंचामृतैः स्नानं जिनानां सुख कोटिदम्॥

अर्थः- इसके अनन्तर एक दिन गुणवती वह मैना सुन्दरी करोड़ों सुखों के देने वाले जिनेन्द्र भगवान का पंचामृताभिषेक पूर्वक अभिषेक करके-

आराधना कथा कोष तीसरा भाए पृष्ठ नं० ४२१

तदा वृषभ सेना च प्राप्य राज्ञी पदं महत्।
दिव्या भोगान्प्रभुजाना पूर्व पुण्य प्रसादतः॥
पूजयंती जगत्पूज्यान् जिनानू स्वर्गापवर्गदान्।
दिव्यै रष्ट महाद्रव्यैः स्नपनादिभिरुज्वलैः॥३६॥

अर्थ- औषधदान में वृषभसेना प्रसिद्ध हो चुकी है। उसमें लिखा है पूर्व पुण्य के प्रभाव से वृषभसेना ने महारानी के पद को प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया तथा स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले जिनेन्द्र भगवान की अभिषेक पूर्वक अष्ट द्रव्यों से पूजन करती हुई।

(जिनसेनाचार्य कृत हरिवंश पुराण सर्ग)

इत्युक्तो नोदयद्वेगात्सारथि रथ मापसः।
जिन वेश्म तमास्थाप्य तौ प्रविष्टौ प्रदक्षिणा ॥२०॥
क्षीरेक्षु रस धारौघै घृत दध्युदकादिभिः।
अभिषिच्य जिनेन्द्रार्चा मर्चितां नृसुरासुरैः ॥११॥

हरिवंश पुराण के भाषा टीकाकार श्री पं० गजाधरलाल जी न्यायतीर्थ हैं। उन्होंने उक्त श्लोकों का अनुवाद इस तरह से किया है।

अर्थ– गन्धर्व सेना के ऐसे बचन सुनते ही सारथी ने रथ हांक दिया और मन्दिर के पास में जाकर खड़ा किया। रथ से उतर कर कुमार और गन्धर्व सेना ने जिनालय में प्रवेश कर भगवान की तीन प्रदक्षिणा दी, तथा दूध, ईख का रस, घी, दही और जल से भगवान का अभिषेक किया।

(आचार्य सकलकीर्ति कृत शांतिनाथ पुराण सर्ग)

यह वर्णन विजयार्ध पर्वत पर स्थित अकृत्रिम जिनालय का है। जिसमें बताया गया है कि वहां पर देवगण देवाँगनायें विद्याधर और विद्याधरियां आदि सब मिलाकर महान समारोह के साथ जिनेन्द्र पूजन के लिए आते हैं। इसी प्रकरण में विद्याधरियों के जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक करने का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। हम ग्रन्थ की पंक्तियों को ज्यों की त्यों रख देते है–

उनमें से पूर्वकूट के ऊपर भगवान अरहंत देव का अकृत्रिम जिनालय हैं जो कि अनेक तरह के रत्नों से जड़ा हुआ है और अत्यन्त सुन्दर है। वहां पर अनेक विद्याधर प्रतिदिन विमानों में बैठकर जयर शब्द करते हुए भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा करने के लिए आते हैं ४१

इसी प्रकार गीत गाती हुई और नृत्य करती हुई विद्याधरियां भी उस जिनालय में भगवान की पूजा करने के लिये आती हैं और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कितनी ही भगवान की पूजा करती हैं और अपने आनन्द के अत्यन्त रस में मग्न हुई कितनी ही विद्याधरियाँ बाजे वजाती हैं।४३। कितनी ही विद्याधरियां वड़े उत्सव के साथ भगवान जिनेन्द्र देव का अभिषेक करती हैं।

पद्मपुराण पर्व ९६

अभिषेकै र्जिनेन्द्राणा मत्युदारैश्च पूजनैः।
दानैरिच्छाभि पूरैश्च क्रियता मशुभेरणम् ॥१६॥
एवमुक्ता जगौ सीता देव्यः साधुसमीरितम्।
दानं पूजाऽभिषेकश्च तपश्चाशुभ सूदनम् ॥१६॥

अर्थ– यहाँ सीता से कहा गया है कि हे देवी अशुभ कर्म को दूर करने के लिए जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक तथा पूजन करो और दान दो। इस प्रकार उनके कहने पर सीता ने उसे स्वीकार किया।

(भगवज्जिनसेनाचार्य कृत आदि पुराण पर्व ४३)

तत्प्रतीष्याभिषेकाँते महापूजा प्रकुर्वती।
महास्तुतिभिरर्थ्याभिस्त्रुवती भक्तितोऽर्हतः ॥१७४॥

ददती पात्र दानानि मानयंती महामुनीनित्यादि आदि पुराण के भाषा टीकाकार श्री पं० दौलतरामजी ने उपर्युक्त श्लोकों का अनुवाद इस तरह से किया है।

वह नाना प्रकार मणिमई अनेक जिन प्रतिमा करावें और तिनकी पूजा के अर्थि अनेक मणिमई हेममई उपकरण करावै। अर वह सुलोचना अनेक जिन मन्दिर बणाय जिन प्रतिमा अभिषेक करि महापूजा करै अर बारम्बार अर्थयुक्त स्तुति करि अर्हंतदेव की स्तुति करें। अर निरन्तर पात्रदान करें महामुनिन की अति स्तुति करै।

(आचार्य वीरनन्दी कृत चन्द्रप्रभु, महाकाव्य सर्ग ३)

तस्मिन् विधाय महती मुपवास पूर्वां,
पूजां जगद्विजविनो जिनपुंगवस्य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्नानं समीहित निमित्त मथस्तदीय'
बिबस्य स प्रविदधे सहितोऽग्रदेव्या ।।६१।।

अर्थ– उस पर्व के दिन राजा ने व्रत धारण पूर्वक जगद्विजयी जिनेन्द्र की भारी पूजा की। और फिर अपनी कामना पूर्ण होने की अभिलाषा से रानी सहित जिन बिम्ब का अभिषेक किया।

(मंडलाचार्य श्री धर्मचन्द्र जी विरचित गौतम चरित्र सर्ग ३)

श्री वीरनाथ बिबस्य स्नपनं क्रियते मुदा-
इक्षु-सुघृत-सद्दुग्ध-दधि-वारिभृतैर्घटैः ।१६।
ततः पूजा प्रकर्तव्या वीरस्य सलिलादिभिः ।
हृद्वाक्कायं स्थिरी कृत्य दुष्कृतनाशन हेतवे ।।१७।।

अर्थ– यहां पर मुनिराज तीन कन्याओं को उपदेश देते हैं कि हे पुत्रियों पापों का नाश करने के लिए प्रथम ही श्री वर्द्धमान स्वामी का प्रतिबिम्ब स्थापन कर इक्षु, रस, घृत, दूध, दही और जल से भरे हुए कुंभों से अभिषेक करना चाहिये।

तदनन्तर मन, बचन काय को स्थिर कर जल चन्दन आदि आठ द्रव्यों से भगवान वर्द्धमान स्वामी का पूजन करना चाहिये। इन तीनों कन्याओं में से एक कन्या का जीव ही अन्त में गौतम गणधर की महान् पदवी को प्राप्त करता है।

(आचार्य सकल भूषण कृत षट्कर्मोपदेश रत्नमाला)

इतीमं निश्चयं कृत्वा दिनानां सप्तकं सती ।
श्री जिन प्रतिबिबानां स्नपनं सा तदाऽकरोत् ।।
चंदना गुरु कर्पूर सुगंधैश्च बिलेपनैः ।
सा राज्ञी विदधे प्रीत्या जिनेन्द्राणां त्रिसंध्यकम् ।।

अर्थ– उस सती रानी ने ऐसा निश्चय कर सात दिन तक तीनों समय भगवान का अभिषेक किया और चन्दन अगुरु कपूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से भगवान की पूजन की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आराधना कथाकोष पृष्ठ ४०२ रात्रि भोजन त्याग की कथा में लिखा है।

ततस्तयो जिनेन्द्राणां महास्नपन पूर्वकम् ।
कल्याण दायिनीं पूजां पात्रदानं सुखप्रदम् ॥१॥
कुर्वतो सुखतः कैश्चि मासैर्जातः सुतोत्तमः

अर्थ– इसके अनन्तर सेठ और सेठानी द्वारा भगवान का अभिषेक पूर्वक पूजन करते हुए तथा पात्र दानादि शुभ कार्य करते हुए समय व्यतीत हुआ। और कुछ महिनों बाद सेठानी धनमित्रा ने पुत्र प्रसव किया।

जिनवाणी संग्रह में दश लक्षण व्रत कथा

कन्या बोली किह विध करें, किस दिन तें यह व्रत हम करैं ।
तब गुरु बोले वचन रसाल, भादव मास कह्यो सुखमाल ॥
शुकल पंचमी दिन सों लेय, पचामृत अभिषेक करेय ।
पूजार्चन कीजे शुभ सही, जिन चौबीस तणी सुखमही ॥

यहां चार कन्याओं को मुनिराज ने उपवास के दिन अभिषेक पूजन करने का उपदेश दिया है तदनुसार कन्याओं ने अभिषेक किया है।

(सुगन्ध दशमी व्रत की कथा में)

ऐसे बचन सुने मुनि जबै, तब बोले पुत्री सुन अबै ।
भादों शुक्ल पक्ष जब होय, दशमी दिन आराधौ सौय ॥
पंचामृत की धारा देव, मन में राखो श्री जिनदेव ।
शीतल जिनकी पूजा करो, मिथ्या मोह दूर परिहरो ॥

यहां पर भी मुनिराज ने उपदेश दिया है कि हे पुत्री भाद्रपद शुक्ला दशमी के दिन उपवास करो तथा जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक पूजन करो जिससे अशुभ कर्मों का नाश होवे।

(व्रत कथा कोष)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुक्ल श्रावण मासस्य सप्तमी दिवसेऽर्हताम् ।
स्नपनं पूजनं कृत्वा भक्त्याष्ट विधमूर्जितम् ॥

अर्थ– मुनिराज ने कन्या को व्रत की विधि बतलाई कि हे पुत्री श्रावण शुक्ला सप्तमी को उपवास करना चाहिये । उसी दिन भगवान का अभिषेक कर अष्ट द्रव्यों से पूजन करना चाहिये ।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि स्त्रियों को अभिषेक करने का पूर्ण अधिकार है । अभिषेक पूजन का ही एक अंग है । इसके बिना पूजन अंगहीन पूजा के नाम से पुकारी जाती है । इसलिये स्त्री हो या पुरुष पूजन अभिषेक पूर्वक ही करना चाहिये । फिर भी जो लोग केवल अपनी मनोकल्पना से स्त्रियों में अशुद्धता का दोष लगाकर उन्हें अभिषेक करने से रोकते हैं वे वास्तव में आचार्यों के आदेश की अव-हेलना करते हैं और अशुभ कर्म का बंध करते है स्त्रियां अगर चौबीस घन्टे ही अशुद्ध रहती तो साक्षात् तीर्थंकर भगवान महावीर ने चंदना के हाथ से आहार नहीं लिया होता । जो स्त्री तीर्थंकरों को पैदा कर सकती है उन्हें मुनि अवस्था में दान दे सकती हैं । एवं जो उनकी नवधा भक्ति चरण प्रक्षालन कर सकती है । आर्यिका का महान पद प्राप्त कर सकती है । वह स्त्री उनकी प्रतिमा का स्पर्श न कर सके यह कैसी बात है । शास्त्रों में ऐसे एक नहीं अनेकों प्रमाण मिलते हैं । जहां पर स्त्रियों ने स्वयं अपने हाथों से प्रतिमा को स्थापन कर पूजन किया । उदाहरण के लिए पद्मपुराण सर्ग १७ को खोलकर देखें । जहां पर अंजना और उसकी सखी बसंतमाका दोनों गुफा के अन्दर मुनि सुव्रतनाथ की प्रतिमा स्थापन कर पूजा भक्ति करती थीं ।

मुनिसुव्रतनाथस्य विस्यस्य प्रतियातना,
अर्चयन्त्यौ सुख प्राप्त्यै स्वमोदैः कुसुमैरलं ।

अर्थ– उस गुफा में मुनि सुव्रतनाथ की प्रतिमा स्थापन कर वे दोनों सुगन्धित पुष्पों से सुख की प्राप्ति के लिए जिनेन्द्र भगवान का पूजन करती हुई ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(इसी तरह इसी सर्ग में एक जगह और लिखा है)

प्रतिमा देव देवानां प्रतीके सद्मनस्तया ।
स्थापयित्वार्चिताभक्त्या स्तुति मंगल दक्त्रया ॥१६७॥

अर्थ– वह लक्ष्मीमती रानी अपने महल में जिनेन्द्र की प्रतिमा स्थापन कर पूजन किया करती थी।

कुंद कुंदाचार्य कृत षट् पाहुड संस्कृत टीका पेज ३३४

यावज्ज्येष्ठा जिनप्रतिमां गृहीत्वा गच्छति तावत्तत्र न कोऽपि दृष्टः। ज्येष्ठा तु लज्जिता "अहं बृहद् भगिन्या वंचिता" इति वैराग्येण चैत्यालये स्थितायाः आर्यिकायाः पाद मूले दीक्षां जग्राह।

भावार्थ– ज्यों ही ज्येष्टा जिनेन्द्र की प्रतिमा को लेकर वहां जाती है तो उसे वहां पर कोई दिखाई नहीं देता है। वह अपने मन में लज्जित हो कर कि मैं अपनी वहिन चेलनी के द्वारा ठगी गई हूँ। ऐसा सोचकर चैत्यालय में स्थित आर्यिका के पादमूल में दीक्षा धारण करली।

श्री स्वर्गीय पं० भूधरदास जी कृत चरचा संमाधान पृष्ठ ६४

स्त्री को पूजा करने का अधिकार है कि नहीं ? किस कथा पुराण में स्त्री को पूजा का निषेध आया यहां पूजा करने का प्रसंग तो कई जगह आया है।

यहां कोई कहै स्त्री पूजा करे, यह तो सुनी पर अभिषेक न करे ताका उत्तर पूजा तो अभिषेक बिना होती नहीं यह नियम है। ऊपरि मैनासुन्दरी अभिषेक न कीना तो गंधोदक कहां से लाई। तथा स्त्री के स्पर्श का कुछ ऐसा दोष होता तो स्त्री का किया तथा स्त्री के हाथ सों आहार साधु काहे को लेंते। तिसतैं उत्तम पवित्रता गुणवती स्त्रीनि को पूजा का, अभिषेक का निषेध नाहीं।

(सुमेरु पर्वत पर भगवान के जन्माभिषेक के समय इन्द्राणी तथा देवांगनायें भी भगवान का अभिषेक करती हैं)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पद्म पुराण पर्व ३ आदिनाथ भगवान का जन्मोत्सव-

इन्द्राणी प्रमुखा देव्यः सद्गंधै रबलेपनैः ।
चक्रुः उद्धर्तनं भक्तया करैः पल्लव कोमलैः ॥१८॥
महीध्र मिव तं नाथं घटै र्जल धरैरिव-
अभिषिच्य समारब्धा-

अर्थ-इन्द्राणी है प्रमुख जिनमें ऐसी देवांगनाओं ने अपने पल्लव के समान कोमल हाथों से भगवान के शरीर पर सुगंधित चन्दन का लेपन किया, तथा महागिरी के समान जिनेन्द्र का मेघ के समान कलशों से अभिषेक करके.....................

हरिवंशपुराण सर्ग ८ ऋषभजन्मोत्सव-

अत्यंत सुकुमारस्य जिनस्य सुर योषितः ।
शच्याद्या पल्लवस्पर्श सुकुमार करास्ततः ॥१७२॥
दिव्यामोद समाकृष्ट षट्पदौघा नुलेपनैः ।
उद्धर्तयन्त्य स्ता प्रापुः शिशुस्पर्श सुखं नवं ॥१७३॥
ततो गंधोदकैः कुंभै रभिषिच्यन् जगत्प्रभुं ।
पयोधर भरानम्रा स्ता वर्षा इव भूभृतं ॥१७४॥

अर्थ-अत्यन्त सुकुमार प्रभुका शरीर इन्द्राणी आदि देवांगना पल्लव हू ते अधिक जो कोमल कर तिनकरि अगोछती भई अर दिव्य सुगंध जापर भ्रमर गुंजार करै हैं ताका लेपन करती भई बहुरि गंधोदक के कलशनि करि भगवान का अभिषेक करती भई।

हरिवंशपुराण पर्व ३८ नेमिनाथ जन्मोत्सव-

ततः सु पति स्त्रियः जिन मुपेत्य शच्यादयः,
सुगंधितनु पूर्वकैः मृदुकराः समुद्धर्ततम् ।
प्रचक्रु रभिषेचनं शुभपयोभिरुच्चै र्घटैः,
पयोधर भरै निजै रिव सम समावर्जितै ॥५४॥

अर्थ-अथानंतर शची आदि सुरांगना भगवान के तनका स्पर्श करती भई अर सुगंध जलकर अभिषेक किया मानों वह कलश इन्द्राणी के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुच कुंभ समान सुन्दर है एक साथ सब इन्द्राणी ने जिनेन्द्र का अभिषेक किया।

आदिपुराण-आदि जिन जन्मोत्सव–

गंधै सुगंधिभिः सांद्रै रिंद्राणी गात्र मीशितुः।
अंवलि पंच लिपद्भि रिवामोदै स्त्रिविष्टपम् ॥

अर्थ–इन्द्राणी प्रभू के शरीरनै जल सहित सुगंधित गंध करि लेपन करती भई सो मानू सुगंधकरि तीन जगतनै लेपन करती ही प्रभू के सर्वांगमें लेपन कियो।

स्त्रियों द्वारा अभिषेक करने के विधान में अनेक पूर्वाचार्यों के प्रमाण ऊपर दिये गये हैं। और भी शास्त्रों में प्रमाण हैं। किंतु स्त्रियों को पूजन अभिषेक करने का निषेध पूर्वाचार्यों ने किसी शास्त्र में नहीं बताया है। इतना आवश्यक है कि शुद्ध अवस्था में ही स्त्रियां मुनिदान और अभिषेक एवं शास्त्रों का स्वाध्याय कर सकती हैं।

चाहे कहीं पर स्त्रियां अभिषेक नहीं करती हैं, या उन्हें नहीं करने दिया जाता है, इस संबंध में हमको कुछ कहना नहीं है जहां जैसी प्रवृत्ति हो सो करें परंतु इस विषय को विवाद कोटि में नहीं लाना चाहिये। स्त्रियों द्वारा अभिषेक का निषेध नहीं करना चाहिये। पूर्वाचार्यों के वचनों पर श्रद्धान करना प्रत्येक धर्मात्मा का प्रथम कर्त्तव्य है। इस संबंध में हमने प्रत्यक्ष, युक्ति, हेतु, आगम का ही दिग्दर्शन किया है।

अभिषेक और पूजन प्रकरण में जहां तहां भिन्न २ मान्यता भिन्न आम्नाय और प्रवृत्ति पाई जाती है। यह आम्नाय और प्रवृत्ति भेद कहीं २ पर कषाय पूर्ण उग्र रूप धारण कर लेता है इसलिये पूजन और अभिषेक के संबंध में थोड़ासा खुलासा कर देना भी आवश्यक समझा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पञ्चामृताभिषेक

पंचामृताभिषेक का आचार्य प्रणीत शास्त्रों में अष्ट द्रव्य पूजन के समान विधान है। उसे महाभिषेक के नाम से भी कहा जाता है। दक्षिण में यह पद्धति सर्वत्र प्रचलित है। प्रत्युतः पूजन से महाभिषेक का महत्व अधिक माना जाता है। इसका प्रमाण श्रवण वेला गोला (जैन विद्री) के महामनोज्ञ चित्ताकर्षक दिव्य तेज अलौकिक अतिशय युक्त भगवान वाहुवलि हैं जिनका सर्वांग महाभिषेक दूध, दही, घृत इक्षुरस, सर्वौषधि इनसे भरे हुए विशाल कलसों से किया जाता है। जिसे देखने के लिए सभी प्रान्तों के नर नारी एवं मुनि गण आते हैं। वर्तमान समय के आचार्य शिरोमणि चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य श्री १०८ श्री आचार्य शान्तिसागर महाराज समाधि के समय में भी प्रति दिन कुंथलगिरि सिद्ध क्षेत्र पर पंचामृताभिषेक देखते थे।

पंचामृताभिषेक का विधान सभी शास्त्रों में हैं निषेध किसी शास्त्र में नहीं है

प्रमाण पढ़िये

श्री जिनसेनाचार्य कृत हरिवंश पुराण में लिखा है–

क्षीरेक्षुरसधारौ घैंघृत दध्युदकादिभिः
अभिपिच्य जिनेन्द्रार्चामर्चितां नृसुरासुरैः
(सर्ग २२ श्लोक २१)

अर्थ– दूध, ईख का रस, घी, दही, जल से भगवान का अभिषेक करके मनुष्य और सुर असुरों से पूजित जिनेन्द्र भगवान की पूजा करनी चाहिये।

रविषेणाचार्य कृत पद्मपुराण में लिखा है–

अभिषेकं जिनेन्द्राणां विधाय क्षीरधारया
विमाने क्षीरधवले जायते परमद्युतिः १६६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दधि कुंभैजिनेंद्राणा यः करोत्यभिषेचनम्
कान्ति द्युति प्रभावाढ्यों विमानेषः स जायते

अर्थ– जो मनुष्य दूध की धारा से भगवान का अभिषेक करता है वह दूध के समान धवल कान्ति वाला विमानवासी देव होता है। इसी प्रकार जो दही के घड़ों से भगवान का अभिषेक करता है वह, कान्ति दीप्ति वाला विमानवासी देव होता है।

आचार्य वसुनन्दि कृत श्रावकाचार में लिखा है–

इक्सुं रसं सप्ति दहि खीर गंध जल पुष्प विविहि कलसेहिं
णिसि जायरणं च संगयिणाड्याहिं कायव्वं ४५४

अर्थ– ईख का रस, घी, दही, दूध, गन्ध, जल से भरे हुए अनेक कलसों से भगवान का अभिषेक करना चाहिये और रात्रि में जागरण संगीत नाटक आदि भी करना चाहिये।

आचार्य सोमदेव ने यशस्तिलक महाकाव्य में लिखा है–

पयो दधि क्षीर घृतादिपूर्णाः फलाग्र पुष्पस्तव काचिधानाः
घटावलीं दाम निवद्ध कण्ठाः सुवर्णकारैः लिखिता हि रेजुः। ३५
अष्ठोत्तराः शीतजलैः प्रपूर्णाः सहस्त्र मात्राः कलशाः विशालाः
पद्मोत्पलोत्फुल्लपिधान वक्त्राः जिनेन्द्र बिम्ब स्नपतैक आर्या।
२६ सर्ग २३

अर्थ– जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के लिए दूध, दही, घी, जल आदि से भरे कलश जिन पर फल पुष्पमाला लगी हुई हैं एक हजार आठ कलशों से जिनके मुख कमलों से ढके हुए हैं सजाये गये।

आचार्य सकल कीर्ति कृत श्रीपाल चरित्र में लिखा है–

कृत्वा पंचामृतैर्नित्यं अभिषेकं जिनेशिनाम्।
ये भव्याः पूचयन्त्युच्चै स्ते पूज्यन्ने सुरादिभिः

अर्थ– जो भव्य भगवान का पंचामृताभिषेक प्रति दिन करते हैं वे देवों द्वारा पूजे जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाण अनेक हैं। कहां तक दिये जाँय।

एक महाशास्त्र जिसका नाम– अभिषेक पाठ संग्रह है। जयपुर के प्रमुख जौहरी श्री बनजीलाल ठोलिया दि० जैन ग्रन्थमाला समिति की ओर से छपा है उसके ३९१ पृष्ठ हैं। इस अभिषेक पाठ में भिन्न २ आचार्यों के बनाये गए भिन्न भिन्न पन्द्रह अभिषेक पाठ हैं। सभी पाठ अपूर्व मनोहारी हैं। ये पाठ संस्कृत में रचे गये हैं और पंचमी शताब्दि से लेकर सोलहवीं शताब्दि तक के हैं। जिन आचार्यों ने ये अभिषेक पाठ रचे हैं वे सभी मूल संघ के प्रसिद्ध महाविद्वान आचार्य हैं। जिन आचार्यों ने ये पाठ रचे हैं उनके नाम इस प्रकार हैं–

१–आचार्य पूज्य पाद स्वामी जिन्होंने सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थ रचे हैं। २–आचार्य गुण भद्र ३–आचार्य सोमदेव सूरि ४–आचार्य अभयनदि सूरि ५–आचार्य इन्द्रनंदि ६–आचार्य सकल कीर्ति ७–भट्टारक देव शुभचन्द्र ८–पंडित प्रवर आशाधर जी ९–महाकवि गजांकुश १०–अयघाय कवि ११–कवि नेमिचन्द आदि

उपर्युक्त सभी आचार्यों और महा विद्वानों ने महामन्त्रों के साथ दूध, दही, घी, इच्छुरस, सर्वौषधि इन पांचों से पंचामृताभिषेक से भगवान का अभिषेक और पूजन का विधान लिखा है जो बहुत महत्वपूर्ण है। यहां पर केवल आचार्य पूज्यपाद स्वामीकृत पचामृताभिषेक का एक पद्य लिख देना पर्याप्त है एतै रिक्षुरसैश्च दुग्ध सलिलैरक्षीर सिध्रम्दवैरेभिश्चत रसैश्च नूनममृतैः संक्रान्त नामान्तरैः।

प्राज्यश्रीजिनराजमज्जनविधिः प्राप्तोपयोगार्चित स्तोत्रैः श्रोत्र रसायनं त्रिजगतां सम्पद्यतां मद्रच- ओं ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं भवीं क्ष्वीं हं सस्त्रैलोक्य स्वामिनः इक्षु रसाभिषेकं करोमि नमोर्हते स्वाहा।

इसी प्रकार सभी रसों के भिन्न भिन्न श्लोक हैं भिन्न २ मंत्र हैं। यह विधि विधान बड़े ठाठ बाट से दक्षिण प्रान्त में किया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भट्टारक महोदय पीत वस्त्र आदि से संस्कारित होकर पंचामृताभिषेक कराते हैं और घर घर में वहां चैत्यालय भी प्राय: होते हैं। अत: सद्ग्रहस्थ भी पंचामृताभिषेक प्रति दिन करते हैं। उत्तरप्रदेश में अनेक स्थानों में पंचामृताभिषेक होता है। अनेक स्थानों में केवल जलाभिषेक होता है।

पंचामृताभिषेक का विधान तो सर्वाचार्य सम्मत है। निषेध किसी आचार्य प्रणीत शास्त्र में नहीं हैं। इसलिये जहां जहां केवल जलाभिषेक किया जाता है वह भी पुण्यवर्धक है किंतु शुद्ध दूध दही घी आदि से पंचामृताभिषेक करने का महान पुण्य वर्धक कार्य विशेष विशेष महत्वपूर्ण कार्य है। इसलिये पंचामृताभिषेक का निषेध करना तो पूर्वाचार्यों के बचनों का लोप करना है जिस प्रकार अशुद्ध पदार्थों से अभिषेक करना दोषप्रद है उसी प्रकार मुनियों के ग्रहण करने योग्य शुद्ध पदार्थों से अभिषेक करने का निषेध करना दोषप्रद है।

आगम प्रमाण ही श्रद्धा एवं सम्यग्दर्शन के चिन्ह हैं।

पंच मंगल पाठ

पंच मंगल पाठ पंडित रूपचन्द जी ने बनाया है। इस हिन्दी पाठ में भगवान तीर्थंकर के गर्भ जन्म दीक्षा केवल ज्ञान और मोक्ष इन पंच कल्याणकों का बहुत सुन्दर और भक्ति पूर्ण स्वरूप निरूपण उन्होंने किया है। वह अभिषेक पाठ नहीं है। किन्तु पांचों कल्याणकों का विवेचन है। अभिषेक पाठ भिन्न है। परन्तु करीब दो सौ ढाई सौ वर्षों से अभिषेक पाठ से अभिषेक होना तो छूट गया किन्तु इस पं० रूपचन्द जी कृत पंच कल्याणक पाठ से अभिषेक होना प्रचलित हो गया है।

अभिषेक किसका होता है ?

अभिषेक भगवान अर्हंत का होता है। प्रतिष्ठा पाठ और मंत्रों द्वारा सूरि मंत्र आदि से मूर्ति में अर्हंत पद की स्थापना की जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्हंत भगवान के रत्नत्रय आदि गुणों का आरोप किया जाता है। जिससे उस मूर्ति में प्रतिष्ठा होने पर अर्हंत पद का साक्षात् स्वरूप आजाता है। आदिनाथ चन्द्र प्रभु शान्तिनाथ पार्श्वनाथ महावीरस्वामी आदि चौबीस तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग समवशरण में विराजमान थे। वे ही ये हैं ऐसा श्रद्धान करके ही जो मूर्ति की पूजा करते हैं वे ही सम्यग्दृष्टि हैं। जो यह समझते हैं कि भगवान तो मोक्ष चले गये यह मूर्ति तो उनका स्मरण कराती है, वे सच्चे श्रद्धानी नहीं है। मिथ्या दृष्टि हैं। क्योंकि मूर्ति को भगवान नहीं समझने से मूर्ति में पूज्य बुद्धि तथा भक्ति नहीं हो सकती है। फिर पूजन और अभिषेक में भी प्रगाढ़ भक्ति और तन्मग्नता नहीं हो सकती है। सिद्धान्त तो यह है कि भगवान की मूर्ति को साक्षात् भगवान माना जाय, ये ही आदिनाथ हैं ये ही महावीर स्वामी हैं ऐसी दृढ़ बुद्धि उनकी मूर्ति में ही होनी चाहिये। समवसरण में भी तो भगवान का शरीर ही दीखता है उनके सर्वज्ञता, वीतरागता सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान आदि गुणों का दर्शन तो नहीं होता है। इसी प्रकार मूर्ति भी भगवान का शरीर है। उसी वीत-राग जिन मुद्रा में दृढ़ भक्ति श्रद्धा पूर्ण होना सम्यग्दर्शन को प्रगट होने में समर्थ है। यही बात भजन में कही गई है।

"प्यारी लागे म्हाने जिन छवि थारी, परम निराकुल पद दरसावत वर विरागता कारी।" आदि

मूर्ति में मन्त्रों द्वारा भगवान के गुणों का आरोप भी कल्पना नहीं है किन्तु बास्तविक है। मन्त्रों में बड़ी शक्तियां है। यह प्रत्यक्ष है कि सर्प का विष दूर करने वाला मन्त्र, सर्प के विष को तुरन्त दूर कर देता है। इसी प्रकार बिच्छू बिष आदि व्याधियों को दूर करने वाले मंत्र उन व्याधियों को दूर कर देते हैं यह सब जानते हैं। जब मिथ्या मन्त्रों में इतनी शक्ति अनुभव सिद्ध है तब वीतराग महर्षियों के आग-मोक्त मन्त्रों से भगवान की प्रतिमा में उनके गुणों का स्थापन जिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्त श्रद्धालु पुरुषों को सम्यग्दर्शन आदि गुणों से विभूषित करदें तो यह सहज वात है।

रावण ने वहुरूपिणी विद्या मन्त्रों से ही सिद्ध की थी। विद्याधर मन्त्रों के द्वारा अनेक बड़े-बड़े कार्य साधते हैं। देवगण मन्त्रों से नगर, फौज, अग्नि का जल आदि कर देते हैं। श्री समंतभद्र स्वामी ने भक्ति और श्रद्धा से भगवान की स्तुति की उसके कारण भगवान चन्द्रप्रभ की रत्नमयी मूर्ति प्रगट हुई। उसके दर्शन कर शिवकोटि राजा जो जैन धर्म का कट्टर विरोधी था दि० जैन मुनि बन गया। यह महान् फल जिन मूर्ति के दर्शन से ही उसे मिला।

फोटो पूज्य नहीं है

आजकल कुछ लोग ऐसे भी हैं जो जिन मन्दिर में जाकर भगवान के दर्शन नहीं करते हैं अपने घर में भगवान का चित्र (फोटो) टांगकर उसी चित्र का दर्शन कर लेते हैं। परन्तु यह प्रमाद तो है ही साथ में अज्ञान भी है। कारण फोटो पूज्य नहीं है वह केवल स्मारक है। वह प्रतिष्ठित नहीं है। उसकी प्रतिष्ठा भी नहीं हो सकती है' वह कागज पर बना हुआ अस्थिर एवं भंग होने वाला है। प्रतिष्ठा धातु पाषाण और रत्नों की मूर्ति की होती है। फोटो में अप्रतिष्ठित होने से आकर्षण नहीं है। उसमें परिणाम लग नहीं सकते। इसलिये फोटो का दर्शन नहीं करना चाहिये, वह अज्ञान है। परिणामों की उज्वलता के लिए मन्दिर में जाकर जिनेन्द्र भगवान के दर्शन पूजन अभिषेक करना चाहिये। फोटो का अभिषेक न तो किया जाता है और न हो सकता है कागज गल कर फट जायगा।

अभिषेक अर्हंत का ही होता है

अभिषेक तीर्थंकर भगवान का अर्हंत सर्वज्ञ अवस्था का ही होता है। यह बात पंचामृताभिषेक पाठ से ही सिद्ध होती है। जैसा कि द्रव्यै रनल्प धन सार चतुः समाद्यैरामोदवासित समस्त दिगन्तरालै

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिश्रीकृतेन पयसा जिन पुगवानां त्रैलोक्य पावन महं स्नपनं करोमि।
(अभिषेक पाठ)

पंचामृताभिषेक पाठ के अन्त में शान्ति धारा दी जाती है उसके प्रारम्भ में निम्न वाक्य हैं–

ओंनमः अर्हते भगवते श्रीमते पार्श्व तीर्थंकराय द्वादशगण बेष्टिताय शुल्क ध्यान पवित्राय स्वयंभुवे सिद्धांय बुद्धाय परमात्मने परम सुखाय त्रैलोक्यमहीव्याप्ताय अनन्त संसार चक्र परिमर्दनाय अनन्त दर्शन अनन्त वीर्याय आदि ।

इस शान्ति मन्त्र में सभी वाक्य सर्वज्ञ वीतराग अर्हंत भगवान के ही सूचक हैं। जैसे अर्हंत भगवान, शुल्क ध्यान पवित्र, परमात्मा अनन्त दर्शन, अनन्त वीर्य धारक आदि।

इससे सिद्ध है कि अभिषेक अर्हंत का ही होता है। परन्तु पं० रूपचन्द जी कृत पंच मंगल पाठ बोलकर "सहस अठोतर कलसा प्रभू जी के सिर ढुरे" यह कहते ही जल कलसों से अभिषेक किया जाता है यह भगवान के जन्म समय का अभिषेक है। यह भी पूर्ण भक्ति का सूचक है। यह द्वितीय जन्म समय का मंगल पाठ है। इसका हम निषेध नहीं करते हैं किन्तु यह पंच मंगल पाठ भगवान के पांचों कल्याणकों का वर्णन एवं स्वरूप निरूपण है अभिषेक पाठ नहीं है। कई विद्वान भी ऐसा समझते और कहते हैं कि अभिषेक जन्म समय का ही होता है। भगवान को जन्म समय का ही मानकर ही अभिषेक किया जाता है। ऐसा समझने वाले विद्वान यह हेतु उपस्थित करते हैं कि अर्हंत भगवान समवसरण में विराजमान रहते हैं उनका अभिषेक नहीं होता है इसलिये उनकी प्रतिमा का भी अभिषेक नहीं होना चाहिये उनका यह तर्क मात्र है। यदि पूजन के पहिले भगवान का अभिषेक जन्म समय का ही माना जाय तो यह भी बिचारना पड़ेगा कि भगवान की प्रतिमा जिसका अभिषेक किया जाता है वह जन्म समय की है या केवल ज्ञानी वीतराग की है? वह प्रतिष्ठित मूर्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समवसरणस्थ केवली अर्हंत भगवान की ही है। यही आगम है ऐसा नहीं समझना चाहिये कि अभिषेक करते समय तो उस प्रतिमा को जन्म कल्याणक के समय की मानली जाय और पूजन करते समय उसे केवल ज्ञान कल्याणक की मानली जाय। यह तो मनमानी शास्त्र विरुद्ध बात है। केवल ज्ञान कल्याणक द्वारा अनन्त दर्शन अनन्तज्ञान अनन्तसुख, अनन्तवीर्य आदि गुणों से आरोपित प्रतिष्ठित मूर्ति को जन्म समय की किस आधार पर और प्रमाण से माना जा सकता है। और वैसा मानने से वह छद्मस्थ अल्प ज्ञानी और सपरिग्रह गृहस्थावस्था की मूर्ति माननी पड़ेगी परन्तु ऐसा मानना आगम विरुद्ध है। अभिषेक के समय में जिनेन्द्र सर्वज्ञ वीतराग की भक्ति ही की जाती है। मन्दिरों में दर्शन पूजन अभिषेक अर्हंत परमेष्ठी सर्वज्ञ वीतराग भगवान का ही किया जाता है। इसलिये अभिषेक, अभिषेक पाठ द्वारा ही होना वास्तविक है।

अर्हंत का अभिषेक नहीं फिर अर्हंत मूर्ति का क्यों ?

कुछ विद्वानों का जो यह तर्क है कि समवसरणस्थ अर्हंत भगवान का अभिषेक नहीं होता है तो उनकी प्रतिमा का अभिषेक भी नहीं होना चाहिये। ऐसा तर्क आगम के विरुद्ध है। आगम में नौ देवता माने गये हैं वे इस प्रकार हैं–

अरहंत सिद्ध साहू तिदयं जिणवेण धम्म पडिमा हूं
जिण णिलया इदि एदे णव देवा दिंतु मे वोहिं

अर्थ–अर्हंत, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय, साधु, ये तीन साधु जिन वचन (जिनवाणी) जिन धर्म, जिन प्रतिमा, जिन मंदिर, ये नव देवता हैं। इससे यह समझलेना चाहिये कि अर्हंत देवता भिन्न हैं और उनकी प्रतिमा देवता अलग है आगमानुसार साक्षात् अर्हंत भगवान का अभिषेक नहीं होता है किंतु उनकी अर्हंत प्रतिमा देवता का अभिषेक होता है।

कोई कोई विद्वान यह भी मानते हैं कि प्रतिमा का अभिषेक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये किया जाता है कि प्रतिमा पर धूलि आदि नहीं जमने पावे वह स्वच्छ बनी रहे। परन्तु ऐसा समझकर अभिषेक करना निष्फल ही केवल नहीं है किंतु अज्ञान भी है। धूलि दूर कर स्वच्छता बनी रहे ऐसा दृष्टिकोण भक्ति का द्योतक नहीं हैं। और न पुण्यवर्धक है और न सम्यग्दर्शन को प्रगट कर सकता है। भगवान का अभिषेक वड़ी श्रद्धा भक्ति से मोक्षफल प्राप्ति के लिये किया जाता है। अभिषेक पाठ के प्रारम्भ में कहा जाता है—

दूरावनम्र सुरनाथ किरीट कोटि संलग्न रत्नच्छवि
धूसरांघ्रि प्रस्वेद ताप मल मुक्त मपि प्रकृष्टैः भक्त्या
जलैः जिन पतिं वहुधाभिसिंचे। (अभिषेक पाठ)

इस श्लोक में भगवान को पसीना, ताप मल से रहित बताया गया है। हिन्दी में रचे हुए पद्य में कहा गया है—

सुमतो सहज पवित्र यही निश्चय भयो, तुम पवित्रता हेतु नहीं मज्जनठयौ। मैं मलीन रागादिक मल तैं है रह्यो महामलिन तन में वसु विधि वश दुख सह्यो बीतौ अनंतो काल यह मेरी अशुचितानागई, तिस अशुचित्ता हर एक तुम ही भरहु वाच्छांचित्तठई,, (जलाभिषेक पाठ)

इस पद्य द्वारा अभिषेक का उद्देश्य और फल दोनों बातों का भाव पूर्ण स्पष्टी करण किया गया है।

तेरापंथ वीसपंथ दोनों नाम तो कल्पित हैं किंतु उन पंथवाले दोनों ही धर्म परायण हैं

पूर्वाचार्यों द्वारा रचित किसी भी शास्त्र में तेरापंथ वीसपंथ का उल्लेख नहीं है। दो ढाई सौ वर्ष से ऐसा भेद और खींच तान चल पड़ी है। दक्षिण में सर्वत्र पंचामृताभिषेक ही होता है। और वहां तेरह वीसपंथ का कोई नाम ही नहीं जानता है आगमानुसार जो महाभिषेक और फल पूजन आदि पद्धति है। वही पद्धति आज तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रचलित है। उत्तर में तेरह वीस पंथ भेद होने का कारण यह प्रतीत होता है कि पंचामृताभिषेक में अधिक आरम्भ और अधिक समय तथा अधिक पदार्थों का संग्रह आदि की कठिनाई का अनुभव कर कुछ सज्जनों ने केवल जलाभिषेक चालू कर दिया। खींच तान में यहां तक परस्पर कहने लगे कि- हे भगवन् तेरापंथ ही हमारा है दूसरे पक्ष वाले कहने लगे कि हे भगवन् वीसों विस्वा पंथ हमारा है। इस खींच तान में तेरापंथ वीसपंथ ऐसे दो भेद पड़ गये। ये दोनों भेद कषाय के ही फल हैं।

शास्त्राधार यह है कि भगवान का अभिषेक दूध, दही आदि ऐसे शुद्ध द्रव्यों से ही करना चाहिये जिनको मुनिराज आहार में लेते हैं। इसी प्रकार पके फलों को मुनि भी आहार में लेते हैं। ऐसे फलों को भगवान के चरणों में चढ़ाने में सभी शास्त्रों में–विधान है। कच्चे फल हरितकाय होते हैं। पके फल अचित्त होते हैं।

नारिंग पूग कदली फल नारिकेलैः सोहं यजे वरफलैवरं सिद्ध चक्रम् (श्री पद्म नंदी आचार्य कृत सिद्ध पूजन) इसमें नारंगी, सुपारी, केला नारियल आदि फलों का उल्लेख है। हिंदी पूजनों में भी सर्वत्र पके फलों को चढ़ाने का विधान है देखिये–

नारंगी, बादाम, सुकेला, ऐला, दाड़िम, फल, सहकारि
(शान्तिनाथ पूजा)

इसी प्रकार सभी संस्कृत और हिंदी पूजनों में फलों के चढ़ाने का उल्लेख है।

पुष्पों के चढ़ाने का भी संस्कृत और हिंदी पूजनों में सर्वत्र विधान है देखिये–

नित्यं स्वदेह परिमाणमनादिसंज्ञं द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्यतीतं,
मंदार कुंद कमलादि वनस्पतीनां पुष्पैर्यजे शुभतमैवर सिद्ध चक्रम्,,
(आचार्य पद्मनंदीकृत सिद्धपूजा)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस संस्कृत पद्य में मंदार पुष्प कुंदपुष्प कमल आदि पुष्पों से पूजन करने का विधान है। इस श्लोक में वनस्पती के पुष्पों का नाम लिया गया है।

हिन्दी पद्यों में भी सर्वत्र पुष्पों के चढ़ाने का उल्लेख है देखिये

केवड़ा, गुलाव और केतकी चुनाइये
धारि चरण के समीप काम को नसाइये
(पार्श्वनाथ पूजा)

और भी—कमल केतकी जुही चमेली श्री गुलाव लेआवो इन सभी पूजनों में पुष्प चढ़ाने का विधान है। अब प्रश्न यह है कि पुष्पों में त्रस जीव होते हैं वे पुष्प कैसे चढ़ाये जायं ?

उत्तर में यह समझना चाहिये कि जैसे चावलों में त्रस जीव हो जाते हैं तो उन्हें अच्छी तरह सोधकर ही विवेकी पुरुष चढ़ाते हैं उसी प्रकार पुष्पों को भी अच्छी तरह सोधकर चढ़ाना चाहिये। जिन पुष्पों में अधिक त्रस जीव होते हैं। अथवा जिन पुष्पों से त्रस जीवों का निकालना कठिन है उन्हें नहीं चढ़ाना चाहिये। विवेक की सर्वत्र आवश्यकता है। यदि पुष्पों के चढ़ाने का विधान नहीं होता तो सभी संस्कृत पूजनों में पूर्वाचार्यों ने उनका उल्लेख किया है सो वे नहीं करते। सभी हिंदी पूजनों में पुष्पों को चढ़ाने का विधान है। विवेकी पुरुष सोध वीन करके शुद्ध द्रव्य ही भगवान के चरणों में चढ़ाते हैं।

जो पुरुष केवल जल से ही अभिषेक करते हैं और फल पुष्प नहीं चढ़ाते हैं। चावलों के रंगे हुए पीले पुष्प और लोग बादाम आदि फल ही चढ़ाते हैं तो वे भी भगवद्भक्ति से महान् पुण्य संचय करते हैं। जो पंचामृताभिषेक करते हैं। और ताजे २ केला, संतरा, अनार, आम चढ़ाते हैं वे भी महान् पुण्य संचय करते हैं।

भगवान के चरणों में केसर चंदन लगाने का विधान है

कोई२ विद्वान् कहते हैं कि भगवान के चरणों में केसर या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चंदन नहीं लगाना चाहिये। उसके लगाने से प्रतिमा सराग हो जाती है। और परिग्रह सहित हो जाती है परन्तु ऐसी कल्पना और समझ शास्त्र सम्मत नहीं है और युक्ति संगत भी नहीं है। ऐसी ऐसी बातें ही तेरह वीस पंथ के नाम से परस्पर में विरोध और खींच तान का कारण बन जाती हैं। इसलिये इस संबंध में थोड़ासा खुलासा कर देना हम आवश्यक समझते हैं।

पहली बात तो यह है कि सरागता और परिग्रहता स्वरूप दो प्रकार से होता है, यातो भगवान सरागी हों और इच्छा पूर्वक केसर चंदन को लगवाना चाहें या उसके लगाये जाने पर आनंद माने परन्तु यह असंभव बात है भगवान तो परम वीतराग हैं उनमें तो रागद्वेष एवं इच्छा आदि का लेश भी नहीं है इसलिये चाहे कोई उनके चरणों में चंदन लगावे अथवा कोई नहीं लगावे उससे उनका कोई संबंध नहीं है। इसी प्रकार उनके इच्छा नहीं रहने से केसर चंदन लगाने से भी वह उनका परिग्रह नहीं माना जा सकता है। यदि चंदन लगाने से सरागता और परिग्रहता भगवान में आती हो तो फिर भगवान का जल से अभिषेक कराने में और उनको छन्ना से पोंछने में भी सरागता और परिग्रहता आजायेगी। इसलिये भगवान का अभिषेक और उन्हें पोंछने का विधान भी नहीं करना चाहिये। भगवान को विराजमान करते समय श्री वर्ण एवं स्वस्तिक भी नहीं बनाना चाहिये जो कि उनकी विनय का चिन्ह है।

दूसरी बात यह है कि चंदन चर्चन भगवान के केवल चरणों ही लगाने का विधान है। उनके समस्त शरीर पर लगाने का विधान नहीं है जिससे प्रतिमा में श्रंगार प्रतीत होने से सरागता दीखे। हां महाभिषेक (पंचाम्रताभिषेक) के समय भगवान पर चंदन का अव-लेपन किया जाता है जैसाकि विधान है–

संशुद्ध शुध्या परिहार शुध्या कर्पूर संमिश्रित चंदनेन
जिनस्य देवासुर पूजितस्य विलेपनं चारु करोमि भक्त्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह बिलेपन पंचाम्रताभिषेक के मध्य की क्रिया है जैसा कि आचार्य पूज्यपाद आचार्य सोमदेव आदि सभी आचार्यों ने "अभिषेक पाठ" शास्त्र में लिखा है और पंचकल्याणक विधायकसभी प्रतिष्ठा पाठों में लिखा है।

अभिषेक के बाद चन्दन चर्चन केवल भगवान के चरणों में ही करने का विधान है। ऐसा विधान होने का हेतु यह है– लोक में सम्मान एवं पूजा सत्कार दो चीजों से ही मुख्य रूप से माना जाता है एक चन्दन के तिलक से दूसरे पुष्प माला पहिनाने से। भगवान की भक्ति भी इन्हीं दो चीजों से की जाती है परन्तु भेद इतना है कि गृहस्थों में परस्पर में बराबरी का व्यवहार होता है वे तिलक लगाकर और पुष्पमाला पहनाकर आदर सम्मान करते हैं। भगवान तीन लोक के स्वामी हैं अतः उनके मस्तक पर तिलक और गले में माला पहनाने का विधान नहीं है उनके चरणों में ही चन्दन और पुष्प क्षेपण किया जाता है।

यह चन्दन और पुष्पों का चरणों में रखना जिनेन्द्र भक्त पुजारी की पूर्ण श्रद्धा और भक्ति का ही सूचक है। भगवान को रागी और परिग्रही बनाने की उसकी हार्दिक भावना ही नहीं है। वह तो शास्त्राधार से यह दृढ़ श्रद्धान रखता है कि भगवान परम वीतराग सर्वज्ञ है।

एक बात यह भी है कि भगवान के चरणों में चन्दन और पुष्पों के रहने से यह बोध भी हो जाता है कि भगवान का अभिषेक और पूजा हो चुकी है। साथ ही भगवान में भक्त जनों का भक्ति पूर्ण विशेष धर्मानुराग भी चन्दन पुष्पों से बढ़ जाता है।

चन्दन चर्चन के प्रमाण

चन्दण सुगन्धलेओ जिणवर चरणेसु जो कुडइ भविओ
लहइ तणु विक्किरियं सहाव सुगन्धयं अमलं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(आचार्य देवसेन कृत भाव संग्रह) पृ० १०३ श्लोक ४७१

अर्थ– जो भव्य पुरुष जिनेन्द्र भगवान के चरण कमलों पर सुगन्धित चन्दन का लेप करता है वह सुगन्धित वैक्रियक शरीर प्राप्त करता है। महान् आचार्य का कितना स्पष्ट कथन है।

जिनेन्द्र भगवान के चरणों में चन्दन का लेप करने के सभी पूजा विधायक शास्त्रों से प्रमाण है कुछ प्रमाण दिये जाते हैं–

कर्पूर जोंगक लवंग त्रुटि प्रयंगु कंकोल पूर्वक करंवित चंदनोधैः
दूरं स्फुर त्यरि मलैर्जिनभर्तु रारात् विद्राणमंदैरपि चर्चयेंघ्रिम्

(प्रतिष्ठा सार)

अर्थात् कपूर लोंग कंकोल आदि मिले हुए चन्दन से भगवान के चरणों को मैं चर्चता हूँ। और भी प्रमाण–

सग्दन्ध सार घन सार विलेपनैश्च गंधागचालिकुल जात
तरु प्रकाण्डैः उद्यापनाय जिन पाद सरोज युग्मं मुक्ता
बलीव्रत परस्य यजेत भक्त्या

(मुक्तावली पूजा)

अर्थात् मुक्तावली व्रत के उद्यापन के समय भगवान के चरण कमलों को चन्दन से लिपन करना चाहिये। और भी प्रमाण–

काश्मीर कृष्णागरु गंधसार कर्पूर पौरस्त्यविलेपनेन
निसर्ग सौरम्यगुणोल्वणानाँ संचर्चाम्यंघ्रियुगं जिनानाम्

(आशाधर कृत जिनयज्ञ कल्प)

अर्थात् स्वभाव से ही अत्यन्त सुगन्धित ऐसे भगवान के चरण कमलों को केसर कपूर चन्दन आदि द्रव्यों से विलेपन करता हूँ। और भी प्रमाण–

जो जिण चन्दन चच्चइए

(योगद्रिदेव कृत प्राकृत श्रावकाचार)

अर्थात् जो भगवान का चन्दन से चर्चन करता है। और भी प्रमाण—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समृद्ध भक्त्या परया विशुद्धया कर्पूर सम्मिश्रित चंदनेन
जिनस्य देवासुर पूजितस्य सुलेपनं चारु करोमि मुक्त्यै
(पूजासार)

अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के लिए देवों से पूज्य भगवान को बड़ी भक्ति और विशुद्धि के साथ कर्पूर से मिले हुए चन्दन से विलेपन करता हूँ। और भी प्रमाण—

कुंकुमेन कर्पूरेण चन्दनेन सुगन्धिना
श्री जिनेन्द्र पदाम्भोजं विलेपेहं सुभावतः

अर्थात् भगवान के चरण कमलों को कुंकुम कपूर चन्दन आदि से लेपन करता हूँ।

इसी प्रकार शान्ति चक्र, ऋषि मण्डल, पंच कल्याण, कर्मदहन षोडशकारण, दश लक्षण, रत्नत्रय सार्ध द्वयद्वीप, इन्द्रध्वज, पंचमेरु, नन्दीश्वर पूजा आदि अनेक पूजा पाठों में भगवान के चरणों में चन्दन चर्चन चन्दन विलेपन का विधान है। और भी प्रमाणों को यदि दिया जाय तो ग्रन्थ का विस्तार होगा।

हिन्दी पूजनों में भगवान के चरणों में चन्दन चर्चने का उल्लेख है चौबीस भगवान की पूजन में स्पष्ट लिखा है—

गोसीर कपूर मिलाय केसर संगघिसों
जिन चरणन देत चढ़ाय भव आताप हरों

अर्थात् केसर कपूर मिलाकर चन्दन घिस कर भगवान के चरणों में चढ़ाता हूँ जिससे मेरा संसार का आताय दूर हो जाय।

भगवान के चरणों में चंदन लगाने और फूल चढ़ाने का तीर्थंकरों का उपदेश

भगवान के चरणों में चंदन लगाने और फूल चढ़ाने का तीर्थंकरों ने उपदेश दिया है। प्रमाण पढ़िये—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"चउवीसवितित्थयरा संपज्जा छज्जीव तंजहा-तरुवर छिंदण छिंदावणिद पादण पादावण तद्दहण दहवणादि वावारेण छज्जीव विराह ण हेउणा विणा जिणभवण करण करावण णाहाणुववत्तीदो ण्हवणोवलेपण संमज्जण छुहावण फुल्लारोवण धूवदहणादि वावरेंहि जीव विराधणा पूजा करणाणुवत्तीदो च,,

(जय धवला पृष्ठ १०० भाग १)

इसकी हिन्दी टीका में यह अर्थ लिखा है

"शंका–वृक्षका काटना और कटवाना, ईंट का गिराना और गिरवाना, उनको पकाना और पकवाना, आदि छहकाय के जीवों की विराधना के कारण भूत व्यापार के बिना जिन भवन का निर्माण करना और करवाना नहीं बन सकता है। तथा अभिषेक करना अवलेप करना संमार्जन करना चंदन लगाना, फूल चढ़ाना, और धूप जलाना आदि जीव वध के अविनाभावी व्यापारों के बिना पूजा करना नहीं बन सकता है। इस प्रकार छह काय के जीवों की विराधना के कारण भूत श्रावक धर्म का उपदेश करने वाले होने से चौवीसों ही तीर्थंकर सावद्य अर्थात् सदोष हैं,,

समाधान

"जइवि एव मुपदिसेंहि तित्थमरा तो विणतेंसिं कम्मवंधो अत्थि तत्थ मिच्छतासंजम कसायपच्चयाभावेण वेभाविक वज्जाससे कम्माणं वंधाभावादो णच तित्थयर मण वयण काय वुत्तीयो इच्छा पुव्वियाओ जेण तेंसिं वंधो होज्ज किंदु दिणयर कप्प रुक्खाणं पवत्तिओव्ववयि ससियाओ,,

(जय धवला पृष्ठ १०२ भाग १)

इसी की हिन्दी मुद्रितटीकामें यह अर्थ लिखा है—

"यद्यपि तीर्थंकर जिनालय बनबाने और पूजा आदि करने का उपदेश देते हैं तो भी उनके कर्म बंध नहीं होता है क्योंकि जिनदेव के तेरहवें गुण स्थान में कर्म बंध के कारण भूत मिथ्यात्व, असंयम और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कषाय का अभाव होजाने से वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष समस्त कर्मों का बंध नहीं होता है। तीर्थंकर के मन वचन काय की प्रवृत्तियां इच्छा पूर्वक नहीं होती हैं। जिससे उनके नवीन कर्म का बन्ध नहीं होता है। जिस प्रकार सूर्य और कल्पवृक्षों की प्रवृत्तियां स्वाभाविक होती हैं। उसी प्रकार उनकी भी मन वचन और काय की प्रवृत्तियां स्वाभाविक अर्थात् बिना इच्छा के समझना चाहिये,,

(जय धवला हिंदी टीका)

इस सिद्धान्तशास्त्र जय धवला के प्रमाण से यह भली भांति सिद्ध है कि जिन मन्दिर बनवाने और जिनेन्द्र भगवान की पूजा जो भगवान का अभिषेक करना, भगवान के शरीर पर चंदन केसर का लेपन करना, भगवान का संमार्जन करना, भगवान के चरणों में चंदन लगाना और भगवान के चरणों पर फूल चढ़ाना आदि का उपदेश चौवीस तीर्थंकरों ने दिया है। आचार्य शिरोमणि वीरसेन स्वामी ने जय धवला में शंका समाधान पूर्वक भगवान के अभिषेक, और उनके चरणों में चंदन लगाने तथा चरणों में पुष्प चढ़ाने का स्पष्ट उल्लेख किया है। अब जो कोई विद्वान् अथवा श्रावक भगवान के अभिषेक करने का और उनके चरणों में चंदन और पुष्प चढ़ाने का विरोध करते हैं उन्हें सब से महान् शास्त्र सिद्धान्त शास्त्र जय धवला के प्रमाण को देखकर उस निराधार मिथ्या विरोध को छोड़कर आगम पर श्रद्धा करना चाहिये। इससे बढ़कर और कौनसा प्रमाण हो सकता है।

यहां यह शंका हो सकती है कि गृहस्थ श्रावकों को तो पूजा अभिषेक चंदन चर्चन और फूल चढ़ाने आदि में आरंभी हिंसा होती है? इसका समाधान आचार्य समंतभद्र स्वामी ने बहुत उत्तम किया है—

पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य सावद्यलेशो बहुपुण्यराशिः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोषाय नालं कणिका विषस्य न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ

(वृहत्स्वयंपूस्तोत्र)

अर्थ— आचार्य समंतभद्र स्वामी भगवान की स्तुति में कहते हैं कि जो श्रावक जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता है उस पूजा विधि में अष्ट द्रव्यों द्वारा होने वाले आरम्भ में जो हिंसा (आरंभ जनित स्थावर जीवों की हिंसा) होती है उसमें पाप तो लेश मात्र लगता है किन्तु जिनेन्द्र पूजा से होने वाला पुण्य महान होता है। जैसे ठण्डे और मीठे प्रिय जल से भरे हुए समुद्र में एक कणी विष की डालदी जाय तो वह उस मीठे जल से भरे हुए समुद्र में कोई असर नहीं डाल सकती है।

अर्थात् भगवान की पूजा का आरम्भ सरसों बराबर तो दोष उत्पन्न करता है किंतु सुमेरु पर्वत के बराबर महान् सुख जनक पुण्य का संचय करता है।

आश्चर्य तो इस बात का है कि बहुत से लोग अपने सांसारिक इंद्रिय जन्य सुख के लिए तो फूलों को तोड़कर या तुड़वाकर फूलमाला पहनते हैं। चन्दनादि द्रव्यों से अपना उबटना करते हैं। भरे घड़ों से स्नान करते हैं। उस पापारंभ को तो करते हैं जिससे अशुभास्रव होता है परन्तु पूजादि धर्मारम्भ का निषेध करते हैं जिससे अशुभास्रव रुक जाता है और शुभास्रव होता है।

तीसरी मुख्य बात यह है कि जब उपर्युक्त पूजा अभिषेक चंदन पुष्प क्षेपण, जिन मन्दिर निर्माण और मुनिदान आदि धर्मारंभ का विधान तीर्थंकरों ने अपनी दिव्य ध्वनि द्वारा बताया है तो उसका पूर्ण श्रद्धान करना चाहिये, यही सम्यग्दृष्टि का लक्षण है।

तेरह बीस दोनों में धर्म भेद नहीं है

तेरह पंथ वालों और बीस पंथ वालों दोनों में किसी प्रकार का किंचित्मात्र भी धर्म भेद नहीं है। देव शास्त्र गुरु के दोनों परम भक्त और परम श्रद्धालु हैं। वर्तमान मुनिराजों में दोनों की पूर्ण श्रद्धा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। सर्वज्ञ कथित और पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित तत्वों पर दोनों का अटल श्रद्धान है। दोनों ही धर्मात्मा हैं। केवल पूजन प्रकरण में विवेक अविवेक एवं शुद्धता अशुद्धता का अपना दृष्टिकोण बनाकर थोड़ासा मतभेद पड़ गया है। फिर भी अष्ठ द्रव्यों से पूजन करते समय संस्कृत पद्य और हिन्दी पद्य दोनों ही एक बोलते हैं फल पुष्पों के नाम भी लेते हैं केवल सामग्री में भेद हैं। इसलिये कषाय से उत्पन्न कल्पित नाम तेरा बीस हटाकर यदि आगम पंथ अथवा आगम मार्ग एक ही नाम रहे तो परस्पर की भेद बुद्धि दूर हो जाय भले ही सामग्री का भेद वना रहे। यदि तेरह पंथ वीस पंथ नाम ही बने रहें तो भी परस्पर में एक दूसरे का विरोध नहीं करना चाहिये दोनों ही पक्ष अपने अपने आम्नाये से पूजन अभिषेक करें दोनों ही भक्ति श्रद्धा से भगवान की पूजा करते हैं। परस्पर प्रेम से उपासना करे। जिन मन्दिरों में भी नाम भेद हटा दिया जाय तो और भी सरल मार्ग वन जाता है। पूजा में सामग्री भेद बना रहे। किंतु भगनान तो दोनों के आराध्य देव हैं। अब समय चाहता है कि दोनों पक्षों को बिना आपसी विरोध के अपनी२ आम्नाय से सभी मन्दिरों में भगवान की भक्ति भाव से पूजा करना चाहिये। तेरा पंथी मन्दिर और बीस पंथी मन्दिर ऐसे नाम हटाकर दि० जैन मन्दिर यही नाम रखना चाहिये। दोनों मन्दिरों में सबों के आराध्य देव भगवान तो एक ही हैं।

पूजन के अंग और समर्पित सामग्री की शुद्धता

पूजन के सम्बन्ध में कुछ सज्जनों का यह भी मन्तव्य है कि जब जिनेन्द्र भगवान् वेदी में विराजमान हैं तो उनका आव्हान आदि क्यों किया जाता है? इसका समाधान दो शब्दों में कह देना पर्याप्त है। शास्त्र रचियता आचार्यों ने पूजन के पांच अंग बताये हैं आह्वाननं प्रतिष्ठापन सन्निधी करण, पूजन विसर्जन ये पांच अंग हैं। अभिषेक पूर्वक पूजन की जाती है अतः चतुः कोण कलश स्थापन आदि सात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंग भी बताये हैं। भगवान वेदी में विराजमान हैं परन्तु पूजा करने वाला भगवान को अपने हृदय कमल पर विराजमान करने की भक्ति-पूर्ण भावना से प्रेरित होकर भगवान को अपने पवित्र हृदय में विराज-मान करता है। यह दृढ़ श्रद्धा पूर्ण भक्ति का चिन्ह है। इसी के लिए वह भगवान का आव्हान करता है। उसी भाव से प्रक्रिया करता हुआ, वह पूजक आव्हानन, प्रतिष्ठापन और सन्निधीकरण मंत्रोच्चारण पूर्वक करता है। परन्तु अनेक सज्जन जिस ठौना में पुष्प क्षेपण करते हैं वे यह समझते हैं कि भगवान इन ठौने में क्षेपण किये गये पुष्पों में विराजमान हो गये हैं। इसी धारणा से वे उन पुष्पों को धूपदान की अग्नि में जलाते हैं। यह मिथ्या धारणा है शास्त्र सम्मत नहीं है। ठौणा के पुष्पों में भगवान नहीं बुलाये जाते हैं किन्तु भगवान का आव्हान अपने हृदय में करने की प्रक्रिया का सूचक पुष्पों का क्षेपण है भगवान के चरण सान्निध्य में हम पूजन कर रहे हैं इसकी त्रिवार सूचना ही मन्त्रों द्वारा पुष्पों से की जाती है। यद्यपि अतदाकार स्थापना का भी विधान है परन्तु पंचम काल में उसका निषेध है। अतः ठौना में जो क्षेपण किये जाते हैं वे विधिविधान की सूचना है उनमें भगवान की स्थापना नहीं हैं अतः उन्हें जलाना व्यर्थ ही केवल नहीं हैं किन्तु शास्त्र विरुद्ध मिथ्या धारणा है। थाल में चढ़ी हुई सामग्री और ठौना के पुष्प समान हैं। उन पुष्पों को चढ़ी हुई सामग्री में ही डाल देना चाहिये। यदि उन पुष्पों में भगवान की स्थापना मानकर उन्हें अग्नि में डाला जाता है। तब तो घोर अविनय ठहरेगा अतः शास्त्र विधान से ही पूजन करना हितकर है।

कुछ सज्जन भगवान के चरणों में चढ़ाई हुई सामग्री को अशुद्ध समझते हैं। यदि चढ़ी हुई सामग्री से हाथ छू जाय तो तुरन्त हाथ को धोते हैं। यह बहुत ही नासमझी की वात है। जो सामग्री भगवान की पूजा के लिए तंयार की जाती है वह तो शुद्ध है किन्तु वह सामग्री जब भगवान के चरणों में चढ़ादी जाता है तव वह और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी शुद्ध एवं परम शुद्ध हो जाती है उसे अशुद्ध समझना भूल है। उस चढ़ाई हुई सामग्री को पूजन करने के बाद शिर से लगाकर अपने को पवित्र बनाना चाहिये।

मूल बात यह है कि चढ़ाई हुई सामग्री निर्माल्य कही जाती है निर्मलस्य भावः नैर्मल्यम् अर्थात् वह निर्मल है अति पवित्र है इसी का का नाम निर्माल्य पड़ गया है उस सामग्री का उपयोग या ग्रहण करने का अधिकार किसी श्रावक को नहीं है। पूजक तो चढ़ा चुका उसका द्रव्य वह नहीं रहा। भगवान तो वीतराग हैं। उनका सम्बन्ध तो उस द्रव्य से हो ही नहीं सकता है। पुजारी ने अपनी भक्ति से अपने जन्म मरण को दूर करने एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए चढाई है। उस चढ़ी हुई सामग्री को मन्दिर के प्रांगण में वनाये गये कूट (चबूतरा जैसा) पर रख देना चाहिये उसे पक्षी खा सकते हैं या कोई अजैन भिक्षुक ले जासकता है। इसी प्रकार जो द्रव्य(रुपया पैसा नोट आभरण छत्र चवर आदि) मन्दिर के भण्डार में चढ़ाया जाता हैं। वह देव द्रव्य कहा जाता है। उसे अपने लिए लेने वाला श्रावक पाप का संचय कर दुर्गति को प्राप्त करता है। देव द्रव्य को ग्रहण करने वाले का सर्वनाश हो जाता है। ऐसा आगम है।

प्रतिमा में अतिशय पना

जिन प्रतिमाओं में विशेष अतिशय पाया जाता है उनमें अधिक आकर्षण एवं अधिक उपयोग लगता है। परिणामों में अधिक विशुद्धि भी होती है। श्री महावीर जी आदि अनेक क्षेत्रों में अतिशय वती मूर्तियां हैं। यह अतिशय प्रतिष्ठा, विधि की पूर्ण संपन्नता, मन्त्रों का विधिवत् पूर्ण प्रयोग प्रतिष्ठाचार्य की पूर्ण जानकारी और व्रत पालन पूर्वक विशिष्ट विशुद्धता आदि प्रतिमा में अतिशय प्राप्त होने के कारण हैं। प्रतिष्ठाचार्य की निस्पृहता और निर्लोभ वृत्ति भी विधिवत् आगमानुकूल कार्य में साधक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिष्ठाचार्य का बहुत सम्मान करना यथोचित भेंट भी करना यह प्रतिष्ठाकारक धनी का कर्तव्य है। परन्तु प्रतिष्ठाचार्य का कर्तव्य है कि प्रतिष्ठा जैसे परम पावन श्रद्धास्प्रद, धर्म कार्य में अधिक चाहना की भावना नहीं रक्खें, निरपेक्ष शुद्ध भावों से इस महान कार्य को वे करें।

नितान्त अनुचित बात

आज कल अधिकतर यह देखा जाता है कि गर्भ और जन्म कल्याणकों में तीर्थंकर भगवान के माता पिता प्रतिष्ठाकारक गृहस्थ पति पत्नी को बना दिया जाता है। यह शास्त्र विरुद्ध नितान्त अनुचित बात है। कहां तो परम शुद्ध तीर्थंकर भगवान जिनके जन्म होते ही चारों गतियों के जीवों को अन्तर्मुहूर्त समय तक सुख और शान्ति मिल जाती है और कहां आजकल के साधारण गृहस्थ भगवान के माता पिता बन जांय ? यह तो तीर्थंकर भगवान का घोर अविनय और दोषपूर्ण आरोप वन जाता है। प्रतिष्ठा पाठों में माता पिता की स्थापना घट या मंजूसा आदि में करने का विधान है। उसी के अनुसार विधि होना चाहिये।

भगवान के माता पिता निकट समय में मोक्ष जाते हैं आज कल के गृहस्थों को माता पिता बनाना भगवान का घोर अविनय और घोर अपमान है

जिन पवित्रात्मा महान् पुण्यशाली माता पिता ने भगवान का जन्म दिया है। जिन पिता को भगवान आदर की दृष्टि से देखते हैं और जिस माता की कुक्षि में भगवान का अवतरण हुआ है वे भगवान के माता पिता अति निकट काल में मोक्ष जाते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि इन्द्र भी जिनको नमस्कार करता है ऐसे माता पिता दूसरे कोई नहीं हो सकते हैं। आज कल के साधारण गृहस्थ भगवान के माता पिता कहे जावें यह तो भगवान का घोर अपमान है और महान दोष है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्त्रों द्वारा संकल्प करके भगवान के माता पिता की स्थापना की जाती है। वह स्थापना साधारण ग्रहस्थ में करना और उन साधारण गृहस्थों को भगवान के माता पिता मानना यह निंद्य बात है प्रतिष्ठाचार्यों को चाहिये यह पृथा कभी नहीं करावें। और प्रतिष्ठाकारक गृहस्थों को चाहिये कि वे भगवान के माता पिता कदापि नहीं बनें, अन्यथा वे भगवान के घोर अविनय करने वाले बन जायेंगे।

आचार्य मानतुंग स्वामी ने भक्तामर स्तोत्र की रचना करते समय भगवान आदिनाथ की स्तुति में कहा है–

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतम् तदुपमं जननी प्रसूता
सर्वादिशो दधति भानि सहस्त्ररस्मिम्
प्राच्येव दिग जनयति स्फुर दंशु जालमु

अर्थ– सैकड़ों स्त्रियां सैकड़ों पुत्रों को जन्म देती हैं किन्तु भगवान जैसा जगत्पूज्य पुत्र को जन्म देने वाली माता और कोई नहीं हो सकती है। जैसे समस्त दिशायें नक्षत्रों को धारण करती हैं किन्तु सूर्य को जन्म देने वाली एक पूर्व दिशा ही है। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान के माता पिता और कोई नहीं हो सकते हैं। साधारण गृहस्थ उस महा पुण्यशाली पद के सर्वथा पात्र नहीं हैं।

इसीलिये प्रतिष्ठा पाठों में गर्भ जन्म कल्याणकों के समय भगवान के माता पिता की स्थापना मंत्रों के संकल्प से घट अथवा मंजूसा आदि में करने का ही विधान है। आगम विरुद्ध स्थापना दोषाधायक होने के साथ प्रतिष्ठाचार्य एवं प्रतिष्ठाकारक दोनों के लिए अहितकर है।

भगवान के लिये उद्दिष्ट आहार भी निषिद्ध है

आजकल यह भी देखा जाता है कि दीक्षाकल्याणक के समय तीर्थंकर भगवान के लिये जहां आहार तैयार किया जाता है वहां उस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहार का संकल्पित एवं उद्दिष्ट रूप बन जाता है। भगवान के लिये आहार की बोली बुलबाई जाती है। जो गृहस्थ अधिक रुपये बोलता है उसी के यहां भगवान का आहार कराया जाता है। जब सामान्य मुनि भी किसी व्यक्ति के घर में आहार का संकल्प कर आहार नहीं लेते हैं वह उद्दिष्ट हो जाता है। वेतो वृत्ति परिसंख्यान पूर्वक जहां भी शुद्ध भोजन की योगाई मिल जाती है वहां आहार ग्रहण करते हैं। तब तीर्थंकर भगवान अधिक बोली द्वारा निर्णीत संकल्पित घर में आहार कैसे कर सकते हैं ? कभी नहीं करेंगे। इसलिये भगवान के आहार की बोली बुलवाना शास्त्र विरुद्ध है। इतना-द्रव्य का लोभ या लाभ भी नितांत अनुचित एवं त्याज्य है। आगम विरुद्ध भी है।

आचार्य शान्ति सागर जी ने निषेध कर दिया था

गजपंथ सिद्ध क्षेत्र पर जब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हुई थी तब उस क्षेत्र पर विराजमान कराने के लिये-अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु इन पांच परमेष्ठियों की दो-दो फुट की ऊंची पांच प्रतिमाएं आचार्य सुधर्म सागरजी की आज्ञा से हमने अपनी ओर से बनवाकर जयपुर से लेजाकर गजपंथ में उनकी प्रतिष्ठा कराई थी उस समय अनेक बोलियां प्रत्येक कार्य की बोली गईं थीं। भगवान के आहारकी भी बोली वोलीगई हमने उसका सभा मंच पर शास्त्राधार से विरोध किया विवाद बढ़ा वहीं पर आचार्य शांति सागर महाराज का संघ विराजमान था, निर्णयार्थ प्रतिष्ठाचार्य सहित महाराज के पास गये महाराज ने कहा कि आहार की बोली बोलने से भगवान के आहार का घर पहले से ही निश्चित होजायगा उसी घर में जाने से उद्दिष्ट दोष लगेगा। अतः आहार की बोली नही बोली जाय तव वह बोली नहीं कीगई।

प्रतिष्ठाचार्यों का कर्तव्य है वे आगम विरुद्ध कोई क्रिया नहीं करावें और कोई गृहस्थ मंदिर की आय के लिये या अपनी प्रतिष्ठा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के लिये आगम विरुद्ध कोई क्रिया कराना चाहे तो उसे रोक देवें। प्रतिष्ठाचार्यों का ही अधिकार एवं उत्तर दायित्व है। कि वे प्रतिष्ठा जैसे रत्नत्रय वर्धक महान् कार्य आगम के अनुसार ही करावें।

पंचकल्याणठाणव संजाद मज्झलोयस्मि
भण वयण काय सुद्धी सव्वे सिरसा णमस्सामि
(निर्वाण काण्ड)

जनेऊ धारण किये बिना जिन पूजन मुनिदान करने का अधिकार नहीं है

यज्ञोप वीत (जनेऊ) का धारण करना परमावश्यक है

यज्ञोपवीत, जनेऊ, ब्रह्मसूत्र, व्रह्म चिन्ह रत्नत्रय ये सब नाम पर्यायवाची हैं सबों का एक ही अर्थ है। पाक्षिक श्रावक से लेकर नैष्ठिक श्रावक (प्रतिमाधारी) तक जनेऊ सबों को पहनना चाहिये। जनेऊ रत्नत्रय का वाह्य चिन्ह है। और उत्तम वर्ण का सूचक चिन्ह है सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ये तीनों आत्मा के गुण हैं उन्हीं की प्राप्ति के लिये अथवा उन्हीं के पालक का यह जनेऊ वाह्य चिन्ह है। बिना जनेऊ के संस्कार हीनएवं शूद्रवत् उत्तमवर्णबाला भी प्रतीत तहींहोता है इतना ही नहीं किंतु पूर्वाचार्यों के वचनों का पालने वाला नहीं है। संस्कार हीन होने से रत्नत्रय भी प्रगट नहीं होता है। जैसे व्रताचरण की वाह्य क्रिया का पालन किये बिना आत्मा में शुद्धि एवं चारित्र की प्राप्ति नहीं होती है।

जनेऊ के धारण किये बिना जिन पूजा ओर मुनिदान देने का किसी को अधिकार नहीं है। ऐसी शास्त्रों की आज्ञा है। मुनिराज भी उसी के हाथों का आहार लेते हैं जिसके शरीर पर यज्ञोपवीत है।

जनेऊ पहिनने में विरोध किसी को नहीं है

दिगम्बर जैन समाज में चाहे बीस पंथ वाले हों चाहे तेरह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंथ वाले हों, जनेऊ पहनने में किसी को विरोध नहीं है, दोनों पक्ष वाले जनेऊ पहनते हैं, जनेऊ धारण करके ही जिन पूजन और मुनि दान देते हैं। परन्तु प्रमादवश कोई जनेऊ नहीं पहनते हैं। कोई ऐसे भी हैं जो जनेऊ पहिनने का इसलिये विरोध करते हैं कि यह जनेऊ पहनना ब्राह्मणों की प्रथा है जैनियों की नहीं है। ऐसा विरोध समाज नहीं करता है किन्तु कोई २ समालोचक कुतर्की विद्वान ही करते हैं। वे स्वयं भ्रमशील हैं। आगम एवं मुनियों पर श्रद्धा नहीं रखते हैं। और समाज को भी शास्त्राज्ञा से विचलित करना चाहते हैं।

ऐसे कतिपय इनेगिने विद्वान यहां तक कहते हैं कि भगवान तो परम वीतराग हैं उनकी पूजा भी बीतराग भाव से होना चाहिये। भगवान की पूजा में आठ द्रव्यों के आडम्बर की क्या आवश्यकता है ? यह प्रथा तो वैष्णवों की देखादेखी चल पड़ी है। विना सामग्री के रीते हाथ जोड़कर भगवान के दर्शन कर चले आना चाहिये। ऐसे लोगों की धर्म क्रिया विहीन मनोवृत्ति से कुछ भोले लोग वहक भी सकते हैं परन्तु धार्मिक आगम श्रद्धालु समाज ऐसी आगम विरुद्ध वातों पर कोई ध्यान नहीं देता है।

जो भी पूजा, पाठ, जनेऊ आदि सव वैष्णवों से आगया है तो फिर जैनियों का कुछ नहीं है, मन्दिर मठ आदि भी उन्हीं से लिया गया है तो मन्दिर पूजन आदि सब धार्मिक क्रियाओं को छुड़ाकर भगवान का स्मरण घर में ही कर लेना चाहिये। ऐसे विद्वान यह वता सकते हैं कि जनेऊ द्रव्य पूजा आदि वैष्णवों से लिया गया ऐसा पूर्वाचार्यों द्वारा रचित किसी शास्त्र में बता सकते हैं क्या ? या मनमानी निराधार कहते हैं। यह बात इतिहास सिद्ध है कि सबसे प्राचीन देव मूर्ति जैनियों की है। अतः जैनों से ही वैष्णवों ने देव पूजा ग्रहण को। और जनेऊ संस्कार भी अनादि सिद्ध है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य शान्तिसागर महाराज का उत्तर में विहार क्यों हुआ

परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर महाराज को दक्षिण से उत्तर में विहार कराने के लिए जब बम्बई से सेठ पूनमचन्द घासीलाल जी जौहरी को साथमें लेकर हमारे बड़े सहोदर भाई श्री० पं० नन्दनलाल जी शास्त्री (परमपूज्य आचार्य सुधर्म सागर महाराज) उनके पास गये थे तब यही निवेदन आचार्य महाराज से किया था कि उत्तर में अनेक जैन लोग जनेऊ नहीं पहनते हैं, खान पान भी बाजार का करते हैं आपका उधर विहार होने से उन सवों का एवं समाज का कल्याण होगा। परिणाम यह हुआ कि आचार्य महाराज का उत्तर में विहार हुआ और विशेषकर उन्होंने दो बातों की प्रतिज्ञा दिलाई एक जनेऊ धारण करो और शूद्र के हाथ का जल ग्रहण मत करो। इन दोनों वातों से लोगों के संस्कारों में बहुत परिवर्तन हो गया। खानपान में भी शुद्धता आगई और जिनके जनेऊ नहीं था उन्होंने जनेऊ धारण कर लिया। विवाह के समान यज्ञोपवीत भी एक प्रधान संस्कार है।

जनेऊ तीर्थंकर भी धारण करते थे

कंठे हारलतां विभ्रन् कटि सूत्रं कटीतटे
व्रह्म सूत्रोपवीताङ्ग सगांगौ धमिवाद्रिराट्
(आदि पुराण पत्र ५८०)

भगवज्जिनसेनाचार्य ने आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव का वर्णन करते हुए लिखा है कि भगवान जब गृहस्थ थे तब उनके कण्ठ में हार था कटि में करिधौनी थी, और उनके शरीर पर व्रह्मसूत्र जनेऊ था।

जब जनेऊ भगवान आदिनाथ पहनते थे तव यह प्रथा वैष्णवों से आई है ऐसा समझना महा भूल भरा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और भी प्रमाण

द्विर्जातोहि द्विजन्मेष्ट क्रियातो गर्भतश्चय:
क्रियामंत्र विहीनस्तु केवलं नामधारक:

(आदि पुराण पत्र १३४८)

मोक्ष प्राप्ति का अधिकार द्विजन्मा को ही है। एक गर्भ से जन्म माना जाता है दूसरा क्रिया से जन्म माना जाता है। गर्भ से जन्म तो सभी का होता है परन्तु यज्ञोपवीत आदि क्रियात्मक संस्कार उच्च वर्ण वालों का ही होता है। जो क्रिया, मंत्र से रहित है वे नाम मात्र के जैन हैं।

जनेऊ के विषय में महत्वपूर्ण कथन

स्वायंभुवान्मुखाज्जाता स्ततो देव द्विजा वयम्
व्रतचिन्ह च सूत्रं च पवित्रं सूत्र दर्शितम्
शरीर जन्म संस्कार जन्म चेति द्विधा मतम्

(आदि पुराण)

भगवान आदिनाथ के समय में जिन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया था वे कहने लगे कि—

भगवान-स्वयंभू आदिनाथ के मुख से सुनकर हम लोगों ने व्रत चिन्ह-यह जनेऊ धारण किया है। यह पवित्र है। शरीर से जन्म लेना तो सभी को होता है किंतु यह जनेऊ संस्कार से जन्म कहलाता है। आज हम लोग देवों के समान द्विज बन गये हैं।

जाति: सैव कुलं तच्च सोस्मियोहिप्राक्तन
तथापि देवतात्मानमात्मानं मन्मते भवान्

(आदिपुराण)

हमारी वही पवित्र जाति है। वही पवित्र कुल है और वही मैं हूं जो पहले था। तो भी आज जनेऊ धारण करने से मैं देवता के समान माना जाता हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जनेऊ धारण करने का फल

वाल्य एव ततोऽभ्यस्येत् द्विजन्मौपासिकीं श्रुतिम्
स तथा प्राप्त संस्कारः स्वपरोत्तारको भवेत्
(आदि पुराण)

अर्थात् यज्ञोपवीत धारण करने वाला बालक अवस्था से ही उपासकाचार सूत्रानुसार संस्कार सहित धार्मिक क्रियाओं को करता हुआ अपना और दूसरों का तारक बन जाता है। अर्थात् परंपरा मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

इस सम्बन्ध में अधिक लिखना अनावश्यक है। यह निर्विवाद सर्व मान्य शास्त्र सम्मत विषय है। संस्कारों के विषय में भगवज्जिन सेनाचार्य, गुणभद्राचार्य, योगींद्राचार्य, इन्द्रनन्द्याचार्य पूज्यपादाचार्य आदि पूर्वाचार्यों ने विधान बताया है।

आदि पुराण का स्वाध्याय करने से यह भी विदित होगा कि भरत चक्रवर्ती ने भगवान ऋषभदेव के समवसरण में जाकर भगवान के सामने यह कहा था कि भगवन् मैंने श्रावकों को व्रत चिन्ह स्वरूप जनेऊ धारण कराकर द्विजन्मा बनाया है।

ऊपर के श्लोकों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वर्ण, जाति, कुल शुद्धि अनादि काल से चली आई है। भगवान ऋषभदेव ने अपने अवधि ज्ञान से प्रत्यक्ष देखकर विदेह क्षेत्र में जैसी वर्ण जाति कुल शुद्धि की परिपाटी थी उसी का विधान भरत क्षेत्र में चालू किया था, जैसा कि वर्ण जाति की अनादि सिद्धता में आदि पुराण का प्रमाण दिया जा चुका है।

चारों अनुयोगी शास्त्र अध्यात्म हैं।
चारों से स्वात्म सिद्धि होती है

अध्यात्म विषय आत्मा की साधना का मुख्य विषय है अध्यात्म के समझने में आजकल कोई कोई विद्वान् भी भ्रमशील बन गये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा अध्यात्म के नाम पर भ्रमपूर्ण मिथ्या प्रचार भी ऐसा किया जारहा है जिससे सम्यग्ज्ञान और चारित्र का पालन तो दूर रहा किंतु दि० जैन धर्म के अनुयायिओं से वे छुड़ाये जारहे हैं। ऐसी दशा में सम्यग्दर्शन का तो मूल में ही अभाव है। ऐसे विद्वान् और उनका एक गठन (मिशन) अध्यात्म का अर्थ यह समझता है कि आत्मा का ही विषय जिस शास्त्र में हो वही अध्यात्मशास्त्र है ऐसा समझकर अन्य सभी अनुयोगों के सभी शास्त्रों को छोड़कर केवल समयसार को ही वे लोग अध्यात्म बताते हैं। समयसार का ही शास्त्रसभा में और अपनी गोष्टी एवं अपने मिशन में वाचन करते हैं। अन्य सभी शास्त्रों को वे केवल अनुपयोगी ही नहीं कहते हैं किंतु उन्हें अप्रमाणिक भी ठहराते हैं। समयसार को वांचकर उसका भाव भी विपरीत ग्रहण करते कराते हैं। चारित्र का तो निषेध करते ही हैं साथ में अपने को परमात्मा समझते हैं ।और संसारी सभी जीवों को चाहे किसी गति में क्यों नहीं हो शुद्ध मानते हैं उनका यह स्पष्ट प्रचार है कि आत्मा द्रव्य है वह सदैव शुद्ध है, पर्याय में अशुद्धता आती है। कर्मों का आत्मा से कोई संबंध नहीं हैं वे जड़ हैं मूर्तिक हैं, आत्मा चेतन है अमूर्तिक है। मूर्तिक और अमूर्तिक का संबंध कभी नहीं होता है। इस प्रकार की समझ से ये नवीन विचार धारा वाले मिशन और उनके प्रयोजन साधक विद्वान् समाज को दिशा भूल करना चाहते हैं इतना ही नहीं किंतु अंगांग ज्ञानी धरषेण भूतवलि पुष्पदंत, कुंदकुंदाचार्य, समंतभद्र जिन सेनाचार्य अकलंक देव आदि पूर्वाचार्यों के रचे हुए शास्त्रों के कथन का लोप करना चाहते हैं।

अध्यात्म का स्पष्टीकरण तथा उसका स्वरूप भेद

अध्याय का स्वरूप कई प्रकार का है। एक तो यह है कि आत्मा में आत्मा के द्वारा आत्मा का ध्यान करना अर्थात् आत्मा में तन्मय होकर लीन होजाना यह अध्यात्म का स्वरूप योगी पुरुषों में पाया जाता है। जैसा कि पं० दौलतरामजी ने छहढाला में कहा है–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहं ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प वचभेदन जहां ध्यान कौन ध्येय कौन ध्याता कौन ऐसा भिन्न भिन्न विकल्प और वचन भेद जिस आत्मा में नहीं होता है वह आत्मा अध्यात्मा है।

दूसरा अध्यात्म वह है कि जो अन्य पदार्थों को छोवकर केवल आत्मा के चिंतवन में ही अपना उपयोग लगाता हैं वह भी अध्यात्म विषय है।

तीसरा अध्यात्म वह है कि आत्मा के स्वरूप साधक जो शास्त्र हैं उनका स्वाध्याय करना यह अध्यात्म है। पहला भेद मूल साध्य है दूसरा उसका साधक है तीसरा वाह्य साधक है। वर्तमान में तीसरे पर ही विचार करना है। जो लोग केवल समयसार को ही अध्यात्म कहते हैं इसमें आत्मा के शुद्ध स्वरूप का मुख्य रूप से कथन है। परंतु उसमें भी केवल शुद्धात्मा का ही कथन नहीं है। उसमें निश्चय नय के विवेचन के साथ व्यवहार नय का भी कथन है जिसकी व्याख्या आचार्य अमृतचंद्र सूरि ने साध्य साधक रूप से की है अर्थात् व्यवहार को साधक और निश्चय को साध्य बताया है। व्यवहार मुनिपद है उसके बिना निश्चय प्राप्ति असंभव है। इसी प्रकार जीव के विभाव भावों का निमित्त कर्म है और कर्मों के आने का निमित्त संसारी जीब है यह सब विषय समयसार में बताया गया है।

जिस प्रकार अध्यात्म का कथन करने वाला समय सार द्रव्यानुयोग शास्त्र है उसी प्रकार आत्मा को सांसारिक वासनाओं से हटाने वाला असदाचार रूप पाप प्रवृत्ति को रोकने वाला और अभक्ष्य भक्षण, रात्रि भक्षण हिंसादि पापमूलक खोटी क्रियाओं का त्याग कराने वाला चरणानुयोग शास्त्र है। चरणानुयोग शास्त्र के स्वाध्याय से पाक्षिकाचार नैष्ठिकाचार साधकाचार का परिज्ञान एवं प्रतिज्ञा रूप त्याग परिणति होती है। उससे संसार से विरक्ति होती है ऐसा निवृत्ति रूप परिणाम अध्यात्म का मूल साधक है। विना चारित्र धारण किये आत्मा की साधना अशक्य है इसलिये चरणानु योगीशास्त्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नकरंडश्रावकाचार, सागारधर्मामृत चारित्रसार अनगारधर्मामृत मूलाचार भगवती आराधना षटप्राभृत अष्ट पाहुड आदि चरणानुयोगों शास्त्रों का स्वाध्याय परमावश्यक है। ये सभी शास्त्र अध्यात्मक है। इनके स्वाध्याय के विना अध्यात्म की सिद्धि नहीं हो सकी है। अथवा यों कहना चाहिये कि चारित्र धारण करना ही अध्यात्म है और वह चारित्र धारण—चारित्र स्वरूप विधायक शास्त्रों से ही होता है। वे शास्त्र भी अत्यात्म शास्त्र हैं।

प्रथमानुयोग भी अध्यात्म है

प्रथमानुयोग के शास्त्र भी अध्यात्म है त्रेसठ शलाका के पुरुषों का और मोक्षगामी सभी पुरुषों का जीवन चरित्र पढ़ने से आत्मा में तुरन्त गहरी जागृति होती है। कितने पुरुषों ने कैसे कैसे कार्य किये हैं किन किन पुरुषों का किन २ निमित्तों से उद्धार एवं कल्याण हुआ है किन२ के परिणाम किन २ कारणों से संसार से विरक्त हुए हैं। भवों का वर्णन बाचने और सुनने से आत्मा में जागृति और स्वात्म साधन की ओर तीव्र भावना और लगन हो जाती है। प्रथमानुयोग में पुण्य पुरुषों और पूतात्माओं का जीवन चरित्र पढ़ने में मन भी लगता है। उपयोग विषयाभिलाषाओं से हटता है इसलिए प्रथमानुयोग के कथानकशास्त्र अध्यात्म हैं उनके स्वाध्याय से आत्मा की ओर परिणति नियम से बदलती है। अतः प्रथमानुयोग के शास्त्रों का स्वाध्याय आत्मा के हित के लिए सवसे प्रथम उपयोगी एवं आवश्यक है। वे शास्त्र भी अध्यात्म शास्त्र हैं।

करणानुयोगी शास्त्र भी अध्यात्म हैं

करणानुयोगी शास्त्रों में तीनों लोकों का स्वरूप कहा गया है। जंबू द्वीप मध्य में है वह एक लाख योजन का है एक योजन दो हजार कोस अथवा चार हजार मील का होता है। यह बड़ा योजन होता है अकृत्रिम वस्तुओं का माप सर्वस्त्र बड़े योजन से ही लिया जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृत्रिम वस्तुओं का माप छोटे योंजनों से लिया जाता है छोटा योजन चार कोस अथवा आठ मील का होता है। जैसे इंद्र ने तीर्थं करके जन्म कव्याणक में भगवान को सुमेर पर्वत पर ले जाने के लिये हाथी तयार किया वह हाथी कृत्रिम योजन का तैयार किया। जंबू द्वीप से दूने-दूने विस्तार—वृत्ताकार असंख्याते द्वीप समुद्र हैं। कहाँ नरक है कहां स्वर्ग है कहां सर्वार्थ सिद्धि विमान हैं। कहां सिद्ध लोक है। यह सव परिज्ञान करणानु योगी शास्त्रों के स्वाध्याय से होता है। यदि शास्त्राधार से इस अकृत्रिम लोक रचना, त्रसनाद्री, राजू परिज्ञान स्थावर और निगोद स्थान आदि का परिज्ञान नहीं किया जाय अथवा उनका शास्त्रोक्त श्रद्धान नहीं किया जाय तो सम्यग्दर्शन हो नहीं हो सकता है। जो अध्यात्म का मूल गुण है। आज कल विदेशी आविष्कारक भौतिक खोज करने वाले विद्वानों ने पृथ्वी का परिमाण अत्यन्त छोटा मान लिया है कि पूरा भारत क्षेत्र भी उस माप में नहीं आता है। फिर नरक स्वर्ग एवं असंख्यात द्वीप समुद्रों का सद्भाव तो उनकी समझ से सर्वथा वाहर है। इसलिये लोक स्वरूप की श्रद्धा करणानुयोगी शास्त्रों से ही होती है। और शास्त्रोक्त श्रद्धान ही व्यवहार एवं निश्चय सम्यक्त्व का साधक है अतः करणानु योग भी अध्यात्म है। शास्त्रों में वीज सम्यक्त्व आदि दश भेद सम्यक्त्व की उत्पत्ति के वताये गये हैं। करणानु योग में त्रिलोकसार, जम्वूद्वीप प्रज्ञप्ति त्रिलोक प्रज्ञप्ति आदि शास्त्र गर्भित हैं। तत्त्वार्थ सूत्र आदि शास्त्र करणानुयोग चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग वाले हैं।

द्रव्यानुयोग भी अध्यात्म है

द्रव्यानुयोगी शास्त्रों के स्वाध्याय से छह द्रव्य, द्रव्यगुण पर्याय, कर्म सिद्धान्त, जीव स्वरूप निश्चयनय व्यवहारनय, प्रमाण, निक्षेप, चतुगति, जीव समास, आदि का परिज्ञान होता है। वहिरात्मा, अंतरात्मा परमात्मा आदि वोध द्रव्यानुयोगी शास्त्रों से ही होता है। अतः द्रव्यानयोग भी अध्यात्म है जीव के उत्थान और मुक्ति के सहायक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारों अनुयोग है अतः चारों ही अध्यात्म हैं। जो लोग केवल समय स्तर को ही अध्यात्म समझते हैं वे वड़ी भूल करते हैं इतना ही नहीं किन्तु निश्चय ऐकांती अथवा निश्चयाभासी वन जाते हैं और शेष तीनों अनुयोगों को अनुपयोगी समझते हैं द्रव्यानुयोग में द्रव्यसंग्रह, वृहद्रव्य-संग्रह, सर्वार्थ सिद्धि राजवार्तिक श्लोकवार्तिक अष्ट सहस्री, प्रमेय कमल मार्त्तंड गोम्मटसार लब्धिसार क्षपणासार, जयधवल, महाधवल आदि शास्त्र गर्भित हैं। वैसे इनमें चारों अनुयोगों का विषय विवेचन भी आज्ञता है। परन्तु मुख्य कथन द्रव्यों का एवं जीव तत्व का ही है।

प्रथम प्रथमानुयोग और चरणानुयोग

अध्यात्म की प्राप्ति एवं साधना के लिये गृहस्थों को सवसे प्रथम प्रथमानुयोग शास्त्रों का—पौराणिक कथाओं का स्वाध्याय ही अत्युप-योगी है। तथा चरणानुयोग शास्त्रों का स्वाध्याय करना चाहिये। समयसार धवलादि सिद्धान्त शास्त्र मुनियों के लिये ही अधिक उपयोगी है क्योंकि जो चारित्र का पालन महाव्रत रूप में पालन करते हैं जिनका ध्येय केवल स्वात्म साधन ही है। वे ही सिद्धान्त शास्त्रों के पढ़ने और उनसे वास्तविक एवं यथार्थ लाभ लेने के अधिकारी हैं।

प्रथमं चरणं करणं द्रव्यं नम:

जैन दर्शनाचार्य– श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक

विरचित इस ग्रन्थ का श्रावक धर्म, स्त्रियों द्वारा अभिषेक विधान, तथा पूजन प्रकरण और यज्ञोपवीत एवं अध्यात्म विषय का निरूपक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छठा अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ सातवां अध्याय

वर्तमान मुनियों में हीन संहनन होने से उत्कृष्ट तपश्चरण संभव नहीं है किन्तु

उनकी चर्या और भावलिंग चतुर्थकाल के मुनियों के समकक्ष है ।

वर्तमान में मुनियों का विहार समाज के कल्याण का ही साधक है उनका संसार विरक्त निष्पृह एवं निष्कषाय जीवन स्व-पर हित में लगा हुआ है । शास्त्रों से अनभिज्ञ कुछ लोग यह समझते हैं कि मुनि पंचम काल में नहीं होते हैं, चतुर्थ काल में हीं होते हैं । इसलिये आजकल के मुनि मुनि नहीं हैं । इस मिथ्या धारणा से वर्तमान मुनि राजों में उनकी श्रद्धा नहीं है । नवीन पंथ प्रसारक लोग यह कहते हैं कि वर्तमान मुनि द्रव्यलिंगी हैं उनमें सम्यग्दर्शन नहीं हैं सभी मिथ्यादृष्टि हैं । ऐसे विचार वाले लोग अपना और दूसरों का अहित तो करही रहे हैं साथ में खोटे कर्मों का बंध भी कर रहें हैं । मुनियों के संबंध में शास्त्र क्या कहते हैं सो समझ लेना चाहिये ।

भगवद्कुंद कुंदाचार्य, सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्यनेमीचंद्र आचार्य सोमदेव आदि आचार्यों ने स्वरचित शास्त्रों में यह स्पष्ट लिखा है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचमकाल के अन्त तक भावलिंगी (सम्यग्द्रष्टि और सम्यक्चारित्र-धारी मुनि होंगे।) आर्यिकाएँ भी होंगी। जब शास्त्रों का ऐसा विधान है तब आज तो पंचमकाल का प्रारंभ ही है केवल ढाई हजार वर्ष गये हैं। पंचमकाल में अभी अठारह हजार वर्ष बांकी हैं। यह पंचमकाल अवनतशील (क्रम-क्रम से धर्म के ह्रास का समय) है जब पंचमकाल के अंत तक भाव लिंगी मुनि होंगे तब आजकल भाव लिंगी मुनियों का अभाव बताना शास्त्रों की अजानकारी या कर्मोदय वश अश्रद्धा है। चतुर्थकाल में वज्र वृषभ नाराच उत्तम संहनन होता था, तब वे उत्तम तपश्चरण करने में पूर्ण समर्थ थे। आजकल असंप्राप्त सृपाटिकाहीन संहनन होने पर वर्तमान मुनिगण शीत उष्ण परीषह, घोर, उपसर्ग, सहन उपवास आदि कर रहे हैं। निरन्तर ध्यान और स्वाध्याय करते हैं। बचे हुए समय में श्रावकों एवं अन्य लोगों को धर्मोपदेश देकर उन्हें धार्मिक प्रतिज्ञाएँ दिलाते हैं। साथ ही अंतरंग में रत्नत्रय का परि-पालन करते हुए वाह्य में अट्ठावीस गुणों का पालन करते हैं। प्राण संकट में सल्लेखना समाधि मरण भी करते हैं। ऐसी अवस्था में जो लोग वर्तमान सभीं मुनियों की निन्दा, आलोचना और मिथ्या आक्षेप करते हैं ऐसा मुनियों का घोर अविनय देखकर धार्मिक समाज में बहुत क्षोभ और दुःख होता है।

आचार्य सोमदेव ने लिखा है :—

काले कलौ चले, चित्ते देहे चान्नादि कीटके
एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूपधरा नराः

अर्थ—वर्तमान समय कलियुग है। इसका आशय यह है कि आजकल देशकाल और राज्य भी नग्न साधुओं का विहार नहीं देखना चाहता है। और तो क्या दिगम्बर धर्मधारी कहे जाने वाले कुछ पढ़े लिखे लोग भी मुनियों की निंदा करते हैं इतना देखते हुए जानते भी मुमिगण निर्भीक रूप से सर्वत्र विहार कर रहे हैं। दूष्ट वचन, और विरोध वाधाओं को सहते हुए भी निर्विकार रहते हैं। फिर आजकल चित्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चंचल हैं। सांसारिक वासनाओं में दौड़ता है। मोहित होकर ममत्व बुद्धि करता है, आत्म साधन में स्थिर नहीं होता है ऐसे चंचल मन और इन्द्रियों को वश में करके मुनिगण निर्ममत्व और निस्पृह भाव में लगे हुए हैं। फिर शरीर की दशा यह है कि शक्ति-सामर्थ्य कम होने से आज का मनुष्य अन्न का कीड़ा बन गया है। दिन भर और रात भर खाता पीता है। ऐसी शारीरिक परिस्थिति में भी मुनिगण दिन में—आहार बेला के समय एक बार ही भोजन करते हैं। अनुकूल प्रतिकूल जैसा भी शुद्ध आहार मिल जाता है उसे वे ग्रहण कर लेते हैं। यदि २।४ उपवास भी करते हैं उसके बाद पारणा (आहार) के लिये जाते हैं वहां यदि वृत्ति परिसंख्यान अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आहार की योगाई नहीं मिली तो फिर विना खेद के फिर उपवास करते हैं। यदि शुद्ध आहार लेने लगे किंतु प्रारंभ में ही कोई अंतराय आगया तो आहार छोड़ देते हैं जल भी नहीं ले सकते हैं। कण्ठ सूख जाता है तब भी शान्ति परिणामों से धर्म साधन में लगे रहते हैं। वर्तमान मुनियों के इस तपश्चरण को देखते हुए आचार्य सोमदेव कहते हैं कि यह आश्चर्य की बात है कि आज भी मुनि रूप में सिंह वृत्ति से विहार करते हुए नग्न दिगम्बर साधु दीख रहे हैं। धार्मिक समाज उनके दर्शनों के लिये लालायित रहता है और उनका दर्शन करके तथा उन्हें आहार दान देकर अपने को परम सौभाग्यशाली मानता है अपने कर्मोदय वश कुछ साक्षर लोग भी मुनियों पर मिथ्या आक्षेप करते हैं यह उनका होन-हार है। हां यह भी सच है कि एक दो मुनि शिथिलाचारी भी हैं ऐसे मुनियों को उनके पास जाकर समझाना चाहिये कि आपने घर सम्पत्ति परिवार क्यों छोड़ा है? मुनि पद भारी पुण्य से प्राप्त किया है। उस अमूल्य रत्न को सम्हालना चाहिये यदि वे मुनि नहीं मानते हैं तो उन्हें किसी आचार्य संघ में ले जाने का प्रयत्न करना चाहिये। उन्हें समझाने और सुमार्ग पर लाने की सामर्थ्य और अधिकार उन्हीं को है। परन्तु जिनकी मुनियों पर श्रद्धा नहीं है साथ ही स्वयं की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आहार विहार में निर्मर्याद प्रवृत्ति है। ऐसे लोग सभी मुनियों की निंदा करते हैं यह सर्वथा निंद्य है। ऐसे लोग मुनि मार्ग को ही समाप्त करना चाहते हैं। जब दि० जैन धर्म का उच्च आदर्श ही नहीं रहेगा तो गृहस्थों की निर्मर्याद अत्यन्त धर्म विहीन दशा हो जायेगी। चतुर्थ काल में भी कोई २ मुनि शिथिलाचारी हो जाते थे। आचार्य उनकी दीक्षा तक छेद कर देते थे। और नये रूप में दीक्षा देते थे फिर वे मुनि अपने कल्याण में लग जाते थे। इसलिये स्वात्म साधन में दृढ़ता से लगे हुए और वाह्य चर्या में भी सावधान रहने वाले सभी मुनियों पर आक्षेप करना नितांत अनुचित एवं पाप वंध का कारण है।

जिन लोगों में व्यवहार सम्यक्त्व का भी ठिकाना नहीं है वे लोग सभी मुनियों को द्रव्यलिंगी कहते हैं सो यह उनका पूरा अज्ञान है। श्रावक तो मुनियों की वाह्य चर्या (अठाईस मूल गुण) ही देखेगा। यदि मुनि उसका पालन सावधानी से करता हुआ प्रतीत होता है तो श्रावक बड़ी श्रद्धाभक्ति से मुनिराज के दर्शन कर उनके चरणों में अपना मस्तक रख देगा और उनके धर्मोपदेश से अपना कल्याण करेगा।

अंतरंग में मुनियों को सम्यग्दर्शन है या नही इसे तो केवली भगवान या मन-पर्यय तथा परमावधि, सर्वावधि ज्ञानी ही जान सकते हैं। अज्ञानी पुरुष अंतरंग के गुणों को कभी नही जान सकता है। श्रावक तो द्रव्यलिंग ही देखते हैं। पींछी कमंडलु सहित साधुचर्या से विभूषित मुनि को देखकर जो श्रावक श्रद्धाभक्ति द्वारा उनकी विनय और पूजा करता है वही श्रावक धर्मात्मा है। तत्वार्थ सूत्र महाशास्त्र में पुलाक वकुश कुशील निग्रंथ और स्नातक ये पांच भेद मुनियों के बताये हैं। ये पांचों ही भावलिंगी होते हैं ऐसा आचार्यों ने बताया है। उनमें पुलाक मुनि कुछ शिथिल होते हैं। नया कमंडलु पीछी का भी उन्हें ममत्व रहता है। तीव्र गरमीं में शरीर पर कमंडलु का जल भी डाल लेते हैं फिर भी उन्हें भावलिंगी मुनि शास्त्राकार आचर्यों ने बताया है। सर्वार्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धि में तो पूज्यपाद आचार्य ने यहां तक लिखा है कि—क्वचित् कदाचित् मूल गुण विराधनामपि करोति अर्थात् ऐसे पुलाक मुनि कभी कहीं पर अठ्ठाईस मूल गुणों में से किसी गुण की विराधना भी कर डालते हैं तो भी उन्हें भाव लिंगी मुनि बताया गया है नग्नता आदि मुख्य गुणों को विराधना हो जाय तो वह मुनि नहीं रहता है। मुनिपद से भ्रष्ट कहा जायगा। किस प्रकार की कितनी शिथिलता होने पर भी मुनि पद कहां तक बना रह सकता है इस वात का निर्णय पूर्वाचार्यों ने दिया है उसे मानना चाहिये। थोड़ी सी शिथिलता या चर्या में कुछ कमी देखकर झट घोषणा (फतवा) कर देना कि यह मुनि नहीं है, तो यह महान अपराध है। एक उत्तम पात्र को अपात्र ठहराना पूरा अविवेक एवं अज्ञान है आचार्यों ने सूक्ष्मदृष्टि से इस विषय पर विचार कर ही मुनिपद का स्वरूप बताया है।

सम्मेद शिखर पर जब चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शांति सागर महाराज संघ सहित पधारे थे तब वहां पंच कल्याणक प्रतिष्ठा, संघ संचालक संघभक्ति शिरोमणि सेठ पूनमचंद घासीलाल जोंहरी ने कराई थी उसमें सवालाख के लगभग समाज इकठ्ठा हुआ था उस समय एक उच्च कोटि के विद्वान् ने हमसे वहीं पर पूछा था कि जब श्रावक पहाड़ पर कुंथुनाथ की पहली टोंक तक ४/५ घंटे में चढ़पाते हैं तब आचार्य महाराज दो ढाई घंटे में ही वहां पहुँच जाते हैं इतनी जल्दी चलने से ईर्या पथ का पालन होना अशक्य है अतः उनकी चर्या मुनिपद के योग्य नहीं है। उत्तर में हमने उनसे कहा कि ईयापथ समिति का लक्षण तो बताइये क्या है ? वे नहीं बतासके तब हमने कहा कि ईर्यापथ का लक्षण अत्यन्त धीरे चलना नहीं है और न जल्दी चलना है। आगे के मार्ग को देखते हुए चलना है। जिस मार्ग में मनुष्यों का हर समय आना जाना होरहा है। वह मार्ग चींटा चींटी आदि छोटे २ जन्तुओं से रहित होजाता है उस मार्ग में कीड़े मकोड़ों की रक्षा की दृष्टि रखते हुए मुनि जल्दी जल्दी भी चलते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस मार्गमें मनुष्यों का आना जाना नहीं होता है वहाँ चींटा चींटी चलते रहते हैं ऐसे मार्ग में वे देख देखकर वहुत धीरे धीरे चलते हैं। शिखरजी पर जहां हजारों मनुष्य जा रहे हैं वहां का मार्ग स्वच्छ एवं कीड़ों से रहित है इसलिये आचार्य महाराज जल्दी चढ़ जाते हैं। इस बात से हम यह समझते हैं कि कोई कोई विद्वान् मुनियों में दोष ही ढूंढ़ते हैं और चरणानुयोगीं शास्त्रों के रहस्य अनभिज्ञ रहते हैं।

उद्दिष्ट आहार

मुनियों के आहार पर भी वे उद्दिष्ट दोष उन पर लगाते हैं। कुछ साक्षर लोगों का यह भी आक्षेप है कि वर्तमान मुनि उद्दिष्ट आहार करते हैं जो कि मुनि पद के विरुद्ध है। यह आरोप भी उनका सर्वथा मिथ्या है। उनकी शास्त्रों की अजानकारी सिद्ध होती है। मुनि गण अपने से सम्बन्ध रखने वाले दोषों का स्वयं ध्यान रखते हैं और उनको नहीं लगने देने की पूरी सावधानी रखते हैं। शास्त्रानुसार उद्दिष्ट दोष मुनि से सम्बन्ध रखता है श्रावकों से उस दोष का सम्वन्ध नहीं हैं।

अर्थात् मुनि उद्दिष्ट आहार नहीं लेंगे। श्रावक तो मुनि के निमित्त से ही आहार बनाता है। श्रावक के अतिथि संविभाग व्रत है उसका अर्थ यह है कि वह अतिथि (मुनि) को आहार देने की भावना रखता है इसलिये मुनि के लिये शुद्ध आहार बनावेगा। मुनि के निमित्त आहार बनाकर उन्हें देने में श्रावक को कोई दोष नही लगता है। परन्तु मुनि यदि श्रावक से यह कहें कि अमुक चीज तुम मेरे लिये तैयार करलो मैं तुम्हारे घर आहार के लिये आजाऊंगा अथवा मुनि यह समझलेवें कि मेरे लिये अमुक चीज अमुक घर में बनी है यह समझकर वे उसी घर में आहार ग्रहण करें तो वे मुनि उद्दिष्ट आहार करने के दोषी सिद्ध होंगे। भले ही नगर में एक ही मुनि आये हों तो भी श्रावक उनके लिये आहार बनावेगा परन्तु मुनि अपनी वृत्ति परिसंख्यान प्रतिज्ञा के अनुसार उस घर में या किसी दूसरे घर में ले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकते हैं। या कहीं भी योगाई नहीं मिलने पर बिना आहार किये लौट आवेंगे इसलिये मुनि के निमित्त बनाये आहार में उद्दिष्ट दोष मुनिको नहीं लगता है। शास्त्रों की अजानकारी से और मुनियों के प्रति अनादरबृत्ति से उद्दिष्ट दोष का मिथ्या आक्षेप उनपर लगाया जाता है।

श्रावक का कर्तव्य है कि वह मुनियों के लिये प्रासुक-गर्म जल, तैयार करें, चदोंवा लगावें कुए से अपने हाथ से जल लावें किन्हीं मुनि को रुग्ण देखकर उचित शुद्ध औषधि तैयार करें। ये सब कार्य मुनि के निमित्त से ही श्रावक करता है। मुनि तो अपने लिये योगाई मिलने पर किसी भी घर आहार ले सकते हैं। इसलिये मुनि को उद्दिष्ट दोष नहीं लगता है। यदि मुनि के लिये आहार बनाने में उद्दिष्ट दोष लगता तो पद्मनंदिपचं विंशतिका आदि शास्त्रों में मुनि के लिये औषधि आदि शुद्ध आहार तैयार करने के लिये आचार्य कथन नहीं करते भगवान कुंभकरण मोक्ष गये हैं वे गृहस्थ जीवन में मुनियों को आहार देकर आहार करते थे यदि मुनि नगर में नहीं आते थे तो वे वन में जाकर आहार तैयार कराकर उन्हें आहार देते थे। वह आहार मुनियों के उद्देश्य से ही बनाया जाता था।

चतुर्थकाल में मुनियों के लिए बनों में बसतिकाऐं श्रावक बनबाते थे। उनमें मुनि ठहर जाते थे वे वसतिकाऐं केवल मुनियों के लिये ही बनबाई जाती थीं, श्रावक का उनसे निजी कोई उपयोग नहीं था तो उनमें ठहर जाने से मुनि को उद्दिष्ट दोष लगेगा क्या ? क्योंकि मुनि के निमित्त ही वे बनबाई जाती हैं। परन्तु मुनि को उद्दिष्ट दोष नहीं लगता है, मुनि ने कहकर अपने लिए नहीं बनबाई हैं श्रावक ने अपना कर्तव्य एयं मुनि सेवा समझकर बनबाई हैं।

मुनियों पर मिथ्या टीका टिप्पणी करने वाले साक्षर लोगों को "मुनि के निमित्त से आहार बना है" ऐसा कहकर उद्दिष्ट दोष मुनियों पर नहीं लगाना चाहिये शास्त्रों के अन्तस्तत्व (रहस्य) को समझना चाहिये। जहाँ किसी वस्तु की चाहना मुनि करेंगे किसी श्रावक से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संकेत करेंगे और उसी श्रावक के यहां आहार करने जायेंगे तो उन्हें उद्दिष्ट दोष अवश्य लगेगा। श्रावक तो मुनि के लिये आहार बनावेगा ही वह उसका धर्म कर्तव्य है।

पढ़े लिखे नहीं होने का आक्षेप

कोई २ विद्वान् मुनियों पर यह भी आक्षेप करते हैं वे पढ़े लिखे नहीं हैं। पहले उन्हें ऊंची शिक्षा प्राप्त कर ही मुनि बनना चाहिये। यदि ऐसी बात मुनियों में श्रद्धाभक्ति रखते हुए कही जाय तब तो उचित हो सकती है परन्तु वे तो उन्हें साधारण व्यक्ति समझकर मुनियों में उपेक्षा करते कराते हैं यह दुर्भाव निंद्य है। और मिथ्या आक्षेप है। वर्तमान में जितने मुनि हैं उनमें वहु भाग उच्च कोटि के विद्वान् हैं। परमपूज्य आचार्य सुधर्म सागरजी (गृहस्थावस्था में हमारे वड़े सा०) ने आचार्य वीर सागरजी आचार्य कुंथु सागरजी मुनिचंद्र सागर जी आदि सबों को संस्कृत का अध्ययन कराया। सभी मुनिराज विद्वान् बने आचार्य कुंथुसागरजी ने संस्कृत में कई ग्रन्थ बनाये हैं। कई महान् शास्त्रों की उन्होंने संस्कृत में रचना की है। आचार्य देशभूषणजी आचार्य महावीर कीर्तिजी आचार्य विमल सागरजी आदि सभी उच्च कोटि के अनुभवी विद्वान् हैं। आचार्य विमल सागरजी मुनि पार्श्व सागरजी मुनि प्रबोध सागरजी, ये मोरेना महाविद्यालय के स्नातक हैं शास्त्री और न्याय तीर्थ हैं। छात्रावस्था में वे विनम्रता से हमारे पैर छूते थे। आज हम उनके चरणों में श्रद्धाभक्ति से अपना मस्तक रखते हैं और उनके अध्यापन से अपना सौभाग्य मानते हैं।

मुनिचंद्र सागरजी ने अपने विद्वत्ता पूर्णधर्मोपदेश से सुजानगढ़ लाडनू नागोर आदि समस्त मारवाड़ और इन्दौर आदि श्रावकों को आगम पथ का प्रदर्शन कर महान् कल्याण किया है। आचार्य ज्ञान सागरजी ने संस्कृत में जयोदय आदि ग्रन्थों की रचना की है। आचार्य धर्म सागरजी आचार्य निर्मल सागरजी आचार्य विद्यासागरजी (आचार्य ज्ञान सागरजी संघस्थ) आचार्य कल्प मुनि श्रुत सागरजी मुनि समंत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भद्र जी, मुनि विद्यानंदि जी, मुनि अजित सागर जी, मुनि वृषभ सागरजी, मुनि सुबुद्धि सागरजी, मुनि आर्य नंदिजी, सभी अनुभवी शास्त्र वेत्ता विद्वान हैं। प्रतिदिन धवल आदि सिद्धान्त शास्त्रों का स्वाध्याय करते हैं।

आर्यिकाएं भी विदुषी हैं। श्रीमती ज्ञानमतीजी सुपार्ईवमतीजी जिनमतीजी वीरमतीजी सिद्धमती जी विजयमती जी न्यायतीर्थं आदि का शास्त्रीय बोध बहुत उच्चकोटि का है। अष्टसहस्री जैसे किलष्टग्रन्थ का अनुवाद और संस्कृत में कई ग्रन्थों की रचनाऐं इन आर्यिका माताओं ने की है। विशुद्धमती माताजी ने गोम्मट सार की कठिन गणित संख्या की सेनानी तैयार कर डाली है।

इसलिये मुनियों को पहले पढ़कर ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ऐसा कहना पूरी अजानकारी अविवेक एवं मुनियों के प्रति अश्रद्धा का सूचक है और अपने हित की वंचना है। और भी अनेक मुनिराज हैं जिनका नाम हम नहीं जानते हैं।

आज नवीन बिचार धारा के दि० जैन नामधारी ज्ञान की चर्चा में लगे हुए हैं अध्यात्म के नाम से उसका प्रचार करते हैं उनमें स्वयं भी चारित्र नहीं है और सम्यक् चारित्रधारीयों कों मानते भी नहीं है। और सिद्धांत शास्त्रों का विरोध करते हैं ऐसे ज्ञान से क्या लाभ! वे कुछ जानते भी नहीं है।

ज्ञान की कमी में भी चरित्र विशुद्ध एवं बढ़ता है।

शास्त्रों के अनुभव से हम यह जानते हैं कि ज्ञान अधिक प्राप्त किया जाय वह उत्तम है उससे विवेक एवं चारित्र में सहायता मिलती है चारित्र के स्वरूप का विशेष बोध बढ़ता है। साथ ही लोक और तत्वों का परिज्ञान होता है इसलिये आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करना आवश्यक है और अत्युपयोगी है अतः ज्ञान प्राप्त करने का हम निषेध नहीं करते हैं आज सभी मुनिराज अहर्निश सामायिक के अतिरिक्त समय में स्वाध्याय एवं तत्व चर्चा में ही समय लगाते हैं। केवल परीक्षा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पास करने से ही ज्ञान वृद्धि नहीं होती है। परन्तु जिन विद्वानों की मुनियों में भक्ति नहीं है, उनमें उपेक्षा और निंदात्मक दृष्टि है उनका भ्रम दूर करने के लिये हम यह भी खुलासा कर देना चाहते हैं कि ऊपर जिन आचार्य और मुनियों का उल्लेख किया गया है वे सब अनुभवी विद्वान् हैं उनमें कुछ तो क्रमवद्ध अध्ययन करके संस्कृत एवं सिद्धान्त ग्रन्थों की परीक्षाऐं देकर परीक्षोत्तीर्ण विद्वान हैं। और कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने संस्कृत का अध्ययन नहीं किया है किन्तु शास्त्रों का स्वाध्याय कर तत्व बोध और अनुभव प्राप्त किया है और अपनी संसार विरक्त सद्बुद्धि से मुनि बन गये हैं या बन जाते हैं तो वे भी अपने मुनिपद में पूर्ण सावधान और चारित्र को दृढ़ता से पालते हैं। मन और इन्द्रियों को जीतकर ममत्व बुद्धि को त्यागकर अपनी चर्या में कोई त्रुटि नहीं आने देते हैं। ऐसे मुनियों का ज्ञान भले ही मंद रहे परंतु उनका चारित्र विशुद्ध और बृद्धिगत होता है। शास्त्रों में—सर्वार्थ सिद्धि आदि में लिखा हुआ है कि अष्ट प्रवचन मात्रिका का भले प्रकार समझ लेना मुनिपद के लिये पर्याप्त है। पुलाक मुनि केवल पंच समिति और तीन गुप्ति जो कि पंच महाव्रतों की रक्षा और उनके परिपालन के लिये पूर्णं सहायक है, इन आठ प्रवचन मात्रिकाओं को समझ लेते हैं इतना ही पुलाक मुनियों को जघन्य ज्ञान होता है। ये मुनि भी भावलिंगि मुनि होते हैं ऐसा शास्त्रों में विधान है।

मुनिपद के लिये मूल गुणों का पालन करना अनिवार्य है। जिस प्रकार आठ मूल गुण बिना श्रावक नहीं है नाम का जैन है। उसी प्रकार अठाईस मूल गुणों के बिना मुनि नहीं है नाम मात्र का मुनि है अठाईस मूल गुण इस प्रकार हैं :—

पांच महाव्रत, पांच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, समता, वंदना जिनेन्द्र स्तवन, सामायिक प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, ये षडावश्यक, केशलोंच, एक वार दिन में आहार, खड़े होकर आहार लेना, भूमिशयन, दंतधावन नहीं करना, स्नान नहीं करना, नग्नता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन मूल गुणों का पालन करना ज्ञान की अधिकता से संबंध नहीं रखता है। किन्तु चारित्र से संबंध रखता है। आज ऐसे कई मुनि हैं जो उपदेश भी कम देते हैं किंतु अत्यन्त शान्त परिणामी है और अनेक उपवास करते हैं।

चौथे काल में भी ऐसे मुनि होते थे जो अत्यन्त मंद ज्ञानी थे। एक कथा शास्त्रों में लिखी है कि एक मुनि इतने मंद ज्ञानी थे जिन्हें एक सूत्र तक बार २ घोकने पर भी याद नहीं होता था। परंतु परम तपस्वी थे। आत्म ध्यान में लव लीन रहते थे एक दिन आहार को जाते समय उन्होंने देखा कि एक स्त्री उड़द की दाल धो रही थी, दाल का छिलका अलग हो रहा था और दाल की गिरी अलग हो रही थी उसे देखकर उन मुनिराज के मन में यह गहरा प्रभाव पड़ा कि इसी दाल के समान आत्मा भिन्न हैं और शरीर और भाव कर्म द्रव्य कर्म भिन्न हैं। इस आत्मा के चितन से शीघ्र ही उन्हें केवल ज्ञान हो गया। चारित्र की परम विशुद्धि का ही यह फल है। जीवन भर अध्ययन करने से भी ऐसा सर्वोपरि लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान नहीं हो सकता है। श्रुत केवल भी नहीं हो सकता है अवधि ज्ञान मनः पर्यण ज्ञान केवल चारित्र विशुद्धि से ही उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये ज्ञानवान ही मुनि होने चाहिये अन्यथा वे मुनि पद के उत्तम पात्र नहीं है जैसी जिनकी समझ है वे चारित्र के महत्वपूर्ण लक्ष्य के समझने से बहुत दूर हैं। ज्ञान तो तर्कणा और विचार की वस्तु है चारित्र संसार विरक्ति और आत्म साधन का विषय है। जिनकी भावना और चर्या सांसारिक वासनाओं और ममत्व से हट जाती है वे मंद ज्ञान होने पर भी मुनि वनकर कठिन तपश्चरण करने में तत्पर हो जाते हैं। इतना आवश्यक है कि जिनको अठाईस मूल गुणों का भी परिज्ञान नहीं है और विवेक बुद्धि नहीं है उन्हें पहिले कुछ ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। इस युग के मुनि सृष्टिकर्त्ता चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य आचार्य शान्ति सागर महाराज ने संस्कृत का क्रमवद्ध अध्ययन नहीं किया था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परंतु धवल आदि महान् गंभीर शास्त्रों का स्वाध्याय मुनिपद प्राप्त करके किया था। वे अत्यन्त अनुभवी थे, शास्त्रों के मर्म को अच्छी तरह समझते थे। संस्कृत पाठी अनेक विद्वान् उनके प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ होकर उनसे ही समाधान लेते थे।

वाहन समस्या

वर्तमान मुनियों में किसी २ संघ में मोटर वाहन भी साथ रहता है। यह भी एक आलोचना का विषय बना हुआ है। इस वाहन को मुनियों का परिग्रह बताया जाता है। वास्तव में यह उनका परिग्रह तो नहीं है किंतु ऐसा आंडंबर देखकर कुछ लोग मोटर वाहन को मुनियों का परिग्रह समझते हैं। ऐसा समझने का कारण भी यह है कि मुनि नग्न दिगम्बर निष्परिग्रह रहते हैं। पीछी कमंडलु शास्त्र के सिवा वे और कुछ भी अपने साथ नहीं रखते हैं। पीछी जीव रक्षा के लिये उपकरण हैं। शास्त्र और कमंडलु को भी उठावेंगे और धरेंगे तो पीछी से पहले झाड़कर (संभव है कोई जीव रेंग रहा हो) ही उठावेंगे। रात्रि में लेटने पर करवट बदलेंगे तो भूमि या काष्टासन को पीछी से झाड़कर ही करवट बदलेंगे। इसलिये पीछी परिग्रह में ग्रहण नहीं की गई है। उनका उससे कोई शारीरिक आराम नहीं है। इसी प्रकार कमंडलु में प्रासुक जल रहता है उससे वे शरीर की शुद्धि करते हैं। वह शारीरिक शुद्धि का साधन है वह भी परिग्रह नहीं है शास्त्र स्वाध्याय—सम्यज्ञान वृद्धि के साधन हैं वे भी परिग्रह नहीं हैं। वृद्धावस्था अथवा अन्य किसी कारण से नेत्रों में विकार हो जाने से कोई २ मुनि चस्मा भी पढ़ते समय लगा लेते हैं तो उसे परिग्रह समझना भी भूल है। वह भी स्वाध्याय का साधन है। परंतु मोटर वाहन तो परिग्रह दीखता है। इसलिये यह आलोचना का विषय कुछ लोगों के लिये बन जाता है।

इस विषय का थोड़ा सा खुलासा कर देना हम उपयोगी समझते हैं उसे सरल भाव और विवेक बुद्धि से समझ लेना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिग्रह का लक्षण

परिग्रह का लक्षण "मूर्छा परिग्रह" है अर्थात् ममत्व बुद्धि रखना परिग्रह है। अथवा अपने आराम के लिये किसी वस्तु का उपयोग करना परिग्रह है। मुनि मोटर में कभी बैठते नहीं हैं। पद विहार (पैदल चलना) ही उनकी चर्या है। वह मोटर उनके उपयोग में नहीं आती है अतः वह मोटर उनका परिग्रह नहीं कहा जासकता है। उससे उन्हें कोई ममत्व बुद्धि भी नहीं है यह मोटर का साधन तो मुनि भक्त श्रावकों ने मुनि विहार के लिए किया है। जैसे हीन संहनन होने से पंचम काल में मुनि वन में नहीं रह सकते हैं उनके लिये उद्यान, मन्दिर, मठ, धर्मशाला आदि नगर में रहने का विधान पूर्वाचार्यों ने किया है। अन्यथा पंचम काल में मुनि धर्म ही समाप्त हो जायगा। इसी प्रकार यह मोटर भी श्रावकों द्वारा मुनि विहार का एक निर्वाह साधन है। यह साधन भी कोई आवश्यक नहीं है। जहां आस पास गांवों में नगरों में श्रावकों के घर हैं वहां वाहनों की न तो आवश्यकता है और न उपयोगिता है। जहां निकट में अधिक श्रावक रहते हैं वहां विहार करने वाले साधुओं के संग में वाहन नहीं हैं। परन्तु जहां पर बहुत लम्बे ऐसे मार्ग हैं जहां श्रावकों के घर नहीं हैं। जैसे श्री सम्मेद शिखर की यात्रा में अनेक लम्बे स्थानों में श्रावक नही रहते हैं वहां उस वाहन के साधन से मुनि विहार कर सकते हैं इसीं के लिए श्रावकों ने वाहन और आहार के लिए श्रावक श्राविकाओं को साथ में चलने का साधन जुटा दिया हैं। ऐसा होने से निराकूल रूप से वे विहार करते हैं।

जिस समय चारित्र चक्रवर्ती परमपूज्य आचार्य शान्ति सागर महाराज का संघ दक्षिण से शिखर जी की वन्दना को गया था तब बम्बई के प्रसिद्ध जौहरी सेठ पूनमचन्द घासीलाल जी और उनके सुपुत्रों ने कई मोटर और कारों द्वारा साथ में रहकर सैकड़ों मीलों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यात्रा आचार्य महाराज के संघ को कराईं थीं। उन साधनों के बिना उनका विहार संभव नहीं था। आज कल भी कई श्रावक मुनियों के साथ रहकर संघ चलाते हैं।

मूल संघ के नायक आचार्य कुंदकुंद स्वामी जब गिरनारि सिद्ध क्षेत्र की यात्रा को गये थे तब भी सैकड़ों श्रावक हाथी, घोड़ा, रथ आदि वाहनों को लेकर उनके साथ चलते थे। यह इतिहास कथा पुराणों आदि में है। कविवर ने लिखा है—

संघ सहित श्री कुंदकुंद मुनि बंदन हेतु गये गिरनारि
वाद परौ जहां संशय मत सों साक्षी वदी अबिका कार
सत्य पंथ निग्रंथ दिगम्बर कही सुरी तहं प्रगट पुकार
सो गुरुदेव बसौ उर मेरे विघन हरण मंगल करतार

यह मुनि पुंगव आचार्य कुंदकुंद स्वामी की गिरनारि यात्रा का व्रणंन है श्रावकों का यह वाहन न तो मुनि का परिग्रह है और न उसके रहने से मुनि पद या मुनि स्वरूप में हानि है। पद विहार और मूल गुणों का पालन निराकुलता से होता है।

श्रावकों की आलोचना करना चाहिये

मुनिराजों को वाहन का साथ रहना क्यों स्वीकार करना पड़ा इसका मूल कारण श्रावकों में धर्म कर्तव्य की भारी शिथिलता, परमार्थ साधना की कमी, और आजीविका के कार्यों में ही निमग्न रहना आदि कारण हैं। यदि श्रावक गण अपनी लक्ष्मी के सदुपयोग और अपने जीवन को सफल बनाने की सद्भावना रक्खें तो मोटर वाहन मुनियों के लिये श्रावक क्यों रक्खें ? हम यह प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं कि अनेक नगर ऐसे हैं जहां दो सौ घरों में पचास साठ घरों में मुनियों के लिए आहार तैयार होता है। सब घरों में मुनि और अन्य त्यागी पहुँच भी नहीं पाते हैं। जहां मुनि और त्यागी नहीं जाते हैं वे श्रावक उनके लिए तरसते हैं अपने भाग्य की कमी समझते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परन्तु ऐसे भी अनेक नगर और ग्राम हैं जहां दो चार मुनियों को भी आहार तैयार नहीं होता है। कुछ तो शूद्र जल के त्यागी नहीं होते हैं और कुछ मुनियों के लिए आहार बनाने के लिए तैयार नहीं होते हैं। ऐसे स्थानों में संघ के साथ में जो श्रावक श्राविकाऐं अपना सामान लेकर चलती हैं वे चौके लगाकर मुनियों को आहार दे देती हैं। नहीं तो मुनियों को आहार प्राप्त होना और विहार करना ही कठिन हो जाय।

यह तो आगम है कि श्रावकों के बिना मुनियों का विहार नहीं हो सकता है। क्योंकि बिना आहार ग्रहण किये वे कैसे विहार कर सकते हैं? उनके लिये श्रावक सहायक हैं। और मुनि विहार नहीं करें तो श्रावक का कल्याण कैसे हो? श्रावक का जीवन मुनियों के धर्मोंपदेश और उनके द्वारा व्रत संयम ग्रहण करने से सफल एवं उज्वल बनता है। मुनियों के निकट में परिणामों में अधिक विशुद्धि और ध्यान की सिद्धि हो सकती है। परन्तु जब नगरों में ही श्रावक आहार बनाने में सर्वत्र तैयार नहीं हैं तो जहां तीर्थ यात्रा के लिए मुनि जंगलों में होते हुए विहार करते हैं वहां जंगलों में आहार देने के लिए जाना तो नितान्त अशक्य है। यह कमी श्रावकों की है। ऐसी परिस्थिति देखते हुए और जानते हुए भी जो विद्वान मुनियों की तो आलोचना करते हैं किन्तु श्रावकों की नहीं करते हैं। यदि श्रावकों की आलोचना की जाय तो श्रावकों का कल्याण हो और मुनियों के साथ श्रावक रहें बाहन का साधन भी नहीं रक्खें। हमने यहां तक प्रत्यक्ष देखा है कि एक नगर से दूसरा नगर २० मील है उस नगर तक जाने में एक दिन मध्य में चौका लगाने को भी श्रावक तैयार नहीं होते हैं ऐसी दशा में मुनियों का विहार साथ में रहने वाले श्रावक अपने चौका लगाकर कराते हैं। यदि इतना साधन नहीं हो तो मुनिचर्या और मुनि का परमोज्वल आदर्श ही समाप्त हो जाय।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि मुद्रा मोक्ष मोक्ष मार्ग का प्रतीक है

वर्तमान का देश काल कैसा बन गया है यह सोचने और समझने की बात है। जहां अनेक श्रावक अपनी जघन्यचर्या-पाक्षिकाचार भी नही पालते हैं। रात्रि भोजी बन रहे हैं। देव दर्शन भी छोड़ रहे हैं। जल छान कर भी नहीं पीते हैं। अभक्ष्य भक्षण भी अनेक श्रावक करते हैं। धर्म की ऐसी हीन दशा में भी साथ ही देश काल एवं राज्य की विरुद्धता एवं हीन संहननन आदि प्रतिकूल परिस्थिति में भी जहां सर्दी गर्मी का तीव्र प्रकोप सहन होना कठिन है मुनिगण अपनी चर्या में पूर्ण सावधान रहते हैं। सब प्रकार की वाधाओं को अनेक परीषहों को,उपसर्गों को और तिरस्कार आदि को समता से सहन करते हैं। अपने मुख से अपने कष्टों की कोई वात कभी नहीं कहते हैं। कठिन तपश्चरण करते हैं। आगमोक्तमार्ग पर चलते हैं सिद्धांतज्ञ हैं, स्वात्म साधन में लगे हुए हैं और श्रावकों तथा प्राणी मात्र का हित मार्ग बताकर कल्याण करते हैं। ये मुनिगण सदा वंदनीय मोक्ष मार्ग के प्रतीक हैं।

पद के अनुकूल प्रवृत्ति होना चाहिये

मुनिपद सर्वोच्च पद है। उसी के अनुकूल प्रवृत्ति होना चाहिये। उसमें शैथिल्य होना दोषास्पद है। किन्हीं एकाध मुनि में यदि कोई त्रुटि है अंतरंग या वहिरंग तो उन्हें उस त्रुटि को दूर कर देना चाहिये। उन्होंने परिवार सम्पत्ति आदि का त्यागकर लोकवंद्य यह परमादर्श पद धारण किया है। उस पद में भी यदि कोई वांछा ममत्व, या शारीरिक सुख की अभिलाषा है तो वह सब उस पद के विरुद्ध है। स्वात्म हित के स्थान में अपना अहित है इसका पूरा विचार उनको करना चाहिये विवेकशील मुनिभक्त श्रावकों का भी कर्तव्य है कि वे किन्हीं शिथिलाचारी मुनि को स्वयं उनको समझावें, किसी आचार्य संघ में उन्हें ले जाने की प्रेरणा करें। ऐसा करने से श्रावकों का भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हित है और उन शिथिलाचारी मुनि का भी हित है। परन्तु शिथिला-चारी मुनि के बहाने से सभी परम पूज्य मुनियों की निंदा या तिरस्कार की बात कहना तो अपने लिये कर्मों का वंध करना है। क्योंकि हम लोग (गृहस्थ) मुनिराजों के प्रति उनकी त्रुटि के संबन्ध में उनसे एकांत में विनय पूर्वक प्रार्थना करने के ही पात्र हैं। उनको शिक्षा देने, और उन्हें मुनि मार्ग में दृढ़ करने तथा उनकी त्रुटियों को दूर करने का अधिकार तो आचार्यों एवं पूर्व दीक्षित साधुओं को ही है। विशेषकर उनके दीक्षा गुरु को उन शिथिल मुनि के सुधार और उनको दृढ़ करने का पूर्ण अधिकार है।

वर्तमान में एक मुनि क्षार समुद्र के समान ऐसे हैं जिन्होंने पूर्वाचार्यों के रचे हुए शास्त्रों को बदल दिया है उन शास्त्रों के सूत्रों को बदलकर उनके स्थान में दूसरे सूत्र बनाडाले हैं। शास्त्रों के सिद्धान्त और आशय को भी बदल डाला है। उन्ही प्राचीन शास्त्रों के नाम वे ही रखकर उनके कर्ता स्वयं बन गये हैं। यह जिनवाणी का घोर अविनय ही केवल नहीं है किंतु उन्होंने तीव्र मिथ्यात्व कर्म के उदय से दुर्गतिका वंध कर लिया है ऐसा व्यक्ति न तो मुनि हैं। और न वंदनीय है। किंतु तीव्र मिथ्यादृष्टि हैं।

हम मुनियों में पूर्ण श्रद्धाभक्ति रखते हुए भी उनके पद की चर्या आगमोक्त ही देखना चाहते हैं मुनियों में शिथिलता रहना हमें थोड़ी भी पसंद नहीं हैं क्योंकि वह मोक्ष मार्ग का सर्वोच्च आदर्श पद है हमने जो ऊपर वाहन आदि के विषय में लिखा है उसका हम समर्थन इसलिये करते हैं कि वह वाहन श्रावकों के कर्तव्य का कार्य है परन्तु उसे हम केवल निर्वाह का साधन समझते हैं। आगम विहित वह सिद्धान्त नहीं हैं किंतु परिस्थितिवश उसे वर्तमान समय में एक अपवाद मार्ग ही समझते हैं। और ऐसा अपवाद मार्ग भी श्रावकों की शिथिलता और उनके महान् हितकारक मुनिदान देने के कर्तव्य की कमी का ही परिणाम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन्त्र विधान और मन्त्र दान

दिगम्बर जैनाचार्यों ने मन्त्र शास्त्र भी रचे हैं। विद्यानुवाद अंग शास्त्र में तो मन्त्रों का मुख्य रूप से विधान है हमारे घरू शास्त्र भंडार में हस्त लिखित बहुत बड़ा गुटका है जिसमें लगभग ४०० पृष्ठ हैं। उस गुटका में अक्षर अत्यन्त सुन्दर लिखे गये हैं। और अनेकों कोष्टकों में यन्त्र खिचे हुए हैं जो लाल स्याही से लिखे गये हैं। यह गुटका महान् विद्वान् परमपूज्य श्री १०८ आचार्य सुधर्म सागरजी महाराज (गृहस्थ जीवन के हमारे सहोदर बड़े भ्राता) ने लिखाकर तैयार कराया था। इस गुटके में मंत्र यंत्रों के अतिरिक्त पद्मावती आदि शासन देवी देवताओं को सम्यग्दृष्टि बताया गया है। ये मन्त्र वीतरागी महर्षियों ने बनाये हैं। प्रमाण के लिये इतना लिखना महत्व पूर्ण एवं सर्वोपरि होगा कि अंगांगज्ञाता आचार्य धरषेण ने धवला जय धवला महा धवला षट्खंडागम सिद्धान्त शास्त्रों का अध्ययन कराने के लिये आचार्य भूतवलि आचार्य पुष्पदन्त को दूसरे आचार्य संघ से बुलाकर उनकी कुशाग्र बुद्धिमत्ता और सिद्धान्त ज्ञाता की परीक्षा करने के लिये दौनों को भिन्न२ मन्त्र सिद्ध करने के लिए दिये थे। उन मन्त्रों को जपन करते हुए उन्हें ऐसे देवता दीखे जो विकृत आकृति वाले थे। तब दोनों आचार्यों ने मन्त्रों को शुद्ध किया फिर जपन किया उसका फल यह हुआ कि सुन्दर आकृति वाले देवता आगये तब उन्होंने समझ लिया कि अव मत्र सिद्ध होगया यह परीक्षा देखकर आचार्य धरषेण ने उन दोनों शिष्य आचार्यों को पूर्ण पात्र समझकर सिद्धान्त शास्त्रों का अध्ययन मौखिक कराया। अध्ययन करने के वाद उन्ही आचार्य भूतवलि आचार्य पुष्पदन्त ने सिद्धान्त शास्त्रों की रचना की। रचना पूरी करने के वाद श्रुत पंचमी को उन शास्त्रों की पूजा की गई तभी से–

उस तिथि का नाम श्रुत पंचमी प्रसिद्ध हुआ है।

सबसे महान् बड़ा मंत्र णमोकार मंत्र है। यह अनादि निधन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मंत्र है इस मंत्र में सर्व सिद्धि भरी हुई हैं। केवल इस मंत्र में पंच परमेष्ठी को नमस्कार मात्र ही नहीं हैं किन्तु यह बीजाक्षर मंत्र है। इसके जपन से निर्विघ्न सर्व सिद्धियां होती हैं। इसीलिए प्रायश्चित एवं प्रतिक्रमण आदि में मुनिगण णमोकार मंत्र का जपन करते हैं। दूसरों को भी इसी का जपन कराते हैं। और भी अनेक प्रकार के मंत्र अनेक वाधाओं को दूर करने में समर्थ हैं।

जब मिथ्या दृष्टियों के मिथ्या मंत्रों से सर्प विष, विच्छू विष, आधाशीशी आदि अनेक रोग दूर हो जाते हैं यह प्रत्यक्ष है। तव दिगम्बर जैन आचार्यों के पवित्र मंत्रों से सर्व व्याधियां दूर हो जांय इसमें सन्देह करना श्रद्धा की कमी है।

इसी प्रकार ऋषि मण्डल पूजा ऋषि मण्डल स्तोत्र आदि समंत्र ग्रन्थों का पठन पाठन आदि का प्रचलन विघ्न वाधाओं को दूर करता है। इसमें मूल हेतु अपने संकट को दूर करना है उसका भी मूल हेतु जिनेन्द्र भगवान की दृढ़ श्रद्धा और दृढ़ भक्ति है।

मन्त्र दान पर मुनियों की आलोचना

आज कल कुछ साक्षर लोग परमपूज्य मुनिराजों की यह भी आलोचना करते हैं कि वे श्रावकों को मंत्र बताते हैं। ऐसी आलोचना मुनियों में भक्ति नहीं करने वाले ही करते हैं विचारने की वात यह है कि मुनि श्रावकों को मंत्र यदि वताते हैं तो इसमें मुनियों का क्या प्रयोजन है? मुनि अत्यन्त दयाशील हैं और सम्पत्ति एवं परिवार को छोड़ कर नग्न रहकर स्व-पर हित में लगे हुए हैं उनका कोई सांसारिक एवं आर्थिक लोभ तो नहीं है। किसी पर यदि कोई संकट है या कोई शारीरिक व्याधि है उसे दूर करने की भावना लेकर वह बड़ी श्रद्धा भक्ति रखकर अपना संकट या व्याधि मुनियों के शुभ आशीर्वाद से दूर करना चाहता है तो परम दयालु मुनि उसे आशीर्वाद के साथ मंत्र जपन आदि द्वारा उसे जिनेन्द्र भक्ति के साथ ऐसा उपाय वताते हैं जिससे संकट या व्याधि दूर हो जाय तो इसमें मुनि पद में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

या उनकी चर्या में कौनसा दोष आता है ? जिस श्रावक को संकट या व्याधि है वह व्याकुल और चिंताशील बन जाता है । परिणामों में संक्लेश होने से अशुभ कर्म बंध करता है दुःखी रहता है इसलिये उसका चित्त धर्म साधन में भी नहीं लगता है ऐसी अवस्था में दयालु मुनिराज मंत्रादि द्वारा उसका संक्लेश दूर करते हैं तो वह उनका दया कार्य है और श्रावक के धर्म साधन में सहायक है । संक्लेश मय खोटे भावों को दूर करने में सहायक है । मुनि मिथ्या मंत्र तो नहीं बताते हैं और न धर्म विहीन एवं जिनेन्द्र भक्ति और मुनि भक्ति रहित नास्तिक व्यक्ति को बताते हैं । किन्तु जिनेन्द्र भक्ति और मुनियों में श्रद्धा रखने वालों को ही बताते है । और ऐसे धार्मिक श्रद्धा वाले ही श्रावक उनसे उपाय पूछते हैं ।

शास्त्र भी ऐसा बताते हैं

पहले काल में अपना दुःख दूर करने के लिये श्रावक मुनिराजों के पास जाते थे उनसे पूछते थे कि महाराज मेरे पुत्र होगा या नहीं अथवा अमुक विघ्न दूर कैसे होगा तो मुनिराज सरल एवं शुद्ध निरपेक्ष भाव रखते हुए बता देते थे कि तुम्हारे पुत्र अवश्य होगा । और वैसा ही होता था । दुर्गंधा को पूर्वभव बताकर उसे व्रत पालने आदि की विधि मुनियों ने बताई । पुत्रादि कीं उत्पत्ति बताना यह कोई मोक्ष मार्ग नहीं है सांसारिक है फिर भी आकुलता एवं चिन्ता को दूर करने के लिये मुनिराज सरल एवं शुद्ध भावों से बताते थे । ऐसे उदाहरण प्रथमानुयोग शास्त्रों में सैकड़ों लिखे हैं । शांति पाठ में प्रतिदिन बोला जाता है कि "दुक्ख खओ कम्म खओ" अर्थात् मेरे दुखों का भी क्षय हो और कर्मों का भी क्षय हो । यह भी बोला जाता है कि :—

क्षेमं सर्व प्रजानां प्रभवतु वलवान धार्मिको भूमिपालः
कालेे-काले च सम्यक् वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु
नाशं दुर्भिक्षं चौर मारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके
जैनेन्द्रं धर्म चक्रं प्रभवतु सततं सर्व सौख्य प्रदायी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस श्लोक में यह भावना प्रगट की गई है कि—सर्व प्रजाजनों का क्षेम कुशल बना रहे, राजा धार्मिक हो, समय-समय पर अच्छी वरसा होती रहे, हर प्रकार की व्याधियों का नाश हो, दुर्भिक्ष (अकाल) चोरी, डकैती आदि नहीं हो और जिनेन्द्र देव का धर्मचक्र (जिनशासन) सबों को सुख देने वाला बना रहे। इस प्रकार की भावना आचार्यों ने प्रगट की है व्याधि अकाल चोरी आदि का नाश सबों की कुशलता आदि बातें लोगों की निराकुलता के लिये ही तो है। इसी प्रकार अभिषेक के समय शान्ति धारा में जो शान्ति मंत्र बोला जाता है उसमें भी कहा जाता है :—

सर्वं शत्रुं छिद-छिद भिद-भिद, सर्वं विघ्नं छिद २ भिद २ क्षय रोगं छिद२ भिद कुष्ट रोगं छिद२ भिद२ शूलरोग छिद२ भिद२ इत्यादि मंत्र सांसारिक एवं शारीरिक व्याधियों से होने वालीं अशांति, आकुलता, चिता एवं दुःख दूर करने की प्रार्थना भगवान के चरणों में की जाती है इसका प्रयोजन इतना ही है कि गृहस्थ जीवन को निराकुल रखते हुए धर्म साधन दत्तचित्त होकर करते रहें इसी सम्दावना और दयामय सरल शुद्ध भावों से मुनिजन यदि कभी किसी धर्मात्मा पुरुष को कोई मंत्र और उसके साथ व्रत, उपवास आदि बता देते हैं तो यह जीवों पर उनका उपकारी भाव है। उनका इसमें कोई निजी प्रयोजन नहीं है। फिर सातवें गुण स्थान में अप्रमत्त भाव होने से वहां केवल ध्यानस्थ भाव रहता हैं। छठे गुण स्थान में तो संज्वलन कषाय का तीव्रोदय है परंतु वह प्रशस्त-शुभ है। इसलिये वे धर्मबुद्धि एवं धर्म साधना की दृष्टि से ही ऐसा करते हैं। इसलिये मुनियों पर मिथ्या आक्षेप करना निंद्य है। ऐसा आक्षेप वे ही करते हैं जो मुनि विरोधी हैं।

श्री महावीर जी की इष्टार्थ वंदना क्या मिथ्यात्व है ?

आजकल प्रायः सभी प्रान्तों के लोग श्री महावीर जी अतिशय क्षेत्र पर भगवान महावीर स्वामी के दर्शन, वंदना और पूजा के लिये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिवर्ष जाते हैं। कोई २ प्रति माह भी जाते हैं। अनेक निरपेक्ष रूप से बिना किसी इष्ट प्रयोजन की चाहना के भगवान महावीर जी की अत्यन्त अतिशयवती दिव्य मनोज्ञ चित्ताकर्षक ऐतिहासिक मूर्ति के दर्शन पूजन करते हैं बहु भाग लोग अपनी इष्ट सिद्धि (मनोकामना) के लिए उनके दर्शन पूजन करते हैं। एक बार एक एम० ए० शास्त्री विद्वान ने श्री महावीर जी क्षेत्र पर हम से पूछा कि पंडित जी यह महावीर भगवान का दर्शन पूजन मिथ्यात्व क्यों नहीं माना जाय। क्योंकि अपनी मनोकामना लेकर दि० जैनी इस क्षेत्र पर आते हैं। आपका इस विषय में क्या अभिमत है ? मैंने उनसे कहा कि भले ही वे श्रावक अपनी इष्ट सिद्धि के प्रयोजन से इस क्षेत्र पर आते हैं परन्तु वे भगवान महावीर स्वामी की पूर्ण श्रद्धा और पूर्ण भक्ति से ही पूजा करते हैं। किसी मिथ्यादेव की श्रद्धा भक्ति तो नहीं करते हैं ? फिर मिथ्यात्व क्यों ? गृहस्थ जीवन में सर्वथा परमार्थ साधन तो नहीं हो सकता है व्यावहारिक इष्ट सिद्धि की भी चाहना रहती है। इसीलिये अपना मनोरथ भी वे भगवान की भक्ति से ही चाहते हैं। सभी श्रावक जब अपने कार्य के लिए देशान्तर जाते हैं तो कार्य सिद्धि में विघ्न बाधायें नहीं आवें इस कामना से जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करके जाते हैं और णमोकार मन्त्र का स्मरण और जपन करके जाते हैं यह शुभ राग है इसे मिथ्यात्व समझना भूल है। मुनि महाराज भी हित के लिए धर्म साधन का लक्ष्य रखकर मंत्र बताने के साथ कई प्रकार का त्याग कराते हैं। आत्म शुद्धि के लिए प्रतिज्ञायें भी दिलाते हैं। इसलिये मुनिराजों का यह कार्य हितकारक ही है।

जैन दर्शनाचार्य श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का वर्तमान मुनिचर्या निरूपक
सातवां अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ आठवां अध्याय

सर्वज्ञ का ज्ञेय विषय और और सिद्धों में चारित्र का सद्भाव

सर्वज्ञ त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों को युगपत् प्रत्यक्ष जानते हैं

जगत के समस्त पदार्थों को जानने वाला और देखने वाला कोई सर्वज्ञ हो सकता है या नहीं ? इस शंका के आधार पर सर्वज्ञ सिद्धि करने की आवश्यकता हमें नहीं है क्योंकि यह ग्रन्थ दिगम्बर जैनियों के लिए है। सभी जैन सर्वज्ञ मानते हैं। हमें तो यह बताना है कि सर्वज्ञ का विषय कितना है ? कोई विद्वान सर्वज्ञ का विषय समस्त पदार्थों की केवल वर्तमान पर्यायों का प्रत्यक्ष जानना मानते हैं पदार्थों की भूत और भविष्यत् पर्यायों को शक्ति रूप से जानना मानते हैं उन पर्यायों का प्रत्यक्ष जानना सर्वज्ञ का विषय वे नहीं मानते हैं। उनका कहना यह है कि भूत पर्याय तो नष्ट हो चुकी है और भविष्यत पर्याय अभी उत्पन्न नहीं हुई है ऐसी अवस्था में जो पर्यायें अभी प्रगट नहीं हुई हैं उन्हें सर्वज्ञ कैसे जान सकते हैं। इसलिये उन्हें वे शक्ति रूप से जानते हैं अर्थात अमुक पदार्थ में अमुक शक्तियां हैं। किन्तु वर्तमान प्रगट पर्यायों का वे प्रत्यक्ष करते हैं इस प्रकार सर्वज्ञ का ज्ञेय (जानने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य) विषय त्रिकाले मानना शास्त्र सम्मत नहीं है इसी का हम खुलासा कर देना आवश्यक समझते हैं।

सर्वज्ञ और उसके ज्ञेय का आगम

पहली बात तो यह है कि सर्वज्ञ का अर्थ क्या है अर्थात सर्वज्ञ किसको कहते हैं ? इसके समाधान में यही कहा जायगा कि जो सब को जानता है वही सर्वज्ञ होता है। जिसके ज्ञान में सभी द्रव्य सभी गुण और सभी पर्यायें (त्रिकालवर्ती) झलक रहे हैं वही सर्वज्ञ हैं जिसके ज्ञान में केवल वर्तमान पर्यायें ही प्रत्यक्ष होती हैं भूत भविष्यत पर्यायें प्रत्यक्ष नहीं झलकती हैं। तो वह सर्वज्ञ नहीं किंतु अल्पज्ञ ठहरेगा। इसीलिये यह मानना ही सिद्धान्त सम्मत है कि सर्वज्ञ भगवान अनन्त पदार्थ उनके अनन्त अनन्तगुण तथा उन समस्त पदार्थों और गुणों की अनन्त त्रिकालवर्ती पर्यायों का युगपत् प्रत्यक्ष करते हैं।

यह विषय आगम प्रमाण पर ही निर्भर है

सर्वज्ञ का विषय समस्त द्रव्य गुण पर्यायों का प्रत्यक्ष जानना है या केवल वर्तमान पर्यायों का ही जानना मात्र है ऐसा समझने और कहने का अधिकार सर्वज्ञ के सिवा किसी भी अल्पज्ञ को नहीं है। साधारण ज्ञान वाले मतिज्ञानी और श्रुत ज्ञानी की तो बात क्या किंतु अवधि मनः पर्यय ज्ञानी भी सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान के विषय में कुछ भी कहने के अधिकारी नहीं हैं। उनका प्रत्यक्ष ज्ञान भी सीमित है। अतः सर्वज्ञ ज्ञान उनके भी अगम्य है। इस सम्बन्ध में स्व० विशिष्ट विद्वान् श्री पं० भागचंदजी ने अपने भजन में कहा है—

"पार गणधर से नहि पावें कहां लग भागचंद गावें"

अर्थात् हे भगवन् आपके केवल ज्ञानादि गुणों का पार चार ज्ञानधारी गणधर देव भी नहीं पासकते हैं तब भागचंद जैसे व्यक्ति आपके गुणों का क्या वर्णन कर सकते हैं। अत्यन्त परोक्ष विषयों में हम जैसे व्यक्ति अथवा कोई भी विद्वान् यह कहने का अधिकारी नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि सर्वज्ञ भगवान का ज्ञान भूत भविष्यत् पर्यायों को नहीं जानता है।

मनः पर्ययज्ञानियों का प्रत्यक्ष

मन: पर्ययज्ञानी भूत भविष्यत् पर्यायों को कहाँ तक जानते हैं। इसको समझने से सर्वज्ञ के प्रत्यक्ष का परिज्ञान अच्छी तरह से हो जाता है।

दुगतिगभवाहुअवरं सत्तभवा भवंति उकस्सं
अडणवभवाहु अवरं असेक्खेञ्जे विउल उक्कस्सं
(गोम्मटसार गाथा ४६७)

ऋजुमति मन: पर्ययज्ञानी का काल की अपेक्षा से जघन्य रूप में दो तीन भवों का अतीत और अनागत काल है। और उसका उत्कृष्ट काल आठ नौ भवों तक है। अर्थात् ऋजुमति मन: पर्ययज्ञानी अतीत और अनागत (भूत और भविष्य) काल के भवों का प्रत्यक्ष करता है यह जघन्य काल है। वही ज्ञानी उत्कृष्ट रूप में सात आठ भवों का प्रत्यक्ष करता है।

विपुल मति मन: पर्ययज्ञानी जघन्य रूप से आठ नौ भवों का प्रत्यक्ष करता है। और उत्कृष्ट रूप में वह पल्य के असंख्यात भाग प्रमाण भवों तक प्रत्यक्ष करता है। राजवार्तिक में भी यही बात लिखी है--

काल तो जघन्येन जीवानामात्मनश्च द्वित्रीणि उत्कृष्टेन सप्ताष्टानि। विपुलमति: कालतोजघन्येन सप्ताष्टानि भवग्रहणानि उत्कर्षेण असंख्येयानि (राजवार्तिक) अर्थ ऊपर कहा जा चुका है।

इस कथन से यह खुलासा होजाता है कि भूत पर्यायों के नष्ट हो जाने पर भी तथा भविष्यत् पर्यायों के उत्पन्न नहीं होने पर भी उन पर्यायों का प्रत्यक्ष मन: पर्यय ज्ञानी करता है तब केवल ज्ञानी सर्वज्ञ भगवान भूत भविष्यत् काल की पर्यायों का प्रत्यक्ष नहीं करते हैं केवल उन्हें शक्ति रूप से जानते हैं यह कहना वाधित हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन में चिंतित अचिंतित अर्धचिंतित् पल्य के असंख्यातवें भाग समय तक की (असंख्यात वर्षों की) मन की बात का प्रत्यक्ष जब विपुलमति मनः पर्ययज्ञानी करता है तब निरावरण केवल ज्ञानी अनंत द्रव्य गुण पर्यायों का प्रत्यक्ष करते हैं यह आगम प्रमाण से भली भांति सिद्ध होता है।

सर्व पर्यायों का प्रत्यक्ष बोधक प्रमाण

कतिपय शास्त्रों के ऐसे प्रमाण हम उद्धत करते हैं जिन से सर्वज्ञ के ज्ञान का अपरिमित माहात्म्य सिद्ध होता है।

सर्व द्रव्य पर्यायेषु केवलस्प

इस महाशास्त्र तत्वार्थ सूत्र की आचार्य पूज्य पाद कृत सर्वार्थ सिद्धि में लिखा है—

द्रव्याणि च पर्यायाश्च द्रव्य पर्याया इति इतरेतर योग लक्षणे द्वन्द्वः तद्विशेषणं सर्व ग्रहणं प्रत्येकमभि संवंध्यते सर्वेषु पर्यायेषु इति।
(सर्वार्थ सिद्धि पृष्ठ ७५)

अर्थ–द्रव्य और पर्याय यह द्वंद्व समास है। इस सूत्र में सर्व पद विशेषण है। उसका अर्थ यह है कि वह सर्व पद समस्त द्रव्य और समस्त पर्यायें दोनों के साथ सम्बन्ध रखता है। अर्थात केवल ज्ञान समस्त द्रव्य और समस्त पर्यायों को प्रत्यक्ष करता है। आगे और भी स्पष्ट लिखा है—

"तेषां (षट्द्रव्याणां) पर्यायाश्च त्रिकालभुवः प्रत्येकं अनन्तानंता स्तेषु द्रव्य पर्यायजातं वा न किंचित्केवलज्ञानस्प विषय भाव मतिक्रान्त मस्ति। अपरिमित महात्म्यं हि तत् इति ज्ञापनार्थं सर्व द्रव्य पर्यायेषु इत्युच्यते,, (सर्वार्थ सिद्धि)

अर्थ–समस्त छहों द्रव्य और उनकी तीनों कालों में–भूत भविष्यत वर्तमान कालों में होने वाली समस्त अनंतानंत पर्यायें केवलज्ञान में प्रत्यक्ष झलकती हैं। ऐसा कोई द्रव्य या गुण तथा पर्याय नहीं है जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं होती है। केवल ज्ञान का अपरिमित माहात्म्य हैं। इसीलिये सर्व द्रव्य और सर्व पर्याय केवल ज्ञान का प्रत्यक्ष विषय है। और भी प्रमाण—

सर्वग्रहणं निरवशेष प्रतिपत्यर्थंम् ये लोकालोक भेदभिन्ना: त्रिकाल विषया: द्रव्य पर्याया: अनंता: तेषु निरवशेषेषु केवल ज्ञान विषय निबन्ध इति प्रतिपत्यर्थं सर्वं ग्रहणं। यावांलोकालोक स्वभावो नन्त: तावन्तो अनन्तानंता यद्यपि स्यु: तानपि ज्ञांतुमस्य सामर्थ्यमस्ति इत्यपरिमितमाहात्म्यं केवलज्ञानं बेदितव्यम्।

(राजवार्तिक पृ० ६२)

अर्थ—सर्व ग्रहण सम्पूर्ण विषय की प्रत्यक्षता के लिये दिया गया है। जितना भी लोक है और अनंतानंत अलोक है यदि ऐसे लोक और अलोक अनंतानंत भी होते तो केवल उन सवों का भी प्रत्यक्ष करता इतनी सामर्थ्य उसमें है इसलिये केवलज्ञान का माहात्म्य अपरिमित है। और भी प्रमाण

"अतीतानागत वर्तमानानन्त पर्यायात्मकवस्तुन: सकलज्ञानावरणक्षय विजृंभित केवलज्ञानपरिच्छेछत्वात्,,

(श्लोक वार्तिक पृ० २५०)

अर्थ—समस्तज्ञानावरण कर्म का पूर्ण क्षय होने से भूत भविष्यत् वर्तमान जितनी भी अनंत पर्यात्मक वस्तु हैं वह सब केवलज्ञान से प्रत्यक्ष होती है।

"केवलं सकलज्ञेय व्यापि स्पष्टं प्रसाधितं प्रत्यक्षमक्रमं तस्य निवधो विषयेष्विह,, (श्लोक वार्तिक २५१)

अर्थ—केवल ज्ञान का सभी ज्ञेय (जानने योग्य) विषय है केवल ज्ञान व्यापक रूप से सभी ज्ञेय पदार्थों को युगवत् प्रत्यक्ष जानता है और भी—

तत: समन्ततश्चक्षुरिन्द्रियाद्यनपेक्षिण:
नि:शेषद्रव्यपर्याय विषयं केवलं स्थितम्

(श्लोक वार्तिक पृ० ३५३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ– केवल ज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान है वह समस्त द्रव्य और उसकी समस्त पर्यायों को प्रत्यक्ष जानता है।

और भी प्रमाण

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तै रनन्त पर्यायैः
दर्पणतल इव सकला प्रति फलति पदार्थ मालिका यत्र

(पुरुषार्थ सिद्धपाय)

अर्थ–आचार्य अमृचंद्रतसूरि मंगलाचरण में कहते हैं कि वह केवल ज्ञान का महान् प्रकाश जयवंत हो जिस केवल ज्ञान के प्रकाश में समस्त अनन्त पर्यायों के साथ समस्त पदार्थ समूह दर्पण के समान झलकता है

पश्यन् समस्त भुवनं युगपन्नितातं त्रैकाल्य वस्तु विषये निविड प्रदीपम्

(आचार्य पद्मनंदि)

अर्थात् सर्वज्ञ भगवान समस्त लोक को एक साथ देखते हैं, तीन काल में पदार्थों को, ऐसे शास्त्रों में अनेक प्रमाण हैं जिनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान में सभी द्रव्य सभी गुण और सभी भूत भविष्यत् पर्यायें प्रत्यक्ष झलकती हैं। यदि सभी पर्यायें प्रत्यक्ष नहीं झलकें तो सर्वज्ञ भगवान अल्पज्ञ ठहरते हैं इसलिए यह कहना सर्वथा आगम विरुद्ध है कि सर्वज्ञ के ज्ञान में वर्तमान पर्यायें ही प्रत्यक्ष होती हैं। भूत भविष्यत् पर्यायों को सर्वज्ञ शक्ति रूप से जानते हैं वे पर्यायें उनके ज्ञान में प्रत्यक्ष नहीं होती हैं। ऊपर दिये गये प्रमाणों से शक्ति रूप से जानने की बात सर्वथा मिथ्या है।

उदाहरण

इस युग के आदि तीर्थंकर भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) ने सर्वज्ञ हो जाने पर समवसरण में अपनी दिव्य ध्वनि में यह कहा था कि यह मारीचिकुमार (भरत चक्रवर्ती का पुत्र) जो अभी पाखण्डी है और मिथ्या दृष्टि है पाखण्ड मत का प्रचार कर रहा है। इस युग का अन्तिम तीर्थंकर महावीर होगा। भगवान ऋषभदेव तीर्थंकर सर्वज्ञ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाणी का यह परिणाम है आज महावीर स्वामी सर्वज्ञ तीर्थंकर की मूर्ति का हम प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं और उनके दर्शन से अनंत संचित पापों का क्षय कर रहे हैं। भगवान ऋषभदेव को मोक्ष गये असंख्याते वर्ष बीत गये हैं। उन्होंने असंख्याते वर्ष पहिले ही मारीचिकुमार की अन्तिम पुरुष पर्याय का तीर्थंकर रूप प्रत्यक्ष कर लिया था, इसलिये यह भली भांति स्पष्ट सिद्ध है कि सर्वज्ञ भगवान भूतभावी पर्यायों को शक्ति रूप से नहीं किंतु साक्षात् प्रत्यक्ष रूप में जानते देखते हैं।

और भी उदाहरण

चारण रिद्धि धारी मुनीश्वरों ने सिंह पर्याय में विचरते हुए जीव को उपदेश दिया था कि तू जीव बध मत कर तू भव्य है। तू इस युग का तीर्थंकर होगा। उनके उपदेश से सिंह सम्यग्दृष्टि एवं अणुव्रती बन गया और वही भगवान महावीर स्वामी हो गया। इसी प्रकार पार्श्वनाथ भगवान का जीव पूर्व पर्याय में हाथी पर्याय में था तब मुनिराज के सम्बोधन से उसे जाति स्मरण हो गया। वही हाथी पार्श्वनाथ तीर्थंकर हो गया।

अनेक अवधि ज्ञानी मनः पर्यय ज्ञानी मुनियों ने अनेक राजाओं के और अनेक मनुष्यों के पिछले भव बताये हैं। उन भवों को सुनकर उन्हें जाति स्मरण भी हुआ था। ऐसी कथायें प्रथमानुयोग शास्त्रों से प्रमाणित हैं। और दृष्टान्त देने से ग्रन्थ विस्तार होगा।

जब अवधि मनः पर्याय ज्ञानी क्षयोपशम ज्ञान धारी भी अनेक भूत भावी जीव पर्यायों का प्रत्यक्ष करते हैं तब पूर्ण निरावरण ज्ञान धारी सर्वज्ञ देव सभी पर्यायों का प्रत्यक्ष करते हैं यह अच्छी तरह प्रमाणित है।

भगवान नेमिनाथ ने केवली होने पर दिव्य ध्वनि में कहा था कि द्वारिका जलेगी, कृष्ण बल्देव बचेंगे। प्रद्युम्नकुमार मोक्ष जायेंगे। कृष्ण की आठ पटरानियों के भव बताये थे। आगे भगवान ने यह भी बताया कि ये थोड़े भव धारण कर मोक्ष जायेंगी आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये उपर्युक्त कथा प्रमाणों से और उपर्युक्त शास्त्रों से शास्त्र प्रमाणों से यह सुस्पष्ट सिद्ध है कि सर्वज्ञ के ज्ञान में सभी द्रव्य गुण पर्यायें प्रत्यक्ष झलकती हैं।

भगवान महावीर स्वामी से समवसरण में राजा श्रेणिक ने पुष्पांजलि व्रत दशलक्षण व्रत किन किन ने पाले ? क्या फल मिला ? इन प्रश्नों के उत्तर में भगवान् ने पूर्व भवों का सब वर्णन किया। सुगन्ध दशमी व्रत की कथा भी राजा श्रेणिक ने पूछी तब भगवान महावीर स्वामी ने उन कथाओं के सम्बन्ध में पूर्व भवों का वर्णन किया था उन्हीं कथाओं के सन्दर्भ में मुनियों ने भी पूर्व भवों का वर्णन किया है। इस कथन से यह सिद्ध है कि भूत और भविष्यत् पर्यायों का प्रत्यक्ष मुनि भी करते थे। भगवान सर्वज्ञ तो अनन्त पर्यायों का प्रत्यक्ष करते हैं। एक प्रमाण और देकर इस प्रकरण को समाप्त कर देते हैं देखिये भगवान कुंदकुंद स्वामी ने प्रवचनसार में कहा है-

अवदेसं सवदेसं मुत्तममुत्तं च पज्जयभजादं
पलयं गयं च जाणदि तं णाण मणिंदिय भजियं

(प्रवचन सार गाथा ४१)

अर्थ- जो अप्रदेशी (एक प्रदेशी) वस्तु है जो अनेक प्रदेश वाली वस्तु है जो मूर्त है जो अमूर्त है। उन सब वस्तुओं को अतीन्द्रिय ज्ञान-केवल ज्ञान जानता है। तथा जो पर्याय अभी उत्पन्न नहीं है अर्थात् आगे काल में उत्पन्न होने वाली है और जो पर्याय प्रलय हो गई है अर्थात् नष्ट हो चुकी है उस भूत और भावी पर्याय को केवली सर्वज्ञ प्रत्यक्ष जानते हैं।

आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने इस गाथा द्वारा कितना स्पष्ट कहा है भूत भावी सभी पर्यायें सर्वज्ञ के ज्ञान में प्रत्यक्ष होती हैं इस स्पष्ट कथन से उन विद्वानों को अपनी उस निराधार धारणा को, कि सर्वज्ञ केवल वर्तमान पर्याय का ही प्रत्यक्ष करते हैं। भूत, भावी पर्यायों को शक्ति रूप से जानते हैं- बदल देना चाहिये और आगम प्रमाणों से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपनी श्रद्धा को आगमानुसार बना लेना चाहिये। भगवत् कुंदकुंद स्वामी ने स्पष्ट रूप से इस गाथा द्वारा यह कहा है कि जो पर्याय नष्ट हो चुकी हैं और जो पर्यायें अभी उत्पन्न नहीं हैं उन सबों को सर्वज्ञ प्रत्यक्ष जानते हैं।

आदा णाण पमाणं णाणं णेय पमाण मुद्दिठ्ठं
णेयं लोयालोयं तम्हा णाण तु सव्वगयं

(प्रवचन सार गाथा २३)

इस गाथा की संस्कृत टीका में आचार्य अमृतचन्द्र सूरि लिखते हैं–

ज्ञेयं तु लोकाकाश विभागं विभक्ताऽनन्तपर्याय मालिकालीढ स्वरूप सूचिता विच्छेदोत्पाद प्रदर्शित ध्रौव्या षड् द्रव्यी सर्वमितियावत् ततो निःदोषावरण क्षयक्षण एव लोकालोक विभाग विभक्त समस्त वस्त्वाकार पारमुपगम्य तथैवाप्रच्युतत्वेन व्यवस्थितत्वात् ज्ञानं सर्वं गतम्। (प्रवचन सार गाथा २३ पृ० २८)

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ज्ञेय पदार्थ जिसको सर्वज्ञ जानते हैं कितना है ? उसी का खुलासा यह किया है कि लोक अलोक विभाग से विभाजित अनंत पर्यायों की माला में गुथा हुआ स्वरूप वाला उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला छह द्रव्य मयी सर्व पदार्थ है। उस सर्व पदार्थ समूह (अनन्त पर्याय विशिष्ट) को केवल ज्ञान समस्त ज्ञाना-वरण कर्म का क्षय होते हीं उसी क्षण में अनन्त द्रव्य पर्याय सहित पूर्ण रूप से जानता है। इसलिये सर्वज्ञान सर्व गत है।

इस गाथा से आचार्य कुंदकुंद स्वामी ने स्पष्ट कर दिया है कि केवल ज्ञान में भूत भविष्यत् वर्तमान सभी अनन्त पर्यायें झलकती हैं।

जाणंतो पच्छत्तो कालत्तय वदि याइं दव्वाईं
उत्तो से सव्वण्हू परमप्पा परम जो इहि

(आचार्य देवसेन कृत भाव संग्रह पृ० १४२)

अर्थ– तीन काल वर्त्ती– भूत भविष्यत् वर्तमान काल वर्ती द्रव्यों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो जानता है और देखता है वह सर्वज्ञ परमात्मा कहा जाता है परम योगियों ने यही सर्वज्ञ का लक्षण बताया है।

तीन काल की समस्त द्रव्य पर्यायों को जानने वाला सर्वज्ञ कहा जाता है तव केवल वर्तमान की पर्यायों को जानने वाला ही सर्वज्ञ है ऐसा कहना आगम वाधित है और सर्वज्ञ को अल्पज्ञ समझना है।

सिद्धों में चारित्र का सद्भाव

कोई विद्वान् सिद्धों में चारित्र नहीं मानते हैं वे चौदहवें गुणस्थान तक ही चारित्र मानते हैं परंतु उनका ऐसा मानना शास्त्रों के सर्वथा विरुद्ध हैं। सिद्धों में चारित्र अवश्य रहता है इसको हम शास्त्रों के प्रमाणों से और हेतुओं से स्पष्ट करते हैं :—

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः

यह तत्वार्थ सूत्र है जो समस्त दि० जैनागम का मूल भूत सिद्धान्त है। सम्यग्दर्शन सम्यज्ञान चारित्र ये तीनों ही मोक्षमार्ग है। (भिन्न २ एक देश मोक्ष मार्ग है और) तीनों का समुदाय परिपूर्ण मोक्ष मार्ग है। (सम्यग्दर्शन चारों गतियों में पाया जाता है। अतः वह एक देश मोक्ष मार्ग है।) तीनों की पूर्णता पुरुष में ही हो सकती है। स्त्रियों में रत्नत्रय है परंतु पूर्णता पुरुष में ही होती है।

सम्यग्यदर्शन ज्ञान चारित्र ये तीनों मोक्ष के मार्ग हैं और स्वयं तीनों मोक्ष स्वरूप भी हैं। (तीनों की पूर्णता तेरहवें संयोग केवली गुण स्थान में हो जाती है।) मोक्ष प्राप्त होने पर सिद्धों में भी तीनों सदैव रहते हैं। यही सिद्धान्त हैं। जो विद्वान् सिद्धों में सम्यग्दर्शन और सम्यज्ञान तो मानते हैं किंतु सम्यक् चारित्र सिद्धों में नहीं मानते हैं (वे बहुत बड़ी भूल में है) उन्होंने वस्तु स्वरूप पर पूरा विचार नहीं किया है। उन्हें यह विचार करना चाहिये कि सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र ये तीनों आत्मा के गुण हैं या पर्याय हैं यदि गुण हैं तो गुण कभी नष्ट नहीं हो सकता है। यदि गुण नष्ट हो जाते हैं तो आत्म

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्य भी नष्ट हो जायगा गुण तो सदैव नित्य रहते हैं। वे विद्वान् सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान को तो सिद्धों में मानते हैं अतः उनकी समझ में वे दोनों तो गुण हैं केवल चारित्र का वहां निषेध करते हैं सो वे चारित्र को पर्याय मानते होंगे। यदि चारित्र पर्याय है तो वह चारित्र पर्याय किस गुण की है ? सो बताना चाहिये परन्तु चारित्र को पर्याय सिद्ध नहीं किया जा सकता है वह स्वयं गुण है। अतः मोक्ष में (सिद्धों में) उसका सम्यक्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के समान मानना ही शास्त्र सम्मत है। क्योंकि वह भी गुण है।

दूसरी बात—ज्ञानावरणादि आठ कर्मों में चार घातियां कर्म हैं और चार अघातिया कर्म घातिया कर्म आत्मा के गुणों को घातते हैं और अघातिया कर्म आत्मा के गुणों को नहीं घातते हैं किंतु मोहनीय कर्म की सहायता से आत्मा की कर्म जनित विकृत अवस्था बना देते हैं। अघातिया कर्मों के हटने से आत्मा अपने सूक्ष्म अव्याबाध अगुरु लघु एवं स्वावाहन रूप शुद्ध स्वरूप में आ जाता है। इसलिये शास्त्रकारों ने चार अनुजीवी गुण और चार प्रतिजीवी गुणों के नाम से सिद्धों में आठ गुण बताये हैं। वास्तव में अनुजीवी तो सत्तात्मक (वास्तविक) गुण हैं और शेष चार गुण नहीं है किन्तु अघातिया कर्मों के अभाव में आत्मा के अभाव रूप धर्म हैं।

प्रकरण में यह विचार है कि घातिया कर्म अपने २ विपक्षी गुणों को घातते हैं तब दर्शन मोहनीय कर्म के अभाव में सम्यग्दर्शन गुण प्रकट हो जाता है जो सिद्धों में माना जाता है। इसी प्रकार चारित्र मोहनीय कर्म के अभाव में चारित्र गुण प्रगट होता है। उसे सम्यग्दर्शन के समान सिद्धों में क्यों नहीं माना जावे ? इसका क्या कारण है ? अतः उसे भीं सिद्धों में मानना अनिवार्य हैं क्योंकि चारित्र भी अनुजीवी गुण है।

तीसरा हेतु :—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनों ही अविनाभावी गुण है और तीनों की परि पूर्णता होने पर ही मोक्ष होती है। तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या कारण है कि सिद्धों में सम्यग्दर्शन और सम्यज्ञान तो रहें और अविनाभावी रूप में रहने वाला चारित्र सिद्धों में नहीं रहे। जब तीनों अविनाभावी हैं तब दर्शन ज्ञान से चारित्र भिन्न हो ही नहीं सकता है अविनाभावी का प्रमाण यही है कि– सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः इस महा सूत्र में मोक्षमार्गः ऐसा एक बचन है। इसका अर्थ शास्त्रकारों ने यही किया है कि तीनों मिलकर ही मोक्ष मार्ग और मोक्ष रूप हैं।

चौथा हेतु :—आत्मा के क्षायिक भाव नौ बताये गये हैं–

"ज्ञान दर्शन दान लाभ भोगोपभोग वीर्याणिच"

(तत्वार्थ महाशास्त्र)

ज्ञान दर्शन दान लाभ भोग उपभोग वीर्य सात तो ये और सूत्र में "च" शब्द हैं उससे सम्यग्दर्शन और सम्यक चारित्र का ग्रहण किया जाता है। ये नौ क्षायिक भाव चार घातियां कर्मों के नष्ट हो जाने से प्रकट होते हैं। ये सभी नौ क्षायिक भाव हैं तब सिद्धों में अवश्य रहेंगे क्षायिक भाव कभी नष्ट नहीं हो सकते हैं। ये सभी भाव सिद्धों में रहते हैं। फिर कौनसा ऐसा प्रवल हेतु या शास्त्रीय प्रमाण है जिससे चारित्र को गुण मानते हुए भी उसे सिद्धों में नहीं माना जाय ? ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिल सकता है।

शंका का समाधान

इस सम्बन्ध में यह शंका उठाई गई है कि सिद्धों में दान लाभ भोग उपभोग भी तो नहीं है। उसी प्रकार चारित्र भी नहीं है भगवान की दिव्य ध्वनि से सर्व प्राणियों का कल्याण होता है वे अभय बनते हैं केवली भगवान का शरीर बिना आहार ग्रहण किये कैसे टिका रहता है इसके लिए उनके शरीर में अनन्त सूक्ष्म परम शुभ असाधारण पुद्गल परमाणु प्रति समय आते रहते हैं उन्हीं के बल पर उनका शरीर ठहरा रहता है। भगवान के महान् असाधारण तीर्थंकर प्रकृति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के उदय से पुष्प वर्षा, मंद सुगन्ध वायु आदि होते हैं। इसी प्रकार सिंहासन, छत्र चमर समवसरण आदि विभूति होती है इसी प्रकार केवल ज्ञान के साथ होने वाला अनन्त वल भी भगवान के होता है यह सब सिद्धों में नहीं रहता है अतः अतः चारित्र भी नहीं रहता ?

इस शंका का अकाट्य समाधान शास्त्रकार आचार्यों ने बहुत सुन्दर किया है। वह इस प्रकार है- ये दान लाभ भोग उपभोग तीर्थंकर प्रकृति और शरीर नाम कर्म के उदय के कारण से ही होते हैं। जब शरीर नाम कर्म तीर्थंकर नाम कर्म एवं शरीर आदि सभी वाह्य साधन हट जाते हैं तब केवल अमूर्तिक सिद्ध भगवान में वाह्य कार्य भी नहीं रहते हैं। किंतु दान लाभ भोग उपभोग ये वीर्यान्तिराय कर्म के नष्ट होने पर अनन्त वीर्य के ही भेद हैं अतः वे सभी भाव क्षायिक होने से सिद्धों में अनन्त वीर्य के भीतर गर्भित होने से रहते हैं इसी बात का स्पष्टीकरण सर्वार्थ सिद्धि ग्रन्थ में इस प्रकार है-

कथं तर्हि तेषा सिद्धेषु वृत्ति ? परमानन्त वीर्या
व्यावाध सुख रूपेणैव तेषां तत्र बृत्तिः।

अर्थ- दान लाभ भोग उपभोग यदि शरीर व तीर्थंकर प्रकृति के उदय से होते हैं तो वे क्षायिक भाव सिद्धों में नहीं रहेंगे। उत्तर में कहा गया है कि क्षायिक भाव सिद्धों में रहते हैं, इसलिये दान लाभादिक भी परम अनन्त वीर्य एवं अव्यावाध सुख रूप से सिद्धों में रहते हैं। वहां उनका अभाव नहीं है।

राज वार्तिक में लिखा है कि-

"केवल ज्ञान रूपेणाऽनंत वीर्य वृत्ति वत्" (राजवार्तिक)

अर्थात् जिस प्रकार केवल ज्ञान रूप से अनन्त वीर्य सिद्धों में रहता है उसी प्रकार परम अनन्त वीर्य एवं अव्यावाद सुख रूप से दान लाभादिक भी क्षायिक भाव होने से सिद्धों में रहते हैं। इसी प्रकार चारित्र भी क्षायिक भाव है वह भी सिद्धों में रहता है क्योंकि सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र ये तीनों तादात्म्य रूप में अखण्ड अभिन्न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं अतः सिद्धों में जहां सम्यग्दर्शन और ज्ञान हैं वहां चारित्र भी अनिवार्य रूप से अवश्यंभावी है। और भी प्रमाण इस प्रकार है—

अन्यत्र केवल सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन सिद्धत्वेभ्यः

(तत्वार्थ सूत्र)

इस महाशास्त्र की टीका में शंका उठाई गई है कि इस सूत्र में केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवल दर्शन और सिद्धत्व इन चार क्षायिक भावों का ही उल्लेख है अर्थात् इन चार क्षायिक भावों को छोड़कर सिद्धों में और कोई भाव नहीं रहता है क्या ? अनन्त वीर्या-दिक भाव क्षायिक भाव हैं वे भी सिद्धों में नहीं हैं क्या ? उत्तर में आचार्य कहते हैं—

अनन्त वीर्यादि निवृत्ति प्रसंग इति चेन्न अत्रैवान्तर्भावात् स्यादेत् सम्यक्त्वादीनां चतुर्णां क्षायिकाणां संग्रहात् इतरेषां निवृत्ति रनंत वीर्या दीनां प्राप्नोतीति तन्न किं कारण अत्रैवान्तभीवात् ज्ञान दर्शनाविनाभाविनो ह्यनंत वीर्यादयः अत्रैव अन्तर्भवन्ति।

(राजवार्तिक)

इस वार्तिक का स्पष्ट अर्थ यह है कि जब कि अनंतवीर्य आदि सिद्धों के गुण हैं तब चार गुणों का नाम ही सूत्र में क्यों लिया गया है क्या अनंतवीर्य अनन्त चारित्र आदि आत्मा के क्षायिक गुण नहीं हैं ? इस शंका के उत्तर में आचार्य अकलंक देव समाधान करते हैं कि ऐसा नहीं है कि सिद्धों में केवल चार ही गुण हों उनमें अनन्त गुण हैं। परन्तु ज्ञान और दर्शन इनके भीतर अनन्त वीर्य चारित्र आदि गुण भी गर्भित हो जाते है उनका ग्रहण भी सुतरां (अपने आप) हो जाता है क्योंकि सभी ज्ञान दर्शन के अविनाभावी हैं अर्थात् सभी तादात्म्य रूप से साथ ही रहते हैं। जैसे पुद्गल में स्पर्श रस गन्धवर्ण वन्तः पुद्गलाः इस सूत्र के अनुसार चारों हीं या स्पर्श सहित पांचों ही पुद्गल के अविनाभावी गुण हैं वे तादात्म्य रूप से नियम से एक साथ रहते हैं। इसलिये रूपिणाः पुद्गलाः इस सूत्र में पुद्गल को रूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुण वाला बताया गया है परन्तु रूप के साथ पुद्गल में रसगन्ध आदि भी रहते है उनका ग्रहण रूप के ग्रहण में आजाता है उसी प्रकार आत्मा में–सिद्धों में सभी क्षायिक भाव नियम से अखंड पिंड रूप में रहते हैं चारित्र भी ज्ञान दर्शन के समान क्षायिक गुण है और उनका अविनाभावी, तादात्म्य सम्वन्ध वाला गुण है अतः वह चारित्र सिद्धों में दर्शन ज्ञान के साथ अवश्य रहता है।

और भी प्रमाण

सिद्धों में चारित्र रहता है उसका और भी प्रमाण है–

क्षेत्र काल गति लिंग तीर्थं चारित्र प्रत्येक वुद्ध वोधित ज्ञाना वगाहनान्तर संख्याल्य वहुत्वतः साध्याः (तत्वार्थ सूत्र)

इस सूत्र की संस्कृत टीका में इसी बात का विचार किया गया है कि सिद्ध भगवान भूत नय की अपेक्षा से तो किस क्षेत्र से किस काल आदि से सिद्ध हुए हैं। और वर्तमान नय की अपेक्षा से किस क्षेत्र काल आदि से सिद्ध हैं। जैसे–भूतकाल से तो उन्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी में सिद्ध हुए हैं वर्तमान में सिद्ध काल में ही सिद्ध होते हैं। भूतकाल की अपेक्षा से मनुष्यगति से सिद्ध होते हैं वर्तमान नय से सिद्ध गति में ही सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार चारित्र का विचार किया गया है।

चारित्रेण केनसिध्यति। अव्यपदेशेन् एक चतुः पंचविकल्प चारित्रेण वा सिद्धिः प्रत्युत्पन्न नय वशाच्च चारित्रेण व्यपदेशरहितेन भावेन सिद्धिः। भूत पूर्व गतिर्द्विधा। अनन्तर व्यवहित भेदात्। आनन्तर्पेण यथाख्यात चारित्रेण सिध्यन्ति व्यवधानेन चतुर्भिः पञ्चभिर्वा।

(राजवार्तिक)

अर्थ–सिद्ध भगवान किस चारित्र से सिद्ध होते हैं। उत्तर में कहा गया है कि यातो बिना किसी चारित्र विशेष का उल्लेख किये सिद्ध होते हैं या एक चारित्र से सिद्ध होते हैं या चार या पांच चारित्र से सिद्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होते हैं। वर्तमान नय से तो चारित्र विशेष का उल्लेख किये बिना विशुद्धभावों से सिद्ध होते हैं। भूत पूर्व नय दो प्रकार है या तो साक्षात् या व्यवधान। साक्षात् तो केवल एक यथाख्यात चारित्र से सिद्ध होते हैं यदि व्यवधान (अन्तर रूप से) से होंगे तो कोई सिद्ध तो सामायिक छेदोपस्थापना, सूक्ष्मसांपराय और यथाख्यात इन चार चारित्रों से सिद्ध होते हैं और कोई परिहार विशुद्धि चारित्र सहित पांच चारित्रों से सिद्ध होतेहैं। इस प्रमाण से बहुत स्पष्ट होजाता है कि सिद्धों में चारित्र अवश्य रहता है भले ही उसका नामोल्लेख नहीं हो। बिना नामोल्लेख के आत्मा के परम विशुद्ध रूप भाव मय ही सिद्धों में चारित्र है-

यही बात समयसार में कही गई है-

ववहारेणुवदिस्सइ णाणिस्स चरित दसणं णाणं
णवि णाणं ण चरित्तं ण दसणं जाणगोसुद्धो
(समयसार)

आदि कुंदकुंद स्वामी कहते हैं कि व्यवहार नय से परम शुद्ध परमात्मा केवलज्ञानी आत्मा में दर्शन ज्ञान चारित्र तीनों का ही सद्भाव है ऐसा कहा जाता है किंतु निश्चयनय में उस परम विशुद्ध सिद्धात्मा में न तो दर्शन है न ज्ञान है और न चारित्र है किंतु परम शुद्ध भाव है। अर्थात् अखंड एवं तादात्म्य रूप से अनंत गुणों का पिंड आत्मा है उसमें दर्शन ज्ञान चारित्र का भेद विकल्प नहीं होता है। इसलिये सिद्धों में जैसे ज्ञान दर्शन है वैसे चारित्र भी है और भी स्पष्टीकरण पढ़िये-

दंसण णाण चरित्ताणि सेविदवाणि साधुणा णिच्चं
ताणि पुण जाणि सिण्णियि अप्पाणं चेव णिच्छयदो
(समयसार)

अर्थ-सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनों का सेवन साधु को करना चाहिये यह व्यवहार नय से कहा जाता है। किंतु शुद्ध निश्चयनय से सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र इन तीनों स्वरूप शुद्धात्मा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस उपर्युक्त–सप्रमाण समस्त कथन से सिद्धों में सम्यग्दर्शन सम्यज्ञान सम्यक्चारित्र तीनों का सद्भाव शुद्धात्म रूप से यह बहुत अच्छी तरह से सिद्ध किया गया है। सिद्धों में वीतरागता है यह वीतरागता चारित्र के सिवा और क्या है ? सरागता चारित्र गुण की विभाव पर्याय हैं और वीतरागता चारित्र गुण की परम विशुद्ध पर्याय है। अतः सिद्धों में चारित्र भी प्रमुख गुण है।

सिद्धों में चारित्र का सद्भाव का प्रवल प्रमाण

भगवत् कुंद कुंद स्वामी ने चारित्तभत्ति में लिखा है—

"इच्छामि भत्ते सिद्धभत्ति सम्मंणाणं सम्मदसण
सम्मचारित्र जुत्ताण सव्वसिद्धाणं समाणिच्चकालं
अंचोमि पूजेमि, वंदामि, णमंसामि,, (दशभक्ति)

अर्थात् सिद्धभक्ति में कहा गया है कि सम्यज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र सहित सभी सिद्धों को सदैव मैं अर्चना करता हूं वंदना करता हूं नमस्कार करता हूं।

इस सिद्ध भक्ति में सम्यग्दर्शन सम्यज्ञान सम्यक्चारित्र सहित सिद्धों की वंदना की गई है। इतने प्रमाण उपस्थित करने पर भी जो विद्वान् सिद्धों में चारित्र का अभाव वताते हैं वे आगम के विपरीत बोलते हैं।

जैन दर्शनाचार्य–श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक

विरचित इस ग्रन्थ का सर्वज्ञ का ज्ञेय विषय और
सिद्धों में चारित्र के सद्भाव का निरूपक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आठवां अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ नववां अध्याय

पंचाध्यायी का परिशिष्ट

सैद्धान्तिक शंकाओं का सप्रमाण समाधान

ग्रन्थराज पंचाध्यायी महाशास्त्र में वर्णित विषयों पर अनभिज्ञतावश उठाई गई शंकाओं का सप्रमाण समाधान

कोई २ विद्वान् इन्द्रिय मन की सहायता का वाक्य देखकर यह कहते हैं कि पंचाध्यायी ग्रन्थ में मनः पर्यय ज्ञान में भी इन्द्रिय मन की सहायता बताई है इसलिये वह परोक्ष ज्ञान ठहरेगा। ऐसा कहने वाले विद्वान् इस ग्रन्थ को ध्यान पूर्वक पढ़ें और अन्य शास्त्रों को भी ध्यान से पढ़ें तो उनको ऐसी शंका नहीं होगी। उनकी शंका का समाधान इसी ग्रन्थ से और दूसरे ग्रन्थों से इस प्रकार है :—

देश प्रत्यक्ष मिहावधिधिमनः पर्ययश्च यज्ज्ञानम्
देशं नो इंद्रिय मन उत्थात् प्रत्यक्ष मितरनिरेपेक्षम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छद्मस्थावस्थाया यावदिंद्रिय सहाय सापेक्षम्
यावज् ज्ञान चतुष्टय मर्थात् सर्वं परोक्षमिववाच्यम्
(पञ्चाध्यायी)

अर्थ :—अवधि ज्ञान और मनः पर्ययज्ञान इन दोनों को एक देश प्रत्यक्ष कहा गया है। देश तो इसलिये कहा गया है कि ये दोनों ज्ञान इंद्रिय और मन की वाह्य सहायता से उत्पन्न होते हैं। प्रत्यक्ष इसलिये कहा गया है कि दोनों ज्ञान इन्द्रिय मन की सहायता से रहित आत्मा से साक्षात् प्रत्यक्ष करते हैं। छद्मस्थ अवस्था में मतिश्रुत अवधि मनः पर्यंय ये चारों ज्ञान कर्मों के आवरण और इन्द्रिय तथा मन की वाह्य सहायता की अपेक्षा रखते हैं। इसलिये ये चारों ज्ञान परोक्षज्ञान जैसे मालूम होते हैं। परंतु अवधि मनः पर्यंय ज्ञानों के लिये उन्होंने इन्हीं दो श्लोकों में यह खुलासा किया है कि ये दो ज्ञान इन्द्रियों और मन की सहायता मतिज्ञान श्रुतज्ञान के समान नहीं लेते हैं किंतु उस सहायता से निरपेक्ष होकर आत्मा से साक्षात् प्रत्यक्ष करते हैं। श्लोक में "इव" शब्द है उससे और भी खुलासा हो जाता है कि परोक्ष जैसे मालूम होते हैं वास्तव में परोक्ष नहीं है।

अवधि मनः पर्यंय ज्ञानों के विषय में स्पष्टीकरण

केवल ज्ञान सर्व प्रत्यक्ष है उसमें किसी वाह्य इन्द्रिय मन आदि की सहायता नहीं है और न ज्ञानावरण कर्म का सद्भाव है इसलिये वह शुद्ध आत्मा में परिपूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान है। परंतु अवधि मनः पर्यंय में इतनी विशुद्धता नहीं है। वे दोनों क्षयोपशम ज्ञान है उनमें सर्वथा आवरण हटा नहीं है। दूसरे इन्द्रिय मन की सहायता भी बाहर में लेते हैं इसलिये परोक्ष सरीखे हैं वास्तव में ये दोनों ज्ञान भी केवल आत्मा से ही होते हैं, इन्द्रियों की सहायता प्रत्यक्ष करने में नहीं लेते हैं अतः "प्रत्यक्ष मितर निरपेक्षम्" आत्मा से ही होते है अतः वे दोनों प्रत्यक्ष हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और भी खुलासा यह है कि बाहर में सहायता लेने का अर्थ यह नहीं है कि जैसे मतिश्रुत ज्ञान इन्द्रिय और मन से ही उत्पन्न होते हैं। वैसे अवधि मनः पर्यय इन्द्रिय मन की सहायता से नहीं होते हैं किंतु साक्षात् बिना वाह्य सहायता के आत्मा से ही प्रत्यक्ष करते हैं। वाह्य सहायता से यह प्रयोजन है जैसे ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञान सरल मन बचन काय वाले मनुष्य के मन के विचारों का प्रत्यक्ष करता है किंतु वह कुटिल मायाचारी व्यक्ति के भावों का प्रत्यक्ष करने में असमर्थ हैं अतः पहले ईहा मतिज्ञान द्वारा वह उस व्यक्ति की वाह्य आकृति को देखता है यदि भीतर मन में तो खेद और चिंता से दूसरा विचार करता है और वाहर में लोक व्यवहार में अपने मन के भावों को छिपाने के लिये वाहर बनावटी रूप में अपने मुख (चेहरे) को प्रसन्न वनाये हुए है तो ऐसे व्यक्ति के मन के भावों को ऋजुमति नहीं जान सकता है वह उसकी वाह्य आकृति को मन वचन की प्रवृत्ति को पहले इन्द्रियों और मन से देखकर बिचार करेगा फिर विना इन्द्रिय और मन की सहायता लिये स्वयं अपनी आत्मा से उस व्यक्ति के मन की वात को साक्षात् प्रत्यक्ष करता है। यही बात ऊपर के दोनों श्लोकों में प्रगट की गई है और इसी वात का समर्थन सभी शास्त्र करते हैं देखिये—आचार्य नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती कहते हैं :—

परमणसिद्धिय मट्ठं ईहामदिणा उजुट्ठियं लहिय
पच्चा पच्चक्खेणय उजुमदिणा जाणदे णियमा
इन्दियणो इंदिय जोगादि पेक्खितु उजुमदि होदि
(गोमट्ट सार)

अर्थ :—ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानी दूसरे के मन में आये हुए पदार्थ को पहिले ईहामतिज्ञान से सरल रूप में जानकर (इतना वाहरी जानकर) पीछे अपने आत्मीय प्रत्यक्ष द्वारा उस मन में विचारी हुई वात का साक्षात् प्रत्यक्ष करता है। तथा इन्द्रिय नो इंद्रिय की अपेक्षा से वाहरी आकृत्ति आदि को देखकर फिर ऋजुमति मनः पर्यय ज्ञानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूसरे के मन की बात को प्रत्यक्ष करता है विपुल मति मनः पर्ययज्ञानी तो कुटिल मायाचारी के मन में ठहरी हुई बात को बिना बाहरी आकृति देखे स्वयं आत्मा से साक्षात् प्रत्यक्ष करता है।

गोम्मट सार के प्रमाण से पंचाध्यायी का कथन एक रूप में मिलता है। इसलिये पंचाध्यायी के कथन में असाधारण विशेष विवेचना तो महत्वपूर्ण है परन्तु पूर्वाचार्यों के कथन से विरुद्धता किञ्चिन्मात्र कहीं भी नहीं है।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च संमूर्छन भी होते हैं

पंचेन्द्रिय तिर्यंच संमूर्छन भी होते हैं इसका प्रमाण पंचक्ख तिरिक्खाओं गब्भज समुच्छिमा तिरिक्खाण भोगभुमा गब्भमवा नरपुण्णा गब्भजा चेव।

(गोम्मटसार जीव कांड)

अर्थ– पंचेन्द्रिय तिर्यंच गर्भज और संमूर्छन होते हैं भोग भूमि के तिर्यंच गर्भज होते हैं। मनुष्य पर्याप्तक गर्भज ही होते हैं। इस गाथा से उन विद्वानों की यह मान्यता निर्मूल एवं आगम विरुद्ध है कि पंचेन्द्रिय असंज्ञी तिर्यंच संमूर्छन नहीं होते हैं। प्रत्युतः संज्ञी मनुष्य भी संमूर्छन होते हैं उसका प्रमाण–

उववादगब्भजेसुय लद्धि अपज्जत्तगाण णियमेण
णर समुच्छिभजीवा लद्धि अपज्जत्तगा चेव

(गोम्मटसार जीवकांडगाथा ९२)

अर्थ– उपवाद जन्म और गर्भ जन्म वाले जीव लब्ध्यपर्याप्तक नियम से नहीं होते हैं। किन्तु मनुष्य संमूर्छन जीव लब्ध्य पर्याप्तक ही ही होते हैं।

जो विद्वान असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को संमूर्छन नहीं वताते हैं उन्हें इन गाथाओं से अपनी मान्यता शास्त्र विपरीत समझना चाहिये। पंचाध्यायी और गोम्मटसार आदि शास्त्रों से स्पष्ट हो जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। लब्ध्य पर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यंच और संज्ञी लब्ध्य पर्याप्तक मनुष्य भी संमूर्छन ही होते हैं।

जो कथन गोम्मटसार में है वही पंचाध्यायी में हैं मतभेद समझना अथवा ग्रन्थ को सहसा अप्रमाण कह देना भारी भूल है। देखिये—

तत्रोपचार हेतुर्यथा मतिज्ञान मक्षजं नियमात्
अथ तत्पूर्वं श्रुतमपि न तथा वधिचित्त पर्ययंज्ञानन्
यत्स्या दवग्रहेहावायानति धारणा परायत्तम्
आद्य ज्ञानद्वयमिह यथा तथा नैव चाँतिमं द्वैत्तम्

(पंचाध्यायी पृष्ठ २०७)

इन दोनों श्लोकों से पंचाध्यायी कार ने स्पष्ट कर दिया है कि जिस प्रकार मतिश्रुत ये दोनों ज्ञान इन्द्रिय ज्ञान होने से परोक्ष हैं। उस प्रकार अवधिमनः पर्ययज्ञान इन्द्रिय जन्य और परोक्ष नहीं है।

इसी प्रकार असंज्ञी पचेंद्रिय तिर्यंच को पंचाध्यायी कार ने नपुंसकलिंग वाला ही लिखा है। धवल शास्त्र में असंज्ञीपंचेद्रियतिर्यंच को तीनों लिंग वाला बताया गया है। इस कथन पर भी शंका खड़ी की गई है कि पंचाध्यायी का कथन शास्त्रों से विरुद्ध हैं। परन्तु पंचाध्यायी का पूर्वा पर अध्ययन करने से यह शंका भी नहीं ठहरती है। पंचाध्यायीकार ने संमूर्छन जीवों के प्रकरण में असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को नपुंसक लिंगी बताया है। संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य भी जो संमूर्छन होते हैं वे भी नपुंसक लिंग वाले ही होते हैं। परन्तु असंज्ञी पंचेन्द्रिय से लेकर संज्ञी पंचेन्द्रिय जो गर्भज होते हैं उन्हें पंचाध्यायी कार ने तीनों लिंग वाला बताया है।

ग्रन्थ का पूरा अध्ययन किये बिना ऐसा भ्रम होता है पंचाध्यायी ग्रन्थ एक महान प्रामाणिक अद्वितीय ग्रन्थ है। उसमें एक बात भी पूर्वाचार्यों के विरुद्ध नहीं है। सामजस्य से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैभाविक शक्ति जीव का गुण है वह नित्य है

सिद्धान्त के ज्ञाता कोई विद्वान् वैभाविक भावको कर्मजनित पर्याय बताते हैं उनका कहना है कि योगों के द्वारा जो कर्मास्रव होता है उसी से कषाय का सहयोग मिलने से विभाव पर्याय बन जाती है। वैभाविक आत्मा की कोई शक्ति या गुण नहीं है परन्तु उनका यह कहना शास्त्र और हेतु दोनों से विरुद्ध है पंचाध्यायीकार ने इस विषय का अनेक श्लोकों द्वारा खुलासा किया है, वे इस वैभाविक शक्ति को आत्मा का नित्य गुण कहते हैं प्रमाण इस प्रकार हैं–

अस्ति वैभाविकी शक्ति स्तत्तद्रव्योपजीविनी
सा चेद्वन्धस्य हेतुः स्या दर्थान्मुक्तेरसंभव
सत्यं नित्या तथा शक्तिः शक्तित्वात् शुद्धशक्तिवत्
अथान्यथा सतो नाशः शक्तीनां नाशतः क्रमात्
(पंचाध्यायी)

अर्थ—वैभाविकी शक्ति अथवा वैभाविक गुण पुद्गल और जीव इन दो द्रव्यों का उपजीवी गुण है। यदि वही विभावशक्ति वन्ध का कारण माना जाय तो इस जीव को कभी मोक्ष नहीं मिल सकती है। वह वैभाविक शक्ति नित्य है क्योंकि वह शक्ति है जैसे अन्य शुद्ध शक्तियां होती हैं उसी प्रकार वैभाविक शक्ति भी नित्य शक्ति है। यदि वैभाविक शक्ति का नाश माना जाय तो द्रव्य का ही नाश हो जायगा। क्योंकि शक्तियों के क्रम क्रम से नाश होने से द्रव्य का नाश सुतरां होजायगा।

किन्तु तस्या स्तथाभावः शुद्धादन्योन्य हेतुक
तन्निमित्ताद्विना शुद्धो भावः स्यात् केवलं स्वतः
(पंचाध्यायी)

अर्थ— उस वैभाविक गुण का जो विभावभाव होता है वह विकारीभाव अन्योन्य हेतुओं से होता है। अर्थात् योग और कषायों के निमित्त से होता है। यदि योग कषाय का निमित्त हट जाय तो वह वैभाविक गुण आत्मा में शुद्ध रूप में सदैव रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचाध्यायी में इन श्लोकों के आगे पीछे और अनेक श्लोक हैं उनका परस्पर सम्बन्ध है और बहुत खुलासा वर्णन है।

इस सम्बन्ध में खुलासा इस प्रकार है—

छह द्रव्यों में धर्म अधर्म आकाश काल ये चार द्रव्य तो सदैव शुद्ध और अमूर्तिक ही रहते हैं उनमें कभी कोई विकार नहीं होता है। परन्तु जीव और पुद्गल इन दो द्रव्यों में परनिमित के मिलने से विकार अथवा विभाव भाव होता है यहां विचार इस बात का करना है कि वाह्य निमित्त मिलने पर भी धर्म अधर्म आकाश और काल ये चार द्रव्य अशुद्ध नहीं होते हैं सदैव शुद्ध ही रहते हैं परन्तु जीव पुद्गल ये दो द्रव्य वाह्य निमित्त मिलने पर अशुद्ध क्यों होते हैं? इसका मूल कारण क्या है? इस शंका के समाधान में पंचाध्यायीकार ने स्पष्ट किया है कि जीव पुद्गल इन दो द्रव्यों में वैभाविक गुण है अन्य चार द्रव्यों में वह नहीं है। उस गुण में यह योग्यता है कि पर निमित्त मिलने पर आत्मा और पुद्गल विभावभाव वाले बन जाते हैं। विना अंतरंग शक्ति के केवल वाहरी निमित्त किसी द्रव्य का कोई विगाड़ नहीं कर सकते हैं। जिस प्रकार चुम्बक में लोहे को खींचने की शक्ति है तभी उसके द्वारा लोहा खिचा चला आता हैं। इसी प्रकार आत्मा और पुद्गल में वैभाविक शक्ति के कारण पर निमित्त के मिलने पर विकारीभाव उत्पन्न हो जाते हैं। आत्मा में पर निमित्त पुद्गल कर्म और उसके उदय से होने वाला राग द्वेष है उस कारण से आत्मा में विकार होता है पुद्गल में उसी वैभाविक शक्ति के कारण स्निग्ध रूक्ष आदि निमित्त मिलने पर परस्पर बंध एवं स्कन्ध रूप विभाव परिणाम होता है। आकाशादि चार द्रब्यों में वाहरी निमित्त कार्माणवर्गणाएं हैं उनके रहते हुए भी वैभाविक शक्ति के न हो होने पर उन चार द्रव्यों में अशुद्धता कभी नहीं आती है।

सिद्धा में भी वैभाविक गुण हैं वहाँ विकारीभाव क्यों नहीं होता है इसके समाधान में यह समझना चाहिये कि सिद्धों में वाहरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निमित्त राग द्वेषादि नहीं हैं। अतः वह वैभाविक गुण स्वभाव रूप में सदैव रहता है जैसे अग्नि पर चावल आदि रक्खोगे तो उन्हें वह पका देगी परन्तु चांवल आदि कुछ नहीं रक्खोगे तो भी अग्नि अपने पकाने के स्वभाव को नहीं छोड़ती है। परन्तु बिना निमित्त मिले वह पका नहीं सकती है।

उपादान में विभाव परिणमन करने वाली शक्ति के माने बिना विभाव परिणमन कभी नहीं हो सकता है जैसे कि आकाशादि चार द्रव्यों में नहीं होता है।

इसी पंचाध्यायी ग्रन्थ में एक शंका यह भी उठाई गई है कि वैभाविक शक्ति के समान एक स्वाभाविक शक्ति भी मानना चाहिये जिससे स्वभाव परिणमन हो सके। इस शंका के उत्तर में इसी ग्रन्थ में यह समाधान किया गया है कि दो शक्तियां मानने से दोनों विरोधोभावों में संमिश्रण और परस्पर विरुद्धता होगी इसलिये एक वैभाविक शक्ति मानना ही कार्यकारी है जब वैभाविक शक्ति को पर निमित्त नहीं मिलता है तब वही शक्ति स्वभाव पर्याय में परिणत हो जाती है इसलिये दो शक्ति मानना व्यर्थ है।

किसी शास्त्र में इस वैभाविक गुण का निषेध नहीं है। भले ही उसे नित्य रूप से उल्लेख नहीं किया गया हो। आकाश के समान ही आत्मा अमूर्तिक है तथा परमाणु भी शुद्ध है उनमें जो विभाव भाव होता है वह अपने में परिणमन करने वाली अंतरंग विभाव शक्ति से ही होता है। उसी की विभाव और स्वभाव दो पर्यायें होती हैं।

सद्भूत असद्भूत व्यवहार नयों का स्पष्टीकरण

पंचाध्यायी ग्रन्थराज में नयों के दो भेद किये हैं एक निश्चय और दूसरा व्यवहार ये भेद समयसार आदि सभी शास्त्रों में पाये जाते हैं। किंतु अन्तर्दृष्टि एवं विशेष स्पष्टीकरण दृष्टि को ध्यान में रखकर पंचाध्यायीकार ने उन दोनों नयों के सद्भूत असद्भूत उपचरित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुपचरित ऐसे ही अन्तर्भेद किये हैं। सभी शास्त्रों में ऐसे भेद नहीं मिलने से स्वाध्यायशील एवं शास्त्र चिंतन करने वाले महानुभावों को इन नय भेदों में कुछ विरोधसा प्रतीत होता है परन्तु वास्तव में सभी आचार्यों के कथन में कहीं भी विरोध नहीं है किन्तु विशेष विवक्षावश विशेष वर्णन अन्य शास्त्रों की दृष्टि में विरोधसा प्रतीत होता है उसका खुलासा हम संक्षेप से कर देते हैं—

अपिचाऽसद्भूतानि व्यवहारान्तो नयश्च भवति यथा
अन्य द्रव्यस्य गुणाः संयोजन्ते वलादन्यत्रं
स यथा वर्णादिमंतो मूर्तद्रव्यस्य कर्म किलमूर्तम्
तत्संयोग त्वादिह मूर्ताः क्रोधादयोपि जीवभवा

(पंचाध्यायी)

अर्थः— दूसरे द्रव्य के गुण अन्य किसी दूसरे द्रव्य में आरोपित किये जांय ऐसी क्विक्षा में असद्भूत व्यवहार नय कहा जाता है जैसे- पूद्गल द्रव्य रूप रसादि गुणों वाला है वह मूर्त है उसी पुद्गल की पर्याय कर्म है वह भी मूर्त है। उस कर्म के संयोग से क्रोधादि भाव मूर्त हैं जो जीव में उत्पन्न होते हैं।

पंचाध्यायीकार ने क्रोधादिकों को आत्मा का निज गुण नहीं माना है इसीलिये इसे असद्भूत व्यवहार नय का विषय कहा है इस पंचाध्यायी के कथन की पुष्टि समयसार कलश से होती है देखिये-

चैद्रूप्यं जड़रूपतां च दधतोः कृत्वा विभागं द्वयोः
रन्तर्दारुणं दारणेन परितो ज्ञानस्य रागस्य च
भेदज्ञान मुदेति निर्मलमिदं मोदध्व मध्यासिताः
शुद्ध ज्ञान धनौघ मेक मधुना सन्तो द्वितीयच्युताः

(समयसार कलश १२६ संबर अधिकार)

अर्थः— चिद्रूपता को धारण करने वाला तो ज्ञान है। और जड़ रूपता को धारण करने वाला राग (क्रोधादि) हैं। इनका भेद करके से क्रोधादि भावों से भिन्न निर्मल ज्ञान प्रगट हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस कलश से यह स्पष्ट कर दिया गया है कि क्रोधादि विकारी भाव जड़ रूप हैं वह आत्मा का निज रूप नहीं है। संवर अधिकार में आचार्य कुंदकुंद स्वामी कहते हैं कि—

उवओगे उवओगो कोहादिसु णत्थि कोवि उवओगे
कोहो कोहे चेवहि उवओगे णत्थि खलु कोहो ।

(गाथा १८१ समयसार)

इस गथा की संस्कृत टीका में लिखा है कि—

"न पुनः क्रोधादिषु कर्मणिनो कर्मणि नो कर्मणि वा ज्ञान मस्ति तच ज्ञाने क्रोधादय कर्म नो कर्म वा सन्ति परस्पर मत्यन्त स्वरूप वैपरीत्येन परमार्थ धारा धेय सम्बन्ध शून्यत्वान्"

(समयसार संस्कृत टीका)

अर्थात् क्रोधादि कर्म तो कर्म में ज्ञान नहीं है तथा ज्ञान में क्रोधादिक कर्म नोकर्म नहीं है। परस्पर दोनों में अत्यन्त स्वरूप की विपरीतता है। इसलिये परमार्थ से इनका कोई आधार आधेय भाव नहीं है।

ज्ञान आत्मा का गुण है उसका आधार आत्मा है क्रोधादि कर्म नो कर्म का विकार है उसका आधार आत्मा नहीं है। क्रोधादि को इस गाथा में जड़ रूप की संज्ञा दी गई हैं। इसलिये क्रोधादि को आत्मा का गुण कहना असद्भूत व्यवहार नय का विषय है। पंचाध्यायी के कथन में और समयसार के कथन में एक रूपता है।

जिस शास्त्र में क्रोधादि भाव को असद्भूत निश्चय नय का विषय बताया गया है तो वह भी आगम विरुद्ध नहीं है। वैसा मानने में यह विवक्षा है कि क्रोधादि भाव चारित्र गुण का विभाव भाव है। अर्थात् चारित्र गुण की कर्मोदय जनित विभाव पर्याय है। इस दृष्टि से क्रोधादि भाव को असद्भूत निश्चय नय में गर्भित किया गया है। किन्तु समयसार, समयसार कलश तथा पंचाध्यायी में क्रोधादि भाव को आत्मा का गुण नहीं होने से एवं कर्मोदय जनित जड़ रूपता होने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से असद्भूत व्यवहार नय में गर्भित किया गया है। यह विवक्षा भेद है शब्द भेद, भाव भेद, विवक्षा भेद आदि दृष्टिकोंण भेद से नाना नय भेद हो जाते हैं उनमें परस्पर विरोध समझना भूल है। जैसे कोई मिट्टी का घड़ा कहता है कोई घी का घड़ा कहता है। दोनों में विवक्षा अथवा अभिप्राय भेद हैं वास्तव में विरोध नहीं है। आचार्यों के कथन में विरोध नहीं है। विवक्षा दृष्टि को नहीं समझने से विरोध मालूम होता है।

विशेष कथन की अपेक्षा से विरोध नहीं है क्योंकि क्रोधादि भाव को जीव का गुण कहना भी सही नहीं है और क्रोधादि भाव को मूर्त कहना भी सही नहीं है। किन्तु अपेक्षा दृष्टि से दोनों सही हैं। जैसे सर्वार्थ सिद्धि में कहा गया है—

"औपशमिकादि भावानुपपत्ति रमूर्तत्वादात्मनः कर्मबन्धापेक्ष-याहि ते भावाः नच अमर्ते कर्मणां बन्धो युज्यते न अनेकान्तात् नाय मेकान्ततोरमूर्ति रेवात्मा। कर्मबन्धन पर्यायापेक्षया तदावेशात् स्यान्मूर्तः शुद्धस्वरूपापेक्षया स्यादमूर्तः।

(सर्वार्थ सिद्धि)

अर्थः— औपशमकादिक भाव नहीं हो सकते हैं क्योंकि आत्मा अमूर्तिक है। वे भाव कर्म बन्ध की अपेक्षा से होते हैं और अमूर्तिक आत्मा के कर्म बंध नहीं हो सकता है। इसके समाधान में आचार्य कहते हैं कि ऐसा एकांत नहीं हैं किन्तु अनेकान्त हैं आत्मा सर्वथा अमूर्तिक ही है ऐसा भी नहीं है। किन्तु कर्म बंध की अपेक्षा से कर्मों के प्रभाव से मूर्तिक भी है। तथा अपने शुद्ध स्वभाव की अपेक्षा से अमूर्तिक भी है। इस कथन से आत्मा में होने वाले क्रोधादि भाव कथंचित आत्मा के और कथंचित् पुद्गल के हैं।

व्यवहार नय मिथ्या क्यों है ?

जहां पर पंचाध्यायी में व्यवहार नय को मिथ्या और उसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नय को मुख्य रूप से मानने वाले को मिथ्या दृष्टि कहा गया है इस पर भी शंका की जाती है कि व्यवहार नय क्या मिथ्या हैं और उसे मानने वाला क्या मिथ्या दृष्टि है ?

ऐसी शंका भी अपेक्षा एवं दृष्टि भेद को समझ लेने से सहज दूर हो जाती है। जिस प्रकरण में व्यवहार नय को मिथ्या एवं वैसे उपदेशक को मिथ्या दृष्टि कहा गया है वह निश्चय नय का प्रकरण है निश्चय नय का विषय द्रव्य में गुण गुणी का भेद नहीं बताता है। द्रव्य गुण पर्याय ऐसा भेद द्रव्य में नहीं है। द्रव्य भेद गुण भेद पर्याय भेद मानना वस्तु स्वरूप नही हैं किन्तु अनन्त गुणों का अ॑नर्वचनीय निर्विकल्पक अखंड पिंड ही द्रव्य है। वही निश्चय नय का विषय हैं।

इसीलिये निश्चय नय को प्रतिषेधक और व्यवहार नय को प्रतिषेध्य कहा गया है दूसरे शब्दों में यह कहा जाता है कि जो कुछ भी व्यवहार नय कहता है वह सब निषेध करने योग्य है। पंचाध्यायी-कार ने इस विषय को अनेक श्लोकों द्वारा बहुत विस्तार से कहा है उन श्लोकों को पूर्वा पर संबंध मिलाकर ध्यान से समझने पर कोई शंका या विरोध नहीं रहता है। निश्चय नय का कथन यह है कि यदि कोई आत्मा को यह कहता है कि इसका सम्यग्दर्शन गुण है तो निश्चय नय कहता है कि ऐसा नहीं है। कोई जीव का गुण ज्ञान कहता है या चारित्र कहता है तो निश्चय नय उसका भी निषेध करता है कि ऐसा नहीं है। जो भी गुण भेद पर्याय भेद द्रव्य भेद किया जायगा वह सब निश्चय नय की दृष्टि में निषेध करने योग्य हैं क्योंकि निश्चय नय का विषय केवल अखंड पिंड है। तादात्म्य रूप एक है बचन से कहने योग्य नहीं है। इसलिये उस निश्चय नय के स्वरूप में भेद लाने वाला व्यवहार नय का कथन मिथ्या है और उस भेद को ही मानने वाला निश्चय नय की दृष्टि में मिथ्या दृष्टि है। क्योंकि वह व्यवहार नय वस्तु के शुद्ध एकात्मक रूप को अनेक एवं भेद रूप कहता है अतः मिथ्या है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी का खुलासा पंचाध्यायी में इस प्रकार है–

सत्यं न गुणाभावो द्रष्याभावोन नोभयाभाव:
नहिं तद्योगाभावो व्यवहार: स्यात्तथा प्यभूतार्थ:
इत्यत्र निदानं किल गुणवद्द्रव्यं यदुक्तमिहं सूत्रे
अस्ति गुणोस्ति द्रव्यं तद्योगातदिहं लब्धमित्यर्थात्
तद सन्न गुणोस्ति यतो न द्रव्यं नोभयं नत्तद्योग:
केवल मद्वैतं सद्भवतु गुणोवा तदेव सद्द्रव्यम्
तस्मान्यायागत इति व्यवहार: स्यान्नयोप्यभूतार्थ:
केवल मनुभवितारस्तस्य च मिथ्यादृशो हतास्तेपि

अर्थ:— द्रव्य में न तो गुण का अभाव है ओर न द्रव्य का अभाव है और न दोनों का अभाव है और न उनके सम्बन्ध का अभाव है तो भी व्यवहार नय अभूतार्थ है। इसका क्या कारण है कि गुण द्रव्य और उनका सम्बन्ध सव कुछ यथार्थ होते हुए भी व्यवहार नय अभूतार्थ क्यों है ? इसका मूल कारण यह है कि व्यवहार नय गुण द्रव्य और उन दोनों को सम्बन्ध रूप में ग्रहण करता है जैसे गुणवान द्रव्य हैं। दर्शन ज्ञान चारित्र ये जीव के गुण हैं ऐसा समझना ही निश्चय नय से विपरीत एवं मिथ्या है क्योंकि निश्चय न तो गुण को विषय करता है और न द्रव्य को विषय करता है और न उनके संबंध को विषय करता है किन्तु केवल वस्तु अद्वैत है और निर्विकल्प है। इस निश्चय नय के कथन से यह वात न्याय पूर्ण सिद्ध हो जाती है कि निश्चय नय के शुद्ध अखण्ड एवं निर्विकल्पक स्वरूप को नहीं समझकर जो केवल व्यवहार नय का ही अवलंबन करते हैं अथवा व्यवहार नय को ही यथार्थ सत्य मानते हैं वे मिथ्या दृष्टि हैं जौर वस्तु स्वरूप के विषय में हत बुद्धि हैं।

उपर्युक्त श्लोकों से यह बात स्पष्ट सिद्ध हो जाती है कि निश्चय की अपेक्षा को नहीं रखकर केवल व्यवहार को मानने वाले मिथ्या दृष्टि हैं। यदि निश्चय और व्यवहार दोनों के स्वरूप का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यान रखकर दोनों परस्पर सापेक्ष हैं ऐसा जो मानते हैं वे सम्यग्दृष्टि हैं। अर्थात् निश्चय और व्यवहार दोनों नय परस्पर सापेक्ष हैं और अपनी अपनी अपेक्षा से दोनों ही सत्य हैं। क्योंकि दोनों का विषय यथार्थ है जीव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र वाला है यह कथन भी सत्य है और तादात्म्य दृष्टि से जीव अनन्त गुणों का अखण्ड पिंड है वह अभिन्न सन्मात्र है यह भी कथन सत्य है। किन्तु किसी एक को ही मान लिया जाता है दूसरे नय का निषेध कर दिया जाता है वैसा निरपेक्ष कथन ही मिथ्या है और उसे मानने वाला मिथ्यादृष्टि है।

व्यवहार नय भी यथार्थ सत्य है

ऊपर के श्लोकों से कोई यह समझ ले कि पंचाध्यायीकार ने व्यवहार नयावलंबी को मिथ्यादृष्टि कहा है सो ऐसा समझना भी भूल भरा है। इसी को स्पष्ट करते हुए पंचाध्यायी कार कहते हैं-

यदि निश्चय दृष्टि को ही केवल सत्य एवं यथार्थ माना जाय उसे ही आदरणीय एवं उपादेय माना जाय और व्यवहार नय को हेय एवं त्याज्य माना जाय तो वह भी मानना ठीक नहीं है।

नैवं यतो वलादिह विप्रतिपत्तौ च संशया पत्तौ
वस्तु विचारे यदिवा प्रमाण मुभयाबिलम्बि तद्ज्ञानम्
तस्मादाश्रणीयः केषाञ्चित् स नय प्रसंगत्वात्
अपि सविकल्पानाभिव नश्रेयो निर्विकल्प वौधवताम्

अर्थः— वस्तु में विवाद होने पर अथवा किसी प्रकार का संशय होने पर अथवा वस्तु का स्वरूप समझने के लिए व्यवहार नय भी अनिवार्य रूप से मानना आवश्यक है।

इसलिये व्यवहार नय का भी आश्रय-सहारा लेना पड़ेगा किंतु इतना अवश्य है कि जो निर्विकल्प समाधि में लग चुके हैं आत्म रूप में लीन हो चुके हैं उनके लिए व्यवहार नय उपयोगी नहीं है। किन्तु जो अपरम भाव में है और सविकल्प बोध वाले हैं उनके लिए व्यवहार नय उपयोगी है। यही बात समयसार में कही गई है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसीलिये समयसार और पंचाध्यायी के कथन में कोई विरोध नहीं है। व्यवहार नय की उपादेयता का खुलासा यह है कोई व्यक्ति जिसने पूर्वा पर वस्तु स्वरूप को नहीं समझा है, वह कहे कि जीव का क्या स्वरूप है क्या वह रूप रस वाला है या मूर्त द्रव्य है। इसके उत्तर में यही कहना होगा कि जीव रूप रस वाला नहीं है मूर्त भी नहीं है किंतु चेतन है अमूर्त है। दर्शन ज्ञान चारित्र गुण वाला है। कर्मों के सम्वन्ध से कथञ्चित् मूर्त बन गया है इस विषय में विवाद या संशय भी होता है चार्वाक जीव को नहीं मानता है। सांख्य जीव को सदैव शुद्ध एवं प्रकृति से भिन्न मानता है। नैयायिक वैशेषिक ज्ञान दर्शन गुणों को जीव से भिन्न मानते हैं और मुक्ति होने पर ज्ञान गुण का भी जीव में सद्भाव नहीं मानते हैं इत्यादि विवादों के होने पर एवं संशय होने पर व्यवहार नय का अवलम्बन अत्यावश्यक है उसके बिना जीव तत्व एवं अन्य तत्वों का निर्णय नहीं हो सकता है इसलिये व्यवहार नय उपादेय हैं और वह निश्चय का साधक है इसीलिये यही बताया गया है कि तीर्थ स्थिति धर्म तीर्थ की सिद्धि के लिए व्यवहार नय अत्यावश्यक है।

दोनों नयों की सिद्धि के लिए पंचाध्यायीकार ने एक श्लोक वहुत ही महत्व का कहा है–

इदमत्र समाधानं व्यवहारस्य च नयस्य यद्वाच्यम्
सर्वं विकल्या भावे तदेव निश्चय नयस्य तद्वाच्यम्

अर्थः— ज्ञान दर्शन चारित्र आदि गुणों के द्वारा जीद का स्वरूप विवेचन करना आदि जितना भी व्यवहार नय है यदि उस व्यवहार नय के गुण भेद के विकल्पों को छोड़कर गुण भेद के बिना अभिन्न एवं केवल अखंड रूप में आत्मा का अस्तित्व ग्रहण किया जाय तो वही निश्चय नय है।

इस श्लोक से व्यवहार नय और निश्चय नय दोनों की सत्यता सिद्ध होती है। गुण गुणी का भेद और अभेद दोनों ही दोनों नयों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय हैं पदार्थ की यथार्थता दोनों में है। पंचाध्यायी के आगे के श्लोकों में यह सिद्ध किया गया है कि निश्चय और व्यवहार दोनों ही उपयोगी हैं निरपेक्ष कोई भी नय सत्य नहीं है। दोनों में एक साध्य एक साधक है।

जैन दर्शनाचार्य-श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का पंचाध्यायी ग्रन्थराज के
विषय में उठाई गई सैद्धान्तिक शंकाओं
का सप्रमाण समाधान निरूपक

नववां अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ दसवां अध्याय

श्री पंचाध्यायी ग्रन्थराज के कर्ता (रचयिता) कौन हो सकते हैं ? अर्थात् शब्द शैली भाव शैली गंभीर विवेचन आदि तुलनाओं से आचार्य मुकुट अमृतचन्द्र जी सूरि हो सकते हैं इसका तुलनात्मक समर्थन

पंचाध्यायी के कर्ता सहेतुक कौन हो सकते हैं ?

श्री ग्रन्थराज पंचाध्यायी के बनाने वालों का ठीक निर्णय तो हमारे सामने नहीं है। पंचाध्यायी ग्रन्थ ही अधूरा है ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ को पाँच अध्यायों में पूरा करने का संकल्प किया था जैसा कि पंचाध्यायी के मंगलाचरण में पहले ही श्लोक में उन्होंने दो बातों का स्पष्टीकरण कर दिया है—

पंचाध्यायावयंव मम कर्तुं ग्रंन्थराज मात्म वशात्
अर्थालोक निदानं यस्य वचस्तं स्तुवे महावीरम्

अर्थः— अपनी बुद्धि के अनुसार मैं इस ग्रन्थराज को पांच अध्यायों में बनाना चाहता हूं। पदार्थों के प्रकाश के कारण श्री १००८ भगवान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महावीर स्वामी के बचन हैं अतः मैं उन्हीं भगवान महावीर स्वामी का स्तवन करता हूँ।

इस श्लोक से ग्रन्थकर्ता ने इस पंचाध्यायी ग्रन्थ की रचना पांच अध्यायों में करने की बलवती इच्छा से इसका नाम पंचाध्यायी रक्खा है। परन्तु लिखते हुए बहुत खेद होता है कि केवल डेढ़ अध्याय बनाने के वाद ग्रन्थकार स्वर्गवासी बन गये होंगे ऐसा ही समझा जाता है। डेढ़ अध्याय के पठन पाठन से सुविज्ञ विद्वानों को द्रव्य निरूपण और सम्यक्त्व निरूपण से जो महान् गंभीर एवं अपूर्व तत्व रहस्य का सूक्ष्म परिज्ञान होता है उसे जानकर यह पता सहज लग जाता है कि यदि इस ग्रन्थ के पांच अध्यायों की रचना हो जाती तो महान् सूक्ष्म तत्वों का और सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का अतीव विशद स्वरूप स्वाध्याय करने वालों के हृदय को प्रफुल्लित एवं आह्लादित कर देता भगवान महावीर स्वामी की जिनवाणी के प्रकाश में इस पंचाध्यायी की संकल्प साध्य रचना को ग्रन्थराज के नाम से ग्रन्थकर्ता ने स्वयं पहिले से ही घोषित कर दिया है।

डेढ़ अध्याय की रचना से ही इस ग्रन्थ का महत्व सर्वोपरि माना जाता है। इसीलिये इसके कर्ता की जिज्ञासा विद्वानों को होती है। कर्ता कोई भी हो हम सवों को तो पदार्थ बोध से प्रयोजन है फिर भी कर्ता के अन्वेषण (खोज) से ग्रन्थ का प्रामाण्य एवं गौरव विशेष रूप से हृदय में स्थान पाता है तथा अधिक श्लाघ्य होता है। जिस प्रकार सभी आचार्यों के वचन प्रमाणीक है किन्तु भगवत्कुंदकुंद स्वामी के बचन अधिक श्लाघ्य माने जाते हैं। वक्तु: प्रमाणात् वचनं प्रमाणम् वक्ता के प्रमाण से उनके बचनों का मूल्य आंका जाता है।

वैसे तो लाटी संहिता के कर्ता श्रीमत्कवि पं० राजमल्ल जी की रचना भी प्रमाण हैं। जो रचना पूर्वाचार्यों के बचनों के अनुकूल हो वह भलेही श्रावक विद्वान की हो प्रमाण है, वीतराग महर्षियों के बचनों में तो पूर्ण प्रमाणता है किन्तु श्रावक विद्वान की रचना यदि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्वाचार्यों के वचनों से प्रतिकूल हो तो वह अप्रमाण है।

लाटी संहिता को चारित्र प्रतिपादक प्रमाण ग्रन्थ माना जाता है यदि उसके कर्ता कवि पंडित राजमल्ल जी पंचाध्यायी के कर्ता सिद्ध होते हों तो हमें कोई विरोध नहीं है। किन्तु कवि राजमल्ल जी की रचना शैली तथा भाव गाम्भीर्य एवं शब्द गौरव पंचाध्यायी से सर्वथा भिन्न है जैसा भाव गम्भीर्य भाव सूक्ष्मता एवं तत्वों का वैशिष्ट्य और शब्द सौष्ठुव आदि बातें पंचाध्यायी में हैं वैसा लाटी संहिता में नहीं है इन्हीं सब भेद सूचक हेतु वाद के द्वारा पंचाध्यायी के कर्ता पं० राजमल्ल जी नहीं ठहरते है किन्तु आचार्य मुकुट अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध होते हैं। इस बात की सिद्धि में हम नीचे लिखे हेतु वाद पूर्ण प्रमाण देते हैं।

पंचाध्यायी के कर्ता पं० राजमल जी नहीं हो सकते हैं

श्रीमत्पंडित राजमल जी कवि ने संस्कृत के कई ग्रन्थ बनाये हैं उनके नाम बताये हैं– (१) लाटी संहिता (२) जम्मू स्वामी चरित्र (?) पिंगल शास्त्र (४) आध्यात्म कमल मार्तण्ड। इनके अतिरिक्त उनका वना हुआ और भी कोई ग्रन्थ होगा उसका नामोल्लेख प्रकट नहीं हैं।

(१) श्री पं० राजमल जी कवि थे गृहस्थ थे उन्होंने अपने वनाये गए ग्रन्थों में अपने नाम का सर्वत्र उल्लेख किया है। और कौन ग्रन्थ उन्होंने किसके लिये अथवा किस के निमित्त से वनाया इस बात का भी सभी ग्रन्थों में उल्लेख किया है। प्रमाण इस प्रकार हैं—

लाटी संहिता में उन्होंने अपने निवास नगर का वर्णन, हुमायूं अकवर वादशाहों का वर्णन, भट्टारकों का वर्णन प्रारम्भ के सत्तर श्लोकों में लिखा है। फिर जिस फामन सेठ की प्रार्थना पर यह लाटी संहिता ग्रन्थ पं० राजमल जी ने वनाया है उसका वर्णन ११ श्लोकों में किया है। यह लाटी संहिता सात अध्यायों में उन्होंने पूरी की है इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में उन्होंने यह लिखा है–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति श्री स्याद्वादान वद्य गद्य पद्य विद्या विशारद विद्वत्मणि राजमल्ल विरचितायां श्रावकाचारापरनाम लाटी संहितायाँ साधु श्री दूदात्मज फामन मनः सरोजार विन्द विकाशनैकमातंड मंडलायमानायां सामायिक प्रतिमाद्येकादश प्रतिमा पर्यन्त वर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ।

अर्थात् स्याद्वाद विद्या विशारद विद्वत्मणि राजमल विरचित श्रावकाचार अपर नाम लाटी संहिता में श्री दूदा के पुत्र फामन के मन कमल को प्रफुल्लित करने वाले सूर्य के समान ग्यारह प्रतिमा पर्यन्त वर्णन करने वाला यह सातवां सर्ग (अध्याय) समाप्त हुआ। इसी प्रकार की पंक्तियां प्रत्येक अध्याय में उन्होंने लिखी हैं। परन्तु पंचाध्यायी जैसे महान ग्रन्थराज में ग्रन्थकर्ता का कहीं भी नामोल्लेख नहीं है। यदि पंचाध्यायी ग्रन्थ पं० राजमल जी का बनाया होता तो उनके बनाये हुए अन्य ग्रन्थों के समान पंचाध्यायी ग्रन्थ में भी वे अपना नामोल्लेख अवश्य करते।

(२) लाटी संहिता के तीसरे अध्याय में सम्यग्दर्शन का कथन है उसके वर्णन में पं० राजमल जी ने गोम्मटसार आदि कई शास्त्रों के गाथा और श्लोक रख दिये हैं। पंचाध्यायी के तो सम्यग्दर्शन के स्वरूप विवेचक अनेक श्लोक लाटी संहिता में रख दिये हैं। किंतु उसी प्रकरण में जहां उनकी निजी लेखनी है वहां पर उन्होंने बहुत मोटा कथन किया है। प्रमाण के लिये देखिये—

लाटी सहिता के पृष्ठ ११७ में श्लोक १३७, १३८ में उन्होंने यह लिखा हैं—

"यदि अविरत सम्यग्दृष्टि के ही दर्शन प्रतिमा मानली जाय तो फिर उसके पांचवां गुण स्थान ही मानना पड़ेगा। क्योंकि प्रतिमायें सब पांचवें गुण स्थान में ही होती हैं। तथा अविरत सम्यग्दृष्टि के पांचवां गुण स्थान मानने से फिर चौथा गुण स्थान कोई बन ही नहीं सकेगा इस प्रकार चौथे गुण स्थान का अभाव ही मानना पड़ेगा।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार इसी प्रकरण में आगे भी शंका समाधान रूप में बहुत मोटा कथन है। उन्होंने यही तो लिखा है कि अविरत सम्यक दृष्टि के पांचवा गुण स्थान मान लिया जाय तो चौथे गुण स्थान का अभाव हो जायगा। इस कथन से शंका का समाधान नहीं हो पाता है शंकाकार कह सकता है कि चौथे गुण स्थान का अभाव होता है तो होने दो। उन्हें हेतु एवं प्रमाण देना था कि चौथे गुण स्थान में अप्रत्याख्यान कषाय का उदय है वह संयम रूप चारित्र के होने में बाधक है। मूल गुणों के पालन में भी अतीचार निरतीचार आदि का भेद है। यह सब हेतुवाद एवं प्रमाण नहीं देकर केवल यह समाधान कि चौथे गुण स्थान का अभाव हो जायगा बहुत मोटा (स्थूल) कथन है।

पंचाध्यायी का सभी वर्णन अत्यन्त गम्भीर सहेतुक एवं अति सूक्ष्म है। लाटी संहिता में सभी कथन सरल और स्थूल है। इसलिये पं० राजमल जी की विद्वत्ता में और पंचाध्यायी के कर्ता की विद्वत्ता में बहुत बड़ा अन्तर है। इससे हम पं० राजमल जी का अपमान करना नहीं चाहते हैं। उन्हें हम उच्च कोटि का विद्वान और सिद्धांतज्ञ मानते हैं उनकी रचना को प्रमाण मानते हैं। किन्तु लाटी संहिता के कर्ता पंचाध्यायी के कर्ता सिद्ध नहीं हो सकते हैं। इसी बात को सिद्ध करने के लिए वस्तु स्थिति का दिग्दर्शन हमको करना पड़ा है।

(३) पंचाध्यायी के श्लोक ४७६ तक लाटी संहिताकार ने सम्यग्दर्शन प्रकरण के लाटी संहिता में रख लिए हैं आगे पंचाध्यायी में सम्यग्दर्शन का और भी जो विशद कथन है उसे लाटी संहिता में नहीं लिया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि—

एवं मित्यादि सत्यार्थं प्रोक्तं सम्यकत्व लक्षणम्
कैश्चिल्लक्षणिकै सिद्धैः प्रसिद्धं सिद्ध साधनात्

(लाटी संहिता श्लो० १२०)

अर्थः— इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार जो सम्यग्दर्शन का लक्षण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा है वही यथार्थ लक्षण है। वही लक्षण समस्त लक्षणों के जानकार किन्हीं सिद्ध पुरुषों ने कहा है और यही लक्षण हेतुवाद से सिद्ध होता है।

पं० राजमल जी की स्वीकारोक्ति

श्रीमत्पण्डित राजमल जी अतीव सरल प्रकृति के विद्वान थे उन्होंने ऊपर का श्लोक लिखकर यह स्पष्ट कर दिया है कि सम्यग्दर्शन प्रकरण के श्लोक हेतुवाद सहित हैं और समस्त लक्षणों के जानकार किन्हीं सिद्ध पुरुषों ने कहे हैं। पंचाध्यायीकार का नाम नहीं मिलने से उन्हें ऐसा कहना पड़ा। इस श्लोक के आगे उन्होंने चारित्र का वर्णन प्रारम्भ कर दिया है। वास्तव में लाटी संहिता, संग्रहीत संहिता ग्रन्थ है और चारित्र का ही निरूपक है। सम्यग्दर्शन के प्रकरण में पंचाध्यायी के श्लोक उन्होंने रख लिये हैं इसी प्रकार लाटी संहिता के पेज २३२।२३३ में गोमटसार की गाथाओं के उद्धरण उन्होंने दिये हैं।

इसी प्रकार पेज २३६ में भी गोमटसार की गाथा दी गई है। पेज २४१ में पुरुषार्थ सिद्धूपाय का श्लोक दिया गया है। २४५ पेज में फिर गोमटसार की गाथा दी गई। वीच बीच में अन्य शास्त्रों के प्रमाण भी लाटी संहिताकार ने लाटी संहिता में रख दिये हैं। जिस प्रकरंण में जो भी किसी शास्त्र का प्रमाण उन्हें मिला है उसे उसमें रख दिया है।

तत्वार्थ सूत्र के अनेक सूत्र

श्री पं० राजमल जी ने पांचवे और छठे अध्याय के तत्वार्थ सूत्र के २३ सूत्र रख दिये हैं। तो क्या तत्वार्थ सूत्र पं० राजमल जी का बनाया हुआ समझा जाय? नहीं समझा जाता है तो पंचाध्यायी के सम्यग्दर्शन प्रकरण के कुछ श्लोक लाटी संहिता में रख देने से पंचाध्यायी के कर्ता पं० राजमल जी माने जांय क्या? नहीं माने जासकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नकरंड श्रावकाचार के श्लोक भी बीच में दिये गये हैं अन्य श्रावकाचारों के भी प्रमाण रख दिये गये हैं। इन प्रमाणों के संकलन से लाटी संहिता ग्रन्थ की प्रमाणता और विशुद्धता सिद्ध होती है साथ ही पं० रामलाल जी की आगम निष्ठा सिद्ध होती है। किंतु इन प्रमाणों से यह भी भलीभांति सिद्ध हो जाता है कि पंचाध्यायी के कर्ता पं० राजमल जी नहीं हैं उन्होंने तत्वात्रसूत्र आदि ग्रन्थों के संकलन के समान पंचाध्यायी के श्लोकों का भी संग्रह लाटी संहिता में किया है।

जंबू स्वामी चरित में भी इतिहास परिचय

श्री पं० राजमल जी सत्कवि ने दूसरा ग्रन्थ जंबू स्वामी चरित लिखा है उसमें १३ सर्ग हैं। यह ग्रन्थ टोडर साहु के निमित्त से लिखा गया है ऐसा भी उन्होंने उल्लेख किया है। इतना ही नहीं किन्तु लाटी संहिता के समान इस ग्रन्थ में भी काष्ठा संघी भट्टारक के आम्नायी गर्ग गोत्री अग्रवाल आदिका परिचय भी साहु टोडर का दिया है। साथ ही भट्टारकों की गुरु शिष्य परम्परा का भी उल्लेख किया है। अकबर बादशाह का वर्णन तो कई स्थलों पर किया गया है। इस इतिहास रचना में पं० राजमल जी ने पूरा समय और शक्ति लगाई है।

इससे यह विदित होता है कि पं० राजमल जी अपनी प्रत्येक ग्रन्थ रचना में अपनी विद्वता के परिचय के साथ किसके निमित्त से कौन ग्रन्थ बनाया उस समय कौन बादशाह और भट्टारक थे इत्यादि इतिहास अवश्य लिखते हैं परन्तु पंचाध्यायी में सिवा तत्व निरूपण के कोई दूसरी बात नहीं है इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पंचाध्यायी के कर्ता पं० राजमल जी नहीं हैं।

इस ग्रन्थ में भी इतिहास

पं० राजमल जी ने तीसरा ग्रन्थ पिंगल शास्त्र–छन्दो विद्या नाम का बनाया है। यह संस्कृत प्राकृत एवं अपभ्रंश और हिन्दी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन चार भाषाओं में लिखा गया है। इसकी रचना भूपाल भारमल्ल के निमित्त से हुई है। पं० राजमल जी ने लिखा है कि ये श्रीमाल जाति के थे प्रसिद्ध व्यापारी थे तथा नागौरी तपागच्छ आम्नाय के थे। उस समय भट्टारक हर्ष कीर्ति पट्टाधीश थे। आदि।

चौथा ग्रन्थ-अध्यात्म कमल मार्तण्ड

इस ग्रन्थ की रचना से भी पंचाध्यायी के कर्ता पं० राजमल जी नहीं हैं यह भलीभांति सिद्ध हो जाता है।

इस अध्यात्म कमल मार्तण्ड में पं० राजमल जी ने १० वें श्लोक में स्वयं यह श्लोक लिखा है—

जीवाजीवादि तत्वं जिनवरगदितं गौतमादि प्रयुक्तं
बक्र ग्रीवादि सूक्तं सद-त विधु सूर्यादिगीतं यथावत्
तत्व ज्ञानं तथैव स्व पर भिदमिलं द्रव्य भावार्थ दक्षभू
संदेहादि प्रमुक्तं व्यवहरण नयात् संविदुरुं दृगादि

(अध्यात्म कमल मार्तण्ड)

अर्थात् जो जीव अजीव आदि तत्व जिनेन्द्र भगवान ने कहें हैं और गौतमादि गणधर देवों ने जिनकी रचना की हैं तथा कुंदकुंद स्वामी आदि आचार्यों ने जिन तत्वों का विस्तार से वर्णन किया है और आचार्य अमृतचन्द्र सूरि आदि ने जिन जीव अजीव आदि तत्वों का विशद गुण वर्णन– गंभीर तत्व विवेचन किया है वह तत्व ज्ञान स्व-पर का भेद ज्ञान करा देता है। निर्मल है। द्रव्य और उनके गुणों के अर्थ प्रकट करने में समर्थ है। संशय विपर्यय अनध्यवसाय इन मिथ्या ज्ञानों से रहित है ऐसा सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान व्यवहार नय से कहा जाता जाता है। अनन्त गुणात्मक अखण्ड पिंड एवं अभिन्न वस्तु में भेद कथन करना व्यवहार नय का विषय है।

इस श्लोक में आचार्य कुंदकुंद स्वामी और आचार्य अमृतचंद्र सूरि का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। आचार्य कुंदकुंद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामी तो सर्वोपरि परम निर्मल विशुद्धात्मा हैं ही। उनके समयसार आदि ग्रन्थों के टीकाकार कुशाग्र बुद्धि एवं अत्यन्त स्फुट, सूक्ष्म एवं गम्भीर विवेचक आचार्य अमृतचन्द्र सूरि हैं। आचार्य अमृतचन्द्र सूरि के विशुद्ध पांडित्य की छाप एवं प्रभाव पं० राजमल जी पर पड़ा है। ऐसा उनके ऊपर के श्लोक से विदित होता है। और यह भी अनुमान होता है कि पंचाध्यायी ग्रन्थ की रचना शैली को हृदयंगम करके पं० राजमल जी ने पंचाध्यायी के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि को ही समझा हो। ऐसा नीचे लिखे हेतुओं से हम समझते हैं–

पंचाध्यायी की रचना पहले या पीछे

सबसे पहले विचारणीय बात यह है कि पंचाध्यायी ग्रन्थ की रचना पं० राजमल जी के द्वारा बनाये गये लाटी संहिता आदि ग्रन्थों के पहले हुई है या उन ग्रन्थों के पीछे हुई है? यदि पंचाध्यायी ग्रन्थ की रचना, लाटी संहिता आदि ग्रन्थों से पीछे हुई मानी जाय और पं० राजमल जी द्वारा रची गई मानी जाय तो यह प्रश्न खड़ा होता है कि अपने अन्य ग्रन्थों के समान इस पंचाध्यायी में अपना परिचय, जिसके निमित्त से यह ग्रन्थ बनाया गया, भट्टारक एवं बादशाह आदि का किसी प्रकार का कोई परिचय या उल्लेख पं० राजमल जी ने क्यों नहीं किया? जैसा कि वे प्रत्येक अपने ग्रन्थ में करते आये हैं।

दूसरी बात यह है कि उन्होंने प्रत्येक ग्रन्थ के खण्ड रूप अध्याय नियत किये हैं। जैसे लाटी संहिता में ७ अध्याय हैं। पहले अध्याय में केवल ८७ श्लोक हैं दूसरे में २१९, तीसरे में १६८, चौथे में ३२१, पांचवे में २७२, छटे में २४६ सातवें अध्याय में ८६ श्लोक हैं।

अध्याय कमल मार्तण्ड ग्रन्थ में कुल ८१ श्लोक हैं जिन्हें पं० राजमल जी ने चार अध्याय में पूरा किया है। परन्तु पंचाध्यायी ग्रन्थ में १९१३ श्लोक संख्या है। इतनी बड़ी श्लोक संख्या होने पर भी उसमें कोई अध्याय नहीं है। हमने पंचाध्यायी की टीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बनाते समय पहला अध्याय ७६८ श्लोकों में और दूसरा ११४५ श्लोकों में प्रकरण भेद से मानकर लिख दिया है यदि इस ग्रन्थ के रचयिता पं० राजमल जी होते तो वे इस ग्रन्थ में अनेक अध्याय रखते। प्रत्येक अध्याय में इसमें भी अन्य ग्रन्थों के समान अपना नाम देते, भट्टारकों एवं बादशाहों के नाम भी अवश्य देते परन्तु पंचाध्यायी में किसी का भी नामोल्लेख, इतिहास एवं अध्याय आदि का कोई उल्लेख नहीं है अतः पं० राजमल जी की रचना शैली से पंचाध्यायी निराली सर्वथा भिन्न है।

तीसरी बात यह है कि पंचाध्यायी ग्रन्थ की रचना लाटी संहिता अध्यात्म कमल मार्तंड आदि पं० राजमल जी द्वारा रचित ग्रन्थों से पीछे की (अंतिम) और उन्हीं के द्वारा रचित मानी जाती है तो इस प्रश्न का क्या समाधान होगा कि पंचाध्यायी के केवल सम्यग्दर्शन प्रकरण के कुछ श्लोक लाटी संहिता में क्यों रक्खे गये हैं? और अध्यात्म कमल मार्तंड ग्रन्थ की रचना पंचाध्यायी ग्रन्थ की तत्व कथनी के समान फिर क्यों की जाती? कोई भी ग्रन्थकार अपने द्वारा रचित ग्रन्थ के उद्धरण अपने दूसरे ग्रन्थ में नहीं देते हैं और एक ग्रन्थ की रचना के अनुरूप छायाबाद जैसी रचना दूसरा ग्रन्थ बनाकर पुनरावृत्ति नहीं करते हैं।

अध्यात्म कमल मार्तण्ड में पंचाध्यायी का भाव लिया गया है। प्रमाण के लिये देखिये—

पंचाध्यायी में पृष्ठ १३४ श्लोक ४६६ में लिखा है—

अस्ति चात्म परिच्छेदि ज्ञानं सम्यग्दृगात्मनः
स्व संवेदन प्रत्यक्षं शुद्धं सिद्धास्पदोपमम्

अर्थः— सम्यग्दृष्टि का ज्ञान आत्मा का अनुभव करता है सम्यग्दृष्टि को स्वसंवेदन (आत्मानुभव) होता है वह प्रत्यक्ष और शुद्ध है। तथा सिद्ध पद की उपमा वाला है।

अध्यात्म कमल मार्तंड में पृष्ठ १० श्लोक ९ में लिखा है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चत्येतीह सम्यगविगत सकल दृग्मोहभाव स जीवः
सम्यग्दृष्टिर्भवेन्निश्चय नय कथनात् सिद्धकल्पश्च किञ्चित्
यद्यात्मा स्वात्मतत्वे स्तिमितनिलिखिलभेदैकता नो वभाति
साक्षात् सदृष्टिरेवाय मथ विगतरागश्च लोकैकपूज्यः

अर्थः— जिस आत्मा का समस्त दर्शन मोहनीय कर्म नष्ट हो गया है वह निश्चय नय से सम्यग्दृष्टि है वह सिद्ध परमात्मा के समान है और वह आत्मा यदि समस्त संकल्प विकल्प रूप भेद जाल से रहित होकर स्वात्म तत्व (अपने स्वरूप में) स्थिर होता है वह सम्यग्दृष्टि रागभाव (अनन्तानुबंधी रागभाव) से रहित होता हुआ लोक में अद्वितीय पूज्य है।

अध्यात्म कमल मार्तण्ड के इस श्लोक के शब्दों पर और भाव पर ध्यान देने से तथा पंचाध्यायी के ऊपर के श्लोक पर ध्यान देने से स्पष्ट रूप से यह विदित हो जाता है कि दोनों का एक ही भाव है। दोनों में स्वस्वरूप संवेदन और सिद्ध पद के समान पद समान हैं। यदि पंचाध्यायी कर्ता भी पं० राजमल जी होते तो भिन्न छन्द में दुवारा वही बात नहीं लिखते। और भी ऐसे श्लोक हैं जिनमें पंचाध्यायी और अध्यात्म कमल मार्तण्ड का भाव समान है। इससे यह अनुमान सहज होता है कि पंचाध्यायी की रचना पर पं० राजमल जी मुग्ध एवं अत्यन्त प्रभावित थे, इसलिये उन्होंने अपनी लाटी संहिता में सम्यग्दर्शन के प्रकरण के अनेक श्लोक पंचाध्यायी के ज्यों के त्यों रख दिये हैं। अन्य ग्रन्थों के प्रमाण भो उन्होंने दिये हैं। वे सरल परिणामी सत्कवि थे। द्रव्य गुण पर्याय के प्रकरण में अनेक श्लोक ऐसे हैं जो पंचाध्यायी और अध्यात्म कमल मार्तण्ड में समान एवं एक भाव वाले हैं जैसे–

अध्यात्म कमल मार्तण्ड में पृष्ठ ३५ श्लोक २० इस प्रकार हैं–

सद्रव्यं सच्चगुणः सत्पर्यायाः स्वलक्षणाद्भिन्नाः
तेषामेकास्तित्वं सर्वं द्रव्यं प्रमाणतः सिद्धम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचाध्यायी में श्लोक ७५ इस प्रकार हैं–

नहिं किञ्चित्सद्द्रव्यं केचित्सन्तो गुणाः प्रदेशाश्च
केचित्सन्ति तंदशाः द्रव्यं तत्सन्निपाताद्वा

उक्त दोनों ग्रन्थों केश्लोकों का भाव यही है कि द्रव्य गुण पर्यायें भिन्न भिन्न नहीं हैं किन्तु द्रव्य गुण पर्याय तीनों का एक अखण्ड पिंड तादात्म्य रूप अभिन्न द्रव्य है।

इस उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि पंचाध्यायी के द्रव्य प्रकरण के श्लोकों के आधार पर अध्यात्म मार्तंड में पं० राजमल जी ने अपनी स्वतंत्र रचना की है। पंचाध्यायी का द्रव्य प्रकरण बहुत विस्तृत है उसी में से सारभूत थोड़ा सा अंश उन्होंने ग्रहण कर मार्तंड रचा है।

पंचाध्यायी ग्रन्थ पहले का है

पंचाध्यायी ग्रन्थ पं० राजमल जी की लाटी संहिता आदि सभी ग्रन्थों की रचना से पहले का है इसके अनुसार द्रव्य प्रकरण और सम्यग्दर्शन प्रकरण के श्लोक और उनका भाव पंडित जी ने अपने ग्रन्थों में लिया है। पंचाध्यायी और कवि पं० राजमल जी के ग्रन्थों का पूरा स्वाध्याय एवं मनन करने से यह बात अच्छी तरह से सिद्ध हो जाती है। लाटी संहिता में पृष्ठ ८८ में २६वें श्लोक के बाद उक्तंच ऐसा लिखकर गोमट्टसार का एक गाथा दिया है उसके आगे श्लोक नं० २८ से लेकर श्लोक नं० ११९ तक पंचाध्यायी के श्लोक रख दिये हैं। जो पंचाध्यायी में श्लोक नं० ३७२ से लेकर ४७६ तक हैं। कुल ९३ श्लोक हैं। लाटी सहिता में जहां २६वें श्लोक के बाद उक्तंच-लिखा है वहां ११९वें श्लोक के बाद पं० राजमल जी ने १२०वें श्लोक में स्पष्ट लिखा है कि–

ऐवमित्यादि सत्यार्थं प्रोक्तं सम्यक्त्वलक्षणम्
कैश्चिल्लक्षणिकैः सिद्धैः प्रसिद्धं सिद्ध साधनात्

(लाटी संहिता श्लोक १२० सर्ग ३)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ:– इस प्रकार ऊपर लिखे अनुसार सम्यग्दर्शन कहा है वही यथार्थ लक्षण है। वही लक्षण समस्त लक्षणों के जानकार किन्हीं सिद्ध पुरुषों ने कहा है और यही लक्षण हेतुवाद से सिद्ध होता है।

इस श्लोक से पं० राजमल जी ने यह स्पष्ट कर दिया है कि जो सम्यग्दर्शन का लक्षण है वह किन्हीं प्रसिद्ध पुरुषों ने कहा है जो सम्यग्दर्शन के लक्षण को जानने वाले हैं। ऊपर के श्लोक में "प्रोक्त" पद दिया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि पं० राजमल जी ने पंचाध्यायी से वे श्लोक उद्धृत किये हैं और पंचाध्यायी के कर्ता का नामोल्लेख नहीं मिलने से उन्होंने "किन्हीं सिद्ध पुरुषों ने कहा है" ऐसा खुलासा कर दिया है।

पंचाध्यायी के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध होते हैं

पंचाध्यायी ग्रन्थराज की शब्द रचना और भाव भंगी आदि का मनन करने से यह सिद्ध होता है कि इस ग्रन्थराज के कर्ता आचार्य वर्य अमृतचन्द्र सूरि हैं। भगवत्कुंदकुंद स्वामी के रचे हुए ग्रन्थ–समय प्राभृत, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय के मुख्य संस्कृत वृत्तिकार आचार्य वर्य अमृतचन्द्र सूरि हैं। उन्होंने उन ग्रन्थों के तत्वसार को लेकर पंचाध्यायी ग्रन्थ की स्वतन्त्र रचना की है। ऐसा नीचे लिखे श्लोकों एवं गाथाओं के भाव मय सारांश एवं शब्द रचना से प्रतीत होता है। कतिपय गाथाओं में एवं श्लोकों की तुलना एवं समानता के उद्धरण इस प्रकार हैं–

एस सुरासुर मणुसिद वंदिदं धोइ धाइ कम्म मलं
पणमामि बड्ढमाणं तित्थ धम्मस्स कत्तारं
ऐसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्ध सब्भावे
समणेय णाण दंसण चरित्त तब वीरिया चारे

(प्रवचनसार)

इन दो गाथाओं में भगवान महावीर स्वामी को, शेष तीर्थंकर और सिद्धों को तथा साधुओं को नमस्कार किया गया है पंचाध्यायी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में जो मंगलाचरण है वह इस प्रकार हैं—

पंचाध्यायावयं ममकर्तु ग्रन्थराज मात्म वशात्
अर्थालोक निदानं यस्य वचस्तं स्तुवे महावोरम्
शेषानपि तीर्थंकराननंत सिद्धानहं नमामि समम्
धर्माचार्याध्यापक साधु विशिष्टान् मुनीश्वरान् वदे

(पंचाध्यायी)

इन दो श्लोकों में भी भगवान महावीर स्वामी शेष तीर्थंकर अनन्त सिद्ध और साधुओं को नमस्कार किया गया है। दोनों की क्रम से नमस्कार पद्धति एक है।

और भी तुलना पढ़िये—

ज्ञानिनो ज्ञान निर्वृ त्ता: सर्वे भावा: भवन्तिहि
सर्वेप्यज्ञाननिर्वृ त्ता: भवन्त्यज्ञानिन स्तुते

(नाटक समयसार कलश)

यस्माद् ज्ञानमया भावा: ज्ञानिनां ज्ञान निर्वृ ता:
अज्ञानमयभावानां नावकाश: सुदृष्टिषु (पंचाध्यायी)

समयसार कलश के रचयिता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि हैं उनका रचा हुआ श्लोक और पंचाध्यायी का श्लोक दोनों का भाव भी एक समान है और शब्द भी दोनों के समान हैं। और भी समानता—

चिल्लोकं स्वयमेव केवलमयं यल्लोकयत्येकक:
लोकोयन्न तवापर स्तदपर: तस्यापि तन्दी: कुत:

(नाटक समयसार कलश)

लोकोयं मेहि चिल्लौको नूनं नित्योस्ति सोर्थत:
नापरो लौकिको लोक स्ततो भीति: कुतोस्ति मे

(पंचाध्यायी)

ऊपर आचार्य अमृतचन्द्र सूरि का श्लोक और पंचाध्यायी का श्लोक दोनों का भाव एक है और शब्दों की समानता भी है।

और भी—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चय व्यवहाराभ्यां मोक्ष मार्गो द्विधा स्थित:
तत्राद्य: साध्यरूप: स्यात् द्वितीय स्तस्य साधनम्

(तत्वार्थसार)

निश्च्चयव्यवहाराभ्यां मोक्ष मार्गों द्विधा स्थित:
अपि निश्चयस्य नियतं हेतु: सामान्य मात्रमिह वस्तु

(पंचाध्यायी)

इन दोनों श्लोकों में भी भाव और शब्द दोनों की समानता है तत्वार्थ सार आ० अमृतचन्द्र सूरि कृत है। और भी–

जो पस्सदि अप्पाणं अवद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं
अविसेस समसंजुत्तं तं सुद्धणंयं वियाणीहि

(समयप्राभृत)

ज्ञानी ज्ञानैक पात्रत्वात् पश्यत्यात्मान मात्मवित्
वद्ध स्पृष्टाद भावानांमस्वरूपादनास्पदम्
अथावद्ध मथाऽपृष्टं शुद्धं सिद्ध पदोपमम्
शुद्ध स्फटिक संकाशं नि: संगं व्योमवत्सदा

(पंचाध्यायी)

ऊपर की गाथा की आचार्य अमृतचन्द्र सूरि कृत व्याख्या और पंचाध्यायी दोनों का भाव एवं शब्द एक रूप हैं। और भी–

व्यवहारनय:स्याद्यद्यपिप्रांक्पदव्यामिह निहित पदानां हन्त हस्तावलम्व: तदपि परममर्थं चिच्चमत्कार मात्रं परविरहितमन्त: पश्यतां नैव किञ्चित्

(समय प्राभृत टीका)

तस्मादाश्रयणीय: केषाञ्चित स नय: प्रसंगत्वात्
अपि सविकल्पानामिव न श्रेयो निर्विकल्प वोधवताम्

(पंचाध्यायी)

आचार्य वर अमृतचन्द्र सूरि और पंचाध्यायी दोनों का एक ही भाव ऊपर के श्लोक में है। और भी–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब्भावोहि सहावो गुणेहि सगपज्जयेहिं चित्तेहिं
दव्वस्स सव्वकालं उप्पादवय धुवत्तेहि
(प्रवचनसार)

गुणपर्ययवद्द्रव्यं लक्षणमेतत्सुसिद्धमविरुद्धम्
गुणपर्यय समुदायो द्रव्यं पुनरस्य भवति वाक्यार्थः
(पंचाध्यायी)

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की संस्कृत टीका और पंचाध्यायी दोनों का भाव एवं शव्द साहचर्य समान है।

आचार्य अमृतचन्द्र जी सूरि ने भगवत्कुंदकुंद स्वामी द्वारा रचे गये समय प्राभृत, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय ग्रन्थों की संस्कृत टीकाएें वहुत विशद भाष्य रूप में की हैं, उन्हीं की पूरी झलक (झांकी) पंचाध्यायी में मिलती है। द्रव्य निरूपण एवं सम्यग्दर्शन की महत्ता पर जो भाव और शव्द शैली आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने अपनी भाष्यात्मक संस्कृत टीकाओं में प्रकट की है वह भाव और वही शव्द शैली इस पंचाध्यायी में पाई जाती है। इससे यह वहुत खुलासा हो जाता है कि पंचाध्यायी के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध होते हैं और भी अनेक उद्धरण दिये जाने योग्य हैं किन्तु अधिक तुलनात्मक उद्धरण देने से ग्रन्थ विस्तार होगा।

श्री पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री भी समर्थन करते हैं

श्री पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने जो पंचाध्यायी की हिंदी टीका लिखी है उसकी प्रस्तावना में उन्होंने भी यही सिद्ध किया है कि आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की तत्व निरूपण की भाव शैली और शव्द शैली इस पंचाध्यायी ग्रन्थ में पाई जाती है उनकी पंक्तियां इस प्रकार हैं–

'यदि हम आचार्य कुंदकुंद के ग्रन्थ रत्नों का इस पंचाध्यायी को भाष्य कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इस ग्रन्थ में अथ से लेकर इति तक जितने भी विषय निवद्ध किये गये हैं उन सब पर न

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केवल समय प्राभृत, प्रवचनसार और पंचारित काय की छाप है अपितु वे सब या तो उन ग्रन्थों का शब्दशः अनुसरण करते हैं या उक्त ग्रन्थों का सारांश लेकर प्रस्तुत ग्रन्थ का कलेवर पुष्ट किया गया है। यहां कुछ ऐसे उल्लेख उपस्थित किये जाते हैं जिनसे उक्त अभिप्राय की पुष्टि होती है।"

(प्रस्तावना पंचाध्यायी पं० फूलचन्द जी कृत)

ऊपर की पंक्तियों में मनन पूर्वक लिखे गये शब्दों से बहुत ही खुलासा हो जाता है कि पंचाध्यायी की रचना आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की कृति है। इसके आगे उक्त शास्त्री जी ने आचार्य अमृतचन्द्र सूरि और पंचाध्यायी के अनेक प्रमाण ऐसे दिये हैं जिनसे पंचाध्यायी की रचना और आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की रचना समान हैं। इन सब उल्लेखों से यह भी अनुमान होता है कि अनेक शास्त्रों की संस्कृत टीका लिखने के बाद उन्होंने अन्त में सारभूत इस पंचाध्यायी की रचना स्वतन्त्र की है और बहुत विस्तृत गंभीर एवं सूक्ष्म तत्वों का तथा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र आदि का निरूपण वे पांच अध्यायों में करने का संकल्प अवश्य पूरा करते तब स्वाध्यायशील जिज्ञासुओं को महान् अपूर्व लाभ मिलता परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि पूज्य त्यागियों विद्वानों आदि को वह लाभ नहीं मिल सका, ग्रन्थकार इस मर्त्यलोक को छोड़कर स्वर्गलोक को प्रस्थान कर गये।

सत्कवि पं० राजमल जी की जितनी भी रचनायें हैं वे सरल शब्दों में हैं सरल भाव में हैं। उनकी रचना से पंचाध्यायी की रचना की तुलना या समानता किसी प्रकार नहीं हो सकती है।

और भी समानता के उदाहरण

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने लिखा है—

"जीयाज्जैनी सिद्धान्त पद्धति" (पंचास्तिकाय टीका)

"जीयाजैनं शासन मनादि निधनम्" (पंचाध्यायी)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"अनन्तधर्मण स्तत्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मन: अनेकान्तमयी मूर्ति:"
(नाटक समयसार कलश)

इति विन्दन्निह तत्वं जैन: स्यात्कोपि तत्ववेदीति
अर्थात्स्यात्स्याद्वादी तदपरथा नाम सिंहमाणवक: (पंचाध्यायी)

जयत्यशेष तत्वार्थ प्रकाशि (तत्वार्थसार)
अर्थालोक निदानं यस्य वच: (पंचाध्यायी)
तज्जयति परं ज्योति: (पुरुषार्थसिद्धुपाय)
ज्ञानानन्दात्मने नम: (पंचाध्यायी)

उपर्युक्त वाक्यों में आचार्य अमृतचंद्र सूरि का तत्व विवेचन और पंचाध्यायी का तत्व विवेचन समान मिलता है। और भी स्पष्ट समानता नीचे लिखे श्लोकों से सिद्ध होती है–

रत्नत्रय मिदं हेतु र्निर्वाणस्यैव भवति नान्यस्य
आस्रवति यत्तु पुण्यं शुभोपयोगोयमपराध:
येनांशेन सुदृष्टि: तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति
येनांशेन तु राग: तेनांशेनास्य बंधनं भवति
येनांशेन ज्ञानं तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति
येनांशेन तु राग: तेनांशेनास्य बंधनं भवति
(पुरुषार्थ सिद्धुपाय)

यत्पुन: श्रेयसो बंधो बन्धश्चाऽश्रेयसोपि वा
रागा द्वा द्वेषतो मोहात् स स्यान्नोपयोगसात्
पाकाच्चारित्रमोहस्य रागोस्त्यौदयिक: स्फुटम्
सम्यक्त्वे स कुतो न्यायात् ज्ञानेवानुदयात्मके
व्याप्तिर्वन्धस्य रागाद्यैर्नाऽव्याप्ति विकल्पैरिव
विकल्पै रस्य चाव्याप्तिर्न व्याप्ति: किल तैरिव
(पंचाध्यायी)

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि के पुरुषार्थ सिद्धुपाय के श्लोकों का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तथा नीचे के पंचाध्यायी के श्लोकों सर्वथा (विलकुल) एक ही भाव है दोनों में यह बताया गया है कि जितना भी पुण्य बंध है वह राग के कारण से होता है रत्नत्रय से तो बंध कभी नहीं हो सकता है। अर्थात् पुण्य बंध मोक्ष प्राप्ति में परंपरा सहायक है किन्तु मोक्ष प्राप्ति तो रत्नत्रय से होगी। रत्नत्रय से बंध नहीं होता है। उसके साथ में होने वाले राग से ही पुण्य बध होता है। यह भाव आ० अमृतचन्द्र सूरि के श्लोकों का और पंचाध्यायी के श्लोकों का बिलकुल एक ही है। इस कथन से सर्वथा सिद्ध होता है कि पंचाध्यायी के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि हैं।

सभी विद्वान सहमत हैं

एक बात बड़े महत्व की यह है कि पुरुषार्थ सिद्धुपाय तथा तत्वार्थसार इन ग्रन्थों में उनके कर्ता का नामोल्लेख नहीं है तो भी जैन विद्वान इन ग्रन्थों को स्वामी अमृतचन्द्र सूरि कृत ही मानते हैं यह निर्विवाद बात है। विना नामोल्लेख के उक्त ग्रन्थों के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि हैं ऐसा सभी विद्वान् किस आधार से मानते हैं इसका सरल समाधान यही है कि समय प्राभृत, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय ग्रन्थों की संस्कृत टीकाओं द्वारा जो तत्वों का निरूपण जिस रचना में किया गया है वही रचना शैली और तत्व विवेचन उक्त ग्रन्थों में पाया जाता है इसलिये उक्त ग्रन्थों को आचार्य अमृतचंद सूरि की कृति मानली गई हैं। ठीक यही वात यही आधार यही रचना शैली एवं तत्व निरूपग पद्धति पंचाध्यायी में है अतः यह पंचाध्यायी ग्रन्थ आचार्य अमृतचन्द्र सूरि का बनाया हुआ है। ऐसा निर्णय सहेतुक एवं यथार्थ प्रतीत होता है।

आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ने प्रत्येक ग्रन्थ में उत्पाद व्यय ध्रौव्य गुण पर्याय, प्रमाण निश्चय नय व्यवहार नय और अनेकान्त कथन की ही सर्वत्र प्रधानता रक्खी है वह बात उनके ग्रन्थों और संस्कृत टीकाओं स भली भाँति जानी जाती है। ठीक इसी प्रकार पंचाध्यायी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में उत्पादादि त्रय, गुण पर्याय प्रमाण नय एवं अनेकान्त की प्रधानता है अतः यह पंचाध्यायी ग्रन्थ आ० अमृतचन्द्र सूरि ने रचा हैं। वे ही इसके कर्ता हैं यह सिद्ध होता है।

सूरि शब्द का उल्लेख

इस पंचाध्यायी में कई श्लोकों में सूरि शब्द का प्रयोग भी पाया जाता है जैसे "इति प्रोचे सूरि" ऐसे वाक्य कई स्थलों में मिलते हैं। किंतु लाटी संहिता अध्यात्म कमल मार्तंड आदि पं० राजमल जी कृत ग्रन्थों में किसी भी श्लोक में सूरि पद का उल्लेख नहीं मिलता है। इसलिये भी पंचाध्यायी के कर्ता आचार्य अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध होते हैं।

सबसे पहले पंचाध्यायी ग्रन्थराज का पठन पाठन शास्त्रों के मर्मज्ञ श्रीमत्पंडित बल्देवदास जी ने किया था, उन्होंने इस ग्रन्थराज को हमारे गुरुवर पं० गोपालदास जी बरैया कों पढ़ावा था उक्त दोनों प्रख्यात एवं उद्भट विद्वानों का भी यही मत था कि यह पंचाध्यायी आचार्य अमृतचन्द्र सूरिकीं रचना है। सरस्वती दिवाकर धर्मरत्न पं० लालाराम जी शास्त्री का भी वही मत था। अर्हनिश स्वाध्यायशील अनुभवी विद्वान् श्री ब्र० सुरेन्द्रनाथ जी अधिष्ठाता उदासीनाश्रम ईसरी आदि विद्वानों का भी यही मत है।

श्री प० जुगलकिशोर जी के अभिमत पर बिचार

श्री पंचाध्यायी ग्रन्थराज की सुवोधिनी टीका बनाते समय हमने उसकी भूमिका में ग्रन्थकर्ता के सम्बन्ध में कुछ प्रमाण ऐसे दिये हैं जिनसे पंचाध्यायी के कर्ता आ० अमृतचन्द्र सूरि सिद्ध होते हैं अव उसकी द्वितीया वृत्ति प्रकाशित हो चुकी है। इसलिये उसके कर्ता के सम्बन्ध में कई विद्वानों से हमने पूछताछ की, धर्म दिवाकर श्री पं० सुमेरचन्द्र जी दिवाकर न्यायतीर्थ शास्त्री ने लिखा है कि ब्यावर के सरस्वती भण्डार की प्रति में कर्ता का संकेत हो सकता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हमने व्यावर पत्र देकर श्री पं० हीरालाल जी सिद्धांत शास्त्री से वहां की प्रति मगाकर देखी उसमें कोई संकेत नहीं मिला, वीर सेवा मंडल देहली को पत्र देकर वहां जो भी सामग्री पंचाध्यायी के कर्ता के विषय में हो कृपया भेज दीजिये ऐसा लिखा, उत्तर में श्री पंडित परमानन्द जी शास्त्री ने लिखा कि श्री पं० जुगलकिशोर जी मुखतार ने पंचाध्यायी के कर्ता के विषय में जो अपना सविस्तार अभिमत प्रगट किया है वह श्री पं० राजमल जी कृत अध्यात्मक मल मार्तंड की प्रस्तावना में छपा है उसे देखिये। वह ग्रन्थ मुरेना महाविद्यालय के सरस्वती भवन में है। उसे हमने आद्योपान्त ध्यान से पढ़ा। श्री पं० जुगलकिशोर मुखतार की प्रस्तावना में पंचाध्यायी के कर्ता श्री पं० राजमल जी को वताया गया है। उन्होंने अपने अन्वेषण (खोज) में रचना शैली आदि युक्तियों से वैसा ही अभिमत प्रगट किया है। अन्य किसी विद्वान् ने इस विषय पर अपना विचार प्रगट नहीं किया है किन्तु जिनके जो भी लेख हमारे देखने में आये उन सवों में २।३ विद्वानों ने मुखतार साहब के अभिमत का ही उल्लेख किया है कि श्री पं० जुगलकिशोर जी ऐसा मानते हैं। पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने पंचाध्यायी की स्वरचित टीका की प्रस्तावना में वहुत विस्तार से सिद्ध तो यह किया है कि पंचाध्यायी की भावभंगी और शब्द शैली आचार्य अमृतचन्द्र जी सूरि की रचना से मिलती है उसकी सिद्धि में अनेक श्लोक एवं गाथाओं के उद्धरण भी दिये हैं किन्तु केवल एक पंक्ति में यह लिख दिया है कि– पचाध्यायी के कर्ता पहले आचार्य अमृतचन्द्र माने जाते थे किन्तु श्री पं० जुगलकिशोर जी मुखतार के लेख से पं० राजमल जी उसके कर्ता माने गये हैं। अपनी मान्यता के विरुद्ध पं० फूलचंदजी शास्त्री ने मुखतार सा० का आदर रखने के लिये ऐसा लिख दिया है।

मुखतार सा० को खोज से उनके मत की सिद्धि नहीं होती है

यदि पं० जुगलकिशोर जी मुखतार सा० के लेख में ऐसी कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चयात्मक बात होती कि पंचाध्यायी के कर्ता पं० राजमल जी कवि हैं तो वैसा मानने में हमें कोई मतभेद नहीं होता, परन्तु उनके लेख में जो युक्तियां उन्होंने दी हैं उनसे पं० राजमल जी पंचाध्यायी के कर्ता सिद्ध नहीं होते हैं मुखतार सा० की खोज की दो चार वातें इस प्रकार हैं–

अध्यात्म कमल मार्तण्ड की प्रस्तावना के पृष्ठ २३ में मुखतार सा० की पंक्तियां ये हैं–

पंचाध्यायी का प्रारम्भ या तो लाटी संहिता से कुछ पहले हो गया था और उसे वीच में रोक कर लाटी संहिता लिखी गई है।'

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुखतार साहव पंचाध्यायी की रचना लाटी संहिता से पहले की मानते हैं। किन्तु वे इसका निर्णय नहीं कर सके हैं। पहले की रचना मानने से यह तो सिद्ध होता है कि पंचाध्यायी ग्रन्थ से लेकर लाटी संहिता में पं० राजमल जी ने उद्धरण दिये हैं। दूसरी बात यह उनकी नहीं जचती है कि पंचाध्यायी पहले रची गई है और बीच में ही उसे रोक कर लाटी संहिता लिखी गई है। एक ग्रन्थ की रचना करते हुए ग्रन्थकार उसे बीच में ही रोक देवे और दूसरा ग्रन्थ लिखने लग जाय।

आगे मुखतार सा० ने एक श्लोक पंचाध्यायी का ४७७वां ननु सद्दर्शनस्यैतल्लक्षणं– देकर यह लिखा है कि– "ऐसी हालत में नहीं कहा जासकता कि उक्त पद्य नं० ४७७ पंचाध्यायी से उठाकर लाटी संहिता में रखा गया है बल्कि संहिता से उठाकर वह पंचाध्यायी में रक्खा हुआ जान पड़ता है।"

(अध्यात्म कमल मार्तण्ड पृष्ठ २४)

इन पंक्तियों से भी वे स्वयं सन्देह में पड़ गये हैं तभी तो "जान पड़ता है" ऐसा वाक्य उन्होंने लिख दिया है।

आगे मार्तण्ड के पृष्ठ ३५ में मुखतार सा० ने लिखा है–

"लाटी संहिता में कठिन पदों तथा लम्बे२ दुरूह समासों का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयोग न करके सरल पदों व मृदु समासों तथा उक्तियों द्वारा श्रावक धर्म का संग्रह किया गया है।

यही बात हमने पहले लिखदी है कि लाटी सहिता में सरल शब्द और सरल भाव हैं और पंचाध्यायी में गम्भीर एवं सूक्ष्म कथन है। इसलिये लाटी संहिता के कर्त्ता पंचाध्यायी के कर्त्ता नहीं हो सकते हैं।

दूसरी बात यह है कि लाटी संहिता श्रावकाचार ग्रन्थ है मुखतार सा० भी ऐसा ही लिखते हैं किंतु पंचाध्यायी द्रव्य गुण पर्याय प्रमाण नय और सम्यग्दर्शन का प्रतिपादक महान् ग्रन्थ है इसलिये दोनों की तुलना एवं एक कर्त्ता की रचना दोनों को कहना किसी प्रकार नहीं सिद्ध होता है।

आ० अमृतचंद्र सूरि कर्ता हैं ऐसी विद्वानों की धारणा है

श्री पं० जुगलकिशोरजी मुखतार ने मार्तण्ड के पृष्ठ १०/११ में लिखा है कि—

"आज से अनेक वर्ष पूर्व जब स्व० पं० गोपालदासजी बरैया की कृपा से जैन विद्वानों में पंचाध्यायी नामक ग्रन्थ के पठन पाठन का प्रचार हुआ उस समय लोगों की यह मान्यता (धारणा) होगई थी कि यह ग्रन्थ आ० अमृतचन्द्र सूरि की रचना है.,

इन पंक्तियों से यह खुलासा होजाता है कि प्राय: सभी प्रसिद्ध विद्वान् पंचाध्यायी ग्रन्थ को आ० अमृतचंद्र सूरि की रचना मानते हैं इसे मुखतार सा० स्वयं लिख रहे हैं।

इसके आगे मुखतार सा० ने अपनी बात की पुष्टि नहीं होने पर लिखा है कि—

"परंतु यह देखकर बड़ा खेद होता है कि मेरे उक्त लेख के कोई आठ वर्ष बाद सन् १९३२ में जब पं० देवकीनंदनजी ने पंचाध्यायी की अपनी टीका को कारंजा आश्रम से प्रकाशित कराया तब यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानते मानते और पत्रों द्वारा मेरी उस कर्तृत्व विषयक खोज को स्वीकार करते हुए तथा वह आश्वासन देते हुए भी कि उसके अनुरूप ही ग्रन्थ कर्ता का नाम टीका के साथ प्रकाशित किया जायगा अपनी उस टीका को विना ग्रन्थ कर्ता के नाम के ही प्रकाशित कर दिया,,

मुखतार सा० की ऊपर की पंक्तियों को ध्यान पूर्वक पढ़ने से यह खुलासा होजाता है कि स्व० पं० देवकीनंदनजी को बहुत जोर देकर मुखतार सा० ने उनकी टीका की भूमिका में पंचाध्यायी के कर्ता पं० राजमलजी हैं ऐसा उनसे लिखवाने की प्रेरणा की थी जैसा कि उनके आगे दिये हुए पत्र व्यवहार से सिद्ध होता है उन्होंने पं० देवकी नंदनजी से आश्वासन भी ले लिया था। फिर भी पं० जी ने पंचाध्यायी के कर्ता पं०राजमलजी हैं ऐसा उल्लेख अपनी टीका में नहीं किया इससे यह बात हर कोई समझ सकता है कि पं० जुगलकिशोरजी के वार वार लिखने पर भी पं० देवकीनंदनजी ने अपनी मान्यता के विरुद्ध लिखना उचित नहीं समझा। शिष्टता के नाते उन्होंने आश्वासन देदिया। इसका मूल कारण यह है कि जिन गुरु गोपालदास जी बरैया तथा उनके गुरु पं० बल्देवदासजी और शिष्य न्यायाचार्य पं० माणिकचंदजी प्रभृति सभी प्रख्यात विद्वानों ने कथन शैली एवं भाव सामंजस्य आदि से पंचाध्यायी का कर्त्ता आ० अमृतचंद्र सूरि को हीं माना है।यही पं० देवकीनंदनजी का मत था।

समय भेद से कर्त्ता का अनुमान

श्री पं० जुगलकिशोरजी महोदय ने अध्यात्म कमल मार्तण्ड की प्रस्तावना में वसुनंदि श्रावकाचार की "संवेओणिव्वेओणिदंणगरुहा,, यह गाथा लिखकर यह बताया है कि यही गाथा पंचाध्यायी में सम्यग्दर्शन के प्रशम संवेगादि अष्ट गुणों के प्रकरण में उद्धृत की गई है। इससे मुखतार सा० ने यह सिद्ध करना चाहा है कि आचार्य बसुनंदि १२ वीं शताब्दि के बाद में हुए हैं अतः पंचाध्यायी की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचना १२ वीं शताब्दि के बाद में हुई है इसलिये यह पंचाध्यायी आचार्य अमृतचंद्र सूरि की कृति नहीं हो सकती है।

परंतु उनकी यह खोज निर्णीत रूप में नहीं है आनुमानिक है क्योंकि वसुनंदि श्रावकाचार जो भारतीय ज्ञान पीठ काशी से प्रकाशित हुआ है उसका संपादन श्री पं० हीरालालजी न्यायतीर्थ सिद्धान्त शास्त्री ने किया है। इस ग्रन्थ की प्रस्तावना में सम्पादक महोदय ने आचार्य वसुनंदि के समय के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"अतः प्रश्न यह उठता है कि आचार्य वसुनंदि को नयनंदि द्वारा दीगई परंपरा में से कौन से नंदि अभीष्ट हैं ? मेरे विचार से रामनंदि के लिये ही आ० वसुनंदि ने श्रीनंदि लिखा है। क्योंकि जिन विशेषणों से नयनंदि ने रामनंदि का स्मरण किया है ये प्रायः वसुनंदि द्वारा श्रीनंदि के लिये दिये गये विशेषणों से मिलते जुलते हैं।,,

इन पंक्तियों से आचार्य वसुनंदि के समय का निर्णयात्मक समय निश्चित नहीं होता है। क्योंकि- 'मेरे विचार से प्रायः वसुनंदि द्वारा श्रीनंदि के लिये दिये गये विशेषणों से मिलते जुलते हैं। ये सभी वाक्य अन्वेषणात्मक (खोज) हैं निश्चयात्मक समय सूचक नहीं है।

आगे इसी वसुनंदि श्रावकाचार की प्रस्तावना में लिखी हुई ये पंक्तियां भी संदेहात्मक हैं—

"वसुनंदि ने जिन शब्दों में अपने दादा गुरु का प्रशंसा पूर्वक उल्लेख किया है उससे ऐसा अवश्य ध्वनित होता है कि वे उनके सामने विद्यमान रहे हैं यदि यह अनुमान ठीक हो तो बारहवीं शताब्दि का प्रथम चरण बसुनंदि का समय माना जा सकता है। यदि वे उनके सामने विद्यमान नहीं भी रहे हों तो भी प्रशिष्य के नाते वसुनंदि का काल बारहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध ठहरता है।,,

इन पंक्तियों से भी संदेह की निवृत्ति नही होती है ध्वनित होना, सामने विद्यमान होना या नहीं होना, आदि वाक्य आचार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वसुनंदि के समय के निर्णयात्मक एवं निश्चयात्मक सूचक नहीं कहे जा सकते हैं।

इस अवस्था में श्री पं० जुगलकिशोरजी मुखतार का यह मानना और लिखना कि आचार्य वसुनंदि १२वीं शताब्दि में हुए हैं अतः पंचाध्यायी उनके वाद की रचना है। अतः आचार्य अमृतचन्द्र सूरि की रचना नहीं है यह सिद्ध नहीं होता है। किन्तु हमने जो हेतु इस प्रकरण में दिये हैं और रचना शैली एवं तत्व विवेचनात्मक भाव सामंजस्य का निर्देश किया है उससे आचार्य अमृतचन्द्र सूरि ही पंचाध्यायी के कर्ता सिद्ध होते हैं।

श्री पं० जुगलकिशोर जी ने और भी अनेक ग्रन्थों की समालोचना या समीक्षा की है। कई आचार्यों का समय भेद बताकर उनके विषय में भी अपना अभिमत प्रगट किया है। हमारा बहुत वड़ा मतभेद होने पर भी हमने न तो उस समय उस सम्बन्ध में कुछ लिखा और न अब कुछ लिखना चाहते हैं। जिन विद्वानों की जैसी समझ या धारणा हो वैसा वे समझें या मानें। पंचाध्यायी ग्रन्थराज की अभी दूसरी वार आवृत्ति प्रकाशित हो रही है इसलिये पंचाध्यायी के कर्ता के सम्बन्ध में हमने उसकी प्रथम आवृत्ति के प्रकाशन में भी सहेतुक लिखा था, उसके बाद मुखतार सा० ने अपने लेख में लाटी संहिता के कर्ता श्री पं० राजमल जी को ही पंचाध्यायी का कर्ता बताया है। परन्तु उनका लेख पढ़कर उनका अभिमत हमें जचा नहीं, इसलिये पंचाध्यायी के इस द्वितीय प्रकाशन में पंचाध्यायी के कर्ता के विषय में अपना सहेतुक अभिमत प्रगट करना हमने आवश्यक समझा है।

लाटी संहिता और पंचाध्यायी का मनन पूर्वक अध्ययन करने वाले विद्वान् स्वयं अनुभव करेंगे कि पंचाध्यायी ग्रन्थराज के कर्ता कौन हो सकते हैं? सहेतुक एवं संयुक्तिक, हमारे अनुभव में जो जचा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है वह हमने लिखा है। इस विषय में सिद्धान्त विरोध की तो कोई बात नहीं है। आचार्य मुकुट अमृतचन्द्र सूरि जैसे प्रामाणिक महान् आचार्यरत्न हैं वैसे उनके आगम पथ का अनुसरण करने वाले कवि-रत्न पं० राजमल जी भी प्रामाणिक हैं।

जैन दर्शनाचार्य-श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का पंचाध्यायी ग्रन्थराज के
कर्ता कौन हो सकते हैं? इस तुलनात्मक
विवेचन का निरूपण करने वाला

दशवां अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ ग्यारहवां अध्याय

श्री पंचाध्यायी ग्रन्थराज की अन्य विद्वान की बनाई गई हिन्दी टीका में मूल ग्रन्थ का परिवर्तन तथा वर्ण जाति व्यवस्था द्रव्य पूजा और शासन देवों का निषेध आदि आगम विरुद्ध स्वतंत्र विचारों के कथन का सहेतुक एवं सप्रमाण प्रतिवाद

पंचाध्यायी की पं० फूलचन्द जी की हिन्दी टीका में शास्त्र विरोध

पंचाध्यायी की एक हिन्दी टीका श्री पं० फूलचन्द जी सिद्धांत शास्त्री ने लिखी है। उस टीका में उन्होंने अनेक बातें अपने निजी मन्तव्यों की लिख दी है। जो शास्त्रों से विरुद्ध हैं। किसी भी शास्त्र की टीका उस शास्त्र के आशय के अनुसार ही लिखना चाहिये। अपने स्वतन्त्र बिचारों को उसमें लिख देना नितान्त अनुचित एवं अनाधिकार है। इतना ही नहीं किन्तु स्वाध्याय करने वालों के लिए वह प्रतारण है। श्रीमत्सरस्वती दिवाकर धर्मरत्न पूज्य पं० लालाराम जी शास्त्री (हमारे सहोदर बड़े भ्राता) ने लगभग सौ सवासौ शास्त्रों की हिन्दी टीकायें लिखी हैं वे सभी छप चुकी हैं। उन्होंने अपनी सभी टीकाओं में मूल ग्रन्थ के विरुद्ध एक वाक्य भी नहीं लिखा है वे कहते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे कि शास्त्र के मूल अर्थ के विरुद्ध लिखना अपराध है। हमने भी पंचाध्यायी, तत्वार्थ राजवार्तिक, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय शास्त्रों की हिन्दी टीकायें लिखी हैं उनमें मूल ग्रन्थ के विरुद्ध एक वाक्य भी नहीं लिखा है। आजकल ग्रन्थ के प्रारम्भ में जो आद्य वक्तव्य लिखा जाता है उसमें भी ग्रन्थ के विरुद्ध आलोचनात्मक, समन्वयात्मक एवं अपने अन्वेषणात्मक बिचारों को भर देते हैं ऐसे अनेक शास्त्र छप चुके हैं जिनमें मूल ग्रन्थ से दूनी प्रस्तावना लिख दी गई हैं। उसमें मूल ग्रन्थ के सिद्धान्तों के विरुद्ध आलोचना की गई है। यह पद्धति हानिकारक है तथा स्वाध्याय करने वालों को भ्रमशील बना देती है या विपरीत दशा में ले जाती है। भूमिका भले ही दुगुनी चौगुनी हो वह ग्रन्थाशय के अनुकूल होनी चाहिये, किन्तु उस ग्रन्थ को ही अप्रामाणिक ठहराने वाली तो नहीं होनी चाहिये।

श्री पं० फूलचन्द जी शास्त्री ने जो पंचाध्यायी की हिन्दी टीका लिखी है उसमें उन्होंने स्वतन्त्र विचारों का समावेश ऐसा किया है जो शास्त्रों एवं आचार्य बचनों को ही अन्यथा एवं अप्रमाणिक ठहराता है। उदाहरण के लिए हम उक्त शास्त्री जी के स्वतन्त्र बिचारों की कुछ बातें दिग्दर्शन रूप बता देते हैं–

पंचाध्यायी की अपनी टीका के उत्तरार्ध में ग्रन्थ के सर्वथा विपरीत ही विशेषार्थ में वेद प्रकरण में उन्होंने लिखा है। उनकी पंक्तियां इस प्रकार हैं–

भाव वेद जीवन में एक ही रहता है बदलता नहीं है ऐसे उदाहरण तो मिलते हैं जिनसे द्रव्य वेद का बदलना सिद्ध होता है।"

(उनकी टीका पेज ३२८)

आगे इसी पेज में फिर कहा गया है कि– "अत: भाव वेद जीवन में नहीं बदलता"

इस सन्बन्ध में उन्होंने द्रव्य वेद बदलने के कई उदाहरण दिये हैं बहुत लम्बा लेख है उसे उनकी पंचाध्यायी की टीका में देख लेना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिये। इस द्रव्य वेद के बदलने की सिद्धि के लिए गोम्मटसार के संस्कृत टीकाकार को ही ऊट-पटांग मनमानी लेखक उन्होंने बता दिया है। उनकी पंक्ति इस प्रकार हैं—

"गोम्मटसार की टीकामें तो पद पद पर इस विषय में बहुत स्खलन दिखाई देता है। आगम परम्पराओं में मनुष्यनी का अर्थ द्रव्य मनुष्यनी और तिरक्ख जोणिणी का अर्थ द्रव्य तियंचनी नहीं देखने को मिलता है। किन्तु गोम्मटसार के संस्कृत टीकाकार पूर्वा पर सम्बन्ध को भूलकर ऊट पटांग जो मन में आया सो लिखते गये"

(उनकी हिन्दी टीका पेज ३२८)

श्री पं० फूलचन्द जी शास्त्री का उपर्युक्त लिखना सभी शास्त्रों के विपरीत है। क्योंकि दि० जैन धर्म के सर्वार्थ सिद्धि राजवार्तिक, श्लोक वार्तिक तथा धवलादि सिद्धान्त शास्त्र सवों में भाव वेद बदल सकता है ऐसा ही लिखा है। द्रव्य वेद नहीं बदलता है। द्रव्य वेद तो जड़ शरीर की रचना है वह निर्माण कर्म एवं अंगोपांग नाम कर्म के कारण जैसी बन जाती है वह वैसी रहती है बदलने का कोई कारण ही नहीं है। हां भाव वेद नौ कषाय वेदोदय से होता है वह मनुष्यों की इच्छा से एवं रागजनित वासना से बदल भी जाता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

द्रव्यवेद नहीं बदलता है भाव वेद बदल सकता है

भाव वेद बदल सकता है इसके समर्थक सभी शास्त्र हैं। इसी पंचाध्यायी ग्रन्थ में लिखा है कि—

केषाञ्चित द्रव्यतः सांङ्गः पुंवेदो भावतः पुनः
स्त्रीवेदः क्लीववेदोवा पुंवेदोवा त्रिधापिच
केषांचित् क्लीववेदोवा द्रव्यतो भावतः पुनः
पुंवेदो क्लीववेदोवा स्त्रीवेदोवा त्रिधोचितः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कश्चिदापर्ययन्यायात् क्रमादस्ति त्रिवेदवान्
कदाचित् क्लीववेदोवा स्त्रीवा भावात् क्वचित् पुमान्
(पंचाध्यायी श्लोक १०९० से १०९२)

इन उपर्युक्त श्लोकों का यही अर्थ है कि जो मनुष्य द्रव्यवेद से पुरुष है तो भी उसका भाववेद पुंवेद या स्त्रीवेद या नपुंसक वेद हो जाता है। हो ही जाय ऐसा नियम नहीं है।

इन तीनों श्लोकों का अर्थ श्री पं० फूलचन्दजी शास्त्री ने अपनी हिंदी टीका में ग्रन्थ के अनुसार ही किया है परन्तु उन श्लोकों की टीका में नीचे विशेषार्थ में अपने स्वतंत्र विचार लिख डाले हैं। जिस ग्रन्थ की वे टीका लिख रहे हैं उसी ग्रन्थ के सर्वथा विपरीत बातें लिखना अनधिकार एवं प्रतारणा है। वे अपने विचार स्वतंत्र ट्रैक्टों में लिख सकते हैं परन्तु किसी शास्त्र की टीका में मनमानी बातें लिखना तो सर्वथा अनुचित हैं। फिर उन्होंने गोम्मटसार के संस्कृत टीकाकार को ऊट पटांग मनमानी लिखने वाला बताया है। संस्कृत टीकाकार ने गोमटसार की मूल गाथाओं के अनुसार ही संस्कृत टीका लिखी है। श्री पंडित प्रवर टोडरमल जी ने उसी के अनुसार गोम्मटसार की हिन्दी टीका लिखी है इसलिये पं० फूलचन्दजी शास्त्री का ऊट पटांग मनमानी वताने का आक्षेप मूलग्रन्थ कर्ता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती पर भी हो जाता है।

द्रव्य वेद तो शरीर नाम अंगोपाँग नाम कर्म निर्माण नाम कर्म आदि के उदय से बनता है वह वेद शरीर का ही अंग है। उससे आत्मा के भावों में कोई परिवर्तन नहीं होता है आजकल द्रव्यवेद वदल जाने की भी चर्चा चल रही है और डाक्टरों के प्रयोग से (आपरेशन) पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष बना दिया गया है ऐसे भी उदाहरण समाचार पत्रों में आते हैं परन्तु यह भी भ्रम पूर्ण वात है। द्रव्यवेद नहीं वदलता है किन्तु शरीर की रचना में कारणों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की विषमता से विचित्रता होजाती है। जिसका द्रव्य लिंग चिन्ह ऊपर चर्म से ढक जाता है तब स्त्री समझ लिया जाता है किन्तु आपरेशन से उस चर्म को अलग कर देने से द्रव्य लिंग रचना प्रगट होजाती है तो वह पुरुष रूप में स्पष्ट दीखता है यही दशा स्त्री के चिन्ह की बात है। सिद्धान्त यह है कि एक पर्याय में शरीर और उसका अंगोपांग बदलता नहीं है अतः द्रव्यवेद बदलता नहीं है। यह सिद्धान्त है।

किन्तु भाववेद में अनेक प्रकार की विषमता पाई जाती है। देवगति में जो देवांगना है उसके द्रव्यवेद के समान भाववेद भी स्त्रीवेद ही उस पर्याय में रहता है जो द्रव्यवेद से देव हैं उसका भाववेद भी पुरुषवेद ही रहेगा। देवों में भाववेद में विषमता नहीं है। नारकी सभी द्रव्यवेद और भाववेद से नपुंसक ही होते हैं। तिर्यंचों में एकेन्द्रिय से लेकर चौइंद्रिय तक सभी द्रव्यवेद और भाववेद से नपुंसक ही होते हैं तथा संमूर्छन जीव असंज्ञीपंचेंद्रिय तिर्यंच भी नपुंसक वेद वाले ही होते हैं। संज्ञीपंचेंद्रिय संमूर्छन मनुष्य भी नपुंसक लिंग वाले ही होते हैं किंतु गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्यों में द्रव्यवेद और भाववेद में विषमता भी है।

जो कोई द्रव्य वेद (शरीर रचना) से पुरुष है वह भाववेद से भी पुरुष होता है किन्तु कोई पुरुष द्रव्यवेद से पुरुष है तो भी वह भाववेद से स्त्री वेदी या नपुंसक वेद वाला बन जाता है। इसी प्रकार कोई स्त्री द्रव्य वेदी स्त्री होने पर भी भाववेद से भी स्त्री रहती है और कोई द्रव्य स्त्री भाववेद से पुरुष और नपुंसक भी हो जाती है। इसी प्रकार नपुंसक भी भाववेद से स्त्री या पुरुष वेदी बन जाता है।

इसका कारण यह है कि भाववेद कषायों के उदय की मुख्यता से होता है। कोई पुरुष तो स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रखता है कोई पुरुष पुरुष या नपुंसक के साथ रमण करना चाहता है। कोई स्त्री पुरुष के साथ रमण करना चाहती है। नपुंसक भी पुरुष स्त्री दोनों के साथ रमण करना चाहता है। यह कषायों की तीव्रता और विचित्रता से होता है। राग परिणति की वलवत्ता से ऐसी विषमता होती है। इसलिये मनुष्य पर्याय में कर्म भूमि में कहीं समता और कहीं विषमता पाई जाती है। इसी बात को पंचाध्यायी कार ने कहा है—

रिरंसा द्रव्यनारीणां पुंवेदस्योदयात्किल
नारीवेदोदयाद्वेदः पुसो भोगाभिलाषिता

अर्थ—पुरुष वेद के उदय से स्त्रियों के साथ रमण करने की इच्छा होती है। स्त्रीवेद के उदय से पुरुषों के साथ भोग भोगने की इच्छा होती हैं।

नालं भोगाय नारीणां नापि पुंसा मशक्तितः
अन्तर्दग्धोस्तियो भावः क्लीव वेदोदयादिव (पंचाध्यायी)

अर्थ—शक्ति रहित होने से जो न तो स्त्रियों के साथ भोग भोग सकता है और न पुरुषों के साथ भोग सकता है किन्तु नपुंसक वेद के उदय से भीतर ही भीतर जलता रहता है यह नपुंसक भाववेद वाले का भाव रहता है।

आचार्य नेमिचंद सिद्धांत चक्रवर्ती ने भी यही बात लिखी है-

पुरुसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे
नामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा
(गोम्मटसार)

अर्थ—पुरुष स्त्री और नपुंसकवेद कर्म के उदय से भाव पुरुष भाव स्त्री भाव नपुंसक होता है। और नाम कर्म के उदय से द्रव्य पुरुष द्रव्य स्त्री द्रव्य नपुंसक होता है। सो यह भाववेद और द्रव्य वेद प्रायः करके समान होता है परन्तु कहीं २ विषम भी होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् वेद कषाय के उदय से जीवों में भाववेद होता है और निर्माण कर्म, शरीर नाम कर्म तथा अंगोपांग कर्म के उदय से द्रव्य वेद होता है। जैसा द्रव्य वेद है वैसा ही भाववेद होता है परन्तु कहीं कहीं विषमता भी होजाती है। द्रव्य वेद तो पुरुष वेद रहता है किंतु भाव वेद स्त्रीवेद या नपुंसक भी हो जाता है। इसी प्रकार द्रव्य वेद तो स्त्री वेद है किंतु भाव वेद पुरुष वेद अथवा नपुंसक वेद भी होजाता है। इसलिये "पाऐण समा कहिं विसमा इस गाथा के अनुसार प्रायः तो द्रव्य वेद भाव वेद समान होता है कहीं विषम भी होता है।

और भी प्रमाण–

लिंगेन केन सिद्धिः अवेदत्वेन त्रिभ्योवावेदेभ्यः सिद्धिः भावतो न द्रव्यतः द्रव्यतः पुंल्लिगेनैव,, (सर्वार्थं सिद्धि)

ये पंक्तियां–दशमे अध्याय के क्षेत्र कालगति लिंग तीर्थं–

इस सूत्र की व्याख्या में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है। इनका अर्थ यह है कि मोक्ष प्राप्ति अथवा सिद्ध पद किस वेद से होता है तो समाधान में कहा गया है कि सिद्ध पद बिना किसी वेद के होता है। क्योंकि भाव वेद का उदय नौवे गुण स्थान तक होता है। आगे नहीं होता है। अथवा पूर्व नय की अपेक्षा से तीनों वेदों से सिद्ध पद होता है। अर्थात् कोई साधु क्षपक श्रेणी माढ़ता हुआ नौवे गुण स्थान में पुरुष भाव वेद से सिद्ध होता है कोई साधु स्त्री भाववेद को नौवें में प्राप्त कर आगे उसे नष्ट कर सिद्ध होता है कोई नौवें में नपुंसक वेद को नष्ट कर सिद्ध पद प्राप्त करता है। इससे यह स्पष्ट है कि भाव वेद बदलता भी है। किंतु आचार्य पूज्य पाद स्वामी यह स्पष्ट करते हैं कि सिद्ध पद पाने वालों का द्रव्य वेद तो पुरुष वेद ही रहता है। द्रव्य स्त्री वेद द्रव्य नपुंसक वेद से किसी को कभी मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है। किंतु भाव वेद तो नौवे तक तीनों ही हो सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि भाव वेद बदल भी जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और भी प्रमाण–

होंति खवा इक समये वोहिय बुद्धा य पुरिस वेदाय
उक्कस्सेणठ्ठत्तरसयपमा सग्गदोय चुदा
पत्तेय वुद्ध तित्थयरत्थिणउंसयमणोहिणाम जुदा
दसछक्क वीस दस वीसट्ठावीसं जहा कमसो
(गोम्मटसार)

अर्थ–एक समय में क्षपक श्रेणी वाले जीव अधिक से अधिक कितने होते हैं इसका उत्तर यह है कि-

वोधित बुद्ध एक सौ आठ। पुरुष वेदी एक सौ आठ। स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्य होकर क्षपक श्रेणी माढ़ने वाले एक सौ आठ। प्रत्येक बुद्धि ऋद्धि के धारक दश। तीर्थंकर छह। स्त्री वेदी बीस। नपुंसक वेदी दश। मनः पर्ययज्ञानी बीस। अवधि ज्ञानी अट्ठाईस। आदि।

इन गाथाओं से यह खुलासा हो जाता है कि क्षपक श्रेणी माढ़ने वालों में पुरुषवेदी स्त्रीवेदी और नपुंसक वेदी भी बताये गये हैं। जब द्रव्य वेद-केवल पुरुष वेद ही सभी मोक्ष प्राप्त करने वालों के होता है तब स्त्री वेदी और नपुंसक वेदी भी क्षपक श्रेणी में क्यों गिनाये गये हैं इससे बहुत खुलासा हो जाता है कि भाव वेद बदल भी जाता है।

और भी शास्त्र विरुद्ध कथन

पंचाध्यायी के श्लोक १०८१ की हिन्दी टीका में पं० फूलचन्द जी ने विशेषार्थ में लिखा है–

'यहां तीनों वेदों का कार्य बतलाया गया है वह उपचरित कथन है इसे तात्विक मानने में अनेक दोष आते हैं" "रमण करने की इच्छा रति कर्म का कार्य है वेद का नहीं।" उनका यह पंचाध्यायी के विरुद्ध है देखिये–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
5202

पचाध्यायी का श्लोक है–

रिरंसा द्रव्य नारीणां पुंवेदस्योदयात् किल
नारी वेदोदयाद्वेदः पुंसां भोगाभिलाषिता

(श्लोक १०८१ पंचाध्यायी)

इस श्लोक का स्पष्ट अर्थ यही है कि जो पुरुष है वह स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा करता है जो स्त्री है वह पुरुष के साथ रमण करने की इच्छा करती है। परन्तु शास्त्री जी अपने विशेषार्थ में इस कथन को उपचरित कहते हैं और उसे रति कर्म का कार्य वताते हैं। परन्तु उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि रमण करने की इच्छा तो भाव वेद का ही कार्य है। रमण करने की इच्छा होने पर भोग भोगते समय राग होना या उस भोग में आनन्द मानना यह रति कर्म का कार्य है। मुख्य कथन को जो सभी शास्त्रों में है उप चरित (व स्तव में नहीं) कहना शास्त्र विरुद्ध है।

कर्म सिद्धान्त का खन्डन

श्री पं० फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री ने कर्म सिद्धान्त का भी खण्डन कर दिया है उन्होंने पंचाध्यायी ग्रन्थ की ५२ पृष्ठों की अपनी लम्बी प्रस्तावना में अनेक बाते ऐसी लिख दी हैं जो उनके स्वतन्त्र विचार हैं और शास्त्रों से विपरीत हैं। पृष्ठ ४० में वे लिखते हैं–

"देखना यह है कि कर्म में ऐसी योग्यता कहां से आई जिससे वह राग द्वेष रूप परिणति के उत्पन्न करने में सहायता प्रदान करता है क्या उसमें यह योग्यता पहले से ही मौजूद है या उसे वह शक्ति स्वयं जीव के निमित्त से मिली है ? जहां तक उक्त संसार परम्परा के अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कर्म में ऐसी योग्यता स्वयं जीव के निमित्त से आती है यदि जीव में राग द्वेष परिणति नहीं हो तब न तो कर्म का ही बंध हो सकता है और न ही वह आगामी राग द्वेष रूप परिणति के सर्जन करने में निमित्त हो सकता है अतएव जीव की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राग द्वेष रूप परिणति और कर्म इन दोनों का परस्पर निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध होने पर भी यही निष्कर्ष निकलता है कि यह जीव स्वयं अपने अपराध के कारण बंधता है और उसका ठीक तरह से ज्ञान होने पर उससे मुक्त हो जाता है।"

(उनकी पंचाध्यायी की टीका की प्रस्तावना पृष्ठ ४०)

ऊपर की पंक्तियों से यह बात भले प्रकार प्रकट हो जाती है कि कर्म में आत्मा का विभाव भाव राग द्वेष करने की शक्ति या योग्यता नहीं हैं किन्तु जीव में स्वयं वैसी योग्यता है "जीव में राग द्वेष परिणति न हो तब कर्म बंध नहीं हो सकता है" इस वाक्य से स्पष्ट है कि राग द्वेष परिणति जीव की है। इसी प्रकार अन्तिम पंक्ति है– "यह जीव स्वयं अपने अपराध के कारण बंधता है" इस से भी स्पष्ट है कि जीव का स्वयं अपराध ही कर्म बंधक है।

जिस प्रकार सोनगढ़ वाले स्पष्ट रूप से कहते हैं कि कर्म आत्मा का बनाव या बिगाड़ कुछ नहीं करता है आत्मा की स्वयं की योग्यता से ही नरकादि चारों गतियों में भ्रमण आदि सब कुछ होता हैं वही मन्तव्य पं० फूलचन्द जी शास्त्री का है। परन्तु उनका यह मन्तव्य दि० जैन आगम से सर्वथा विपरीत है। तत्वार्थ सूत्र सर्वार्थ सिद्धि राजवार्तिक गोम्मटसार, धवल सिद्धान्त, क्षपणासार आदि सभी शास्त्रों में कर्मबंध, उदय, सत्व, उदीरणादि का वर्णन बहुत बिस्तार से कहा गया है। कर्मबंध होने में जीव के विभाव भाव और तीनों योग निमित्त हैं। तथा राग द्वेषादि रूप विभाव भाव कर्मोदय से होते हैं जीव की स्वयं शक्ति या जीव की स्वयं की योग्यता से नहीं होते हैं यदि जीव की स्वयं की शक्ति या योग्यता से ही कर्मबंध एवं राग द्वेष होता हो तो वह जीव की शक्ति कौनसी है एवं जीव के किस गुण की पर्याय है वह शक्ति नित्य है या अनित्य है। यदि जीव की निजी शक्ति या योग्यता से ही कर्मबंध होता है तो सिद्धों में भी विभाव भाव क्यों नहीं होता है ? इसका कोई सदुत्तर नहीं हो सकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। स्वर्ण पाषाण में जो मलिनता है वह खानि में पाषाण में मिले रहने से है। मलिनता सोने की योग्यता से नहीं है। अग्नि में तपाने पर पाषाण के संयोग से उत्पन्न मलिनता दूर हो जाती है तब सोना सौ टंच का शुद्ध बन जाता है। यदि सोने की योग्यता से ही मलिनता आती है तो शुद्ध सोना फिर मलिन क्यों नहीं होता है ? अधिक लिखने से कोई लाभ नहीं है कर्म का अनुभाग बंध एवं आबाधा काल को छोड़कर उसका विपाक तथा उससे उत्पन्न मिथ्यात्व का उदय अनन्तानु बंधी आदि कषायों का उदय सब व्यर्थ ठहरता है और गोमटसार में जो गुण स्थानों का लक्षण लिखा है कि--

जे हिं दु लक्खिजंते उदयादिसु संभवेहि भावेहिं
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सब्ब दरसिंहि

अर्थः— कर्मों के उदय उपशम क्षय क्षयोपशम आदि के द्वारा जो जीवों में विभाव भाव और स्वभाव भाव होते हैं उन भावों का नाम ही गुण स्थान है। यह सब सिद्धान्त कथन जो सर्वज्ञ भगवान की दिव्य ध्वनि से प्रगट हुआ है वह सब कथन पं० फूलचन्द जी के मन्तव्यानुसार मिथ्या ठहरता है सभी शास्त्र मिथ्या ठहरते हैं कर्म कुछ नहीं करते हैं वे अकिञ्चित्कर हैं सब कुछ नरक स्वर्ग मनुष्य तिर्यंच गतियाँ जीव की योग्यता से ही होती हों तो फिर गति कर्म आयुकर्म आदि कर्मों का उदय क्या करता है। ज्ञानावरणादि चार कर्मों को घातियां क्यों कहा गया है ? राग द्वेष जीव की योग्यता का कार्य है या कषायों के उदय का विपांक है। "जीव गुण घातणत्तादो" इस गोम्मटसार की गाथा के अनुसार जीव के ज्ञानादि गुणों को घातने की शक्ति ज्ञानावरणादि घातिया कर्मों में है। इस कर्म सिद्धान्त का निषेध कर सभी शास्त्रों को अमान्य ठहराना नितान्त निंद्यवात है।

शास्त्री जी लिखते हैं कि "जहां तक इस संसार परंपरा के अध्ययन करने से ज्ञान होता है कि कर्म में ऐसी योग्यता स्वयं जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के निमित्त से आती है"

(उनकी पंचाध्यायी टीका पेज ४०)

शास्त्री का अध्ययन प्रमाण माना जाय या सर्वज्ञ देव की वाणी प्रमाण मानी जाय ? इसे स्वाध्यायशील तत्वज्ञ अच्छी तरह समझते हैं।

कर्मों के फ़लस्वरूप कार्यों में भी अपनी समझ से शास्त्री जी ने विरुद्धता वताई है जैसे–

"कोई धनादि की प्राप्ति को लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम का फल मानते हैं तो कोई इसे सातावेदनीय का फल मानते हैं। आचार्यों में इस विषय को लेकर मतभेद क्यों हुआ ? इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि विश्व को समस्त समस्याओं के कारणों को ठीक तरह से समझलें। न तो कर्म का विश्व के निर्माण में ही हाथ है और न विश्व की समस्त व्यवस्थाओं के वनाने और विगाड़ने में ही हाथ है।"

(उनकी पंचाध्यायी की हिन्दी टीका ३ पेज)

इन पंक्तियों से सभी समझलेंगे कि पं० फूलचन्द जी शास्त्री कर्म का कोई कार्य या फल नहीं मानते हैं। उन्होंने पेज ३१४ में धन सम्पति आदि को पुण्य का फल नहीं बताया है परन्तु अनेक शास्त्रों के प्रमाण देकर पुण्य एवं पाप के फल बताने में समय एवं शक्ति लगाना हम व्यर्थ समझते हैं। पुण्य पाप का फल बताने वाले सभी शास्त्र हैं। उन्होंने लाभान्तराय और सातावेदनीय कर्म के कार्यों में आचार्यों का मतभेद भी वताया है यह भी उनको निजी समझ की बात है। लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम का कार्य तो धनादि की प्राप्ति होना है और सुख होना सातावेदनीय का कार्य है। लाभान्तराय के क्षयोपशम से धनादि तो मिलेंगे परन्तु उनके मिलने पर भी चोरी हो जाय, व्यापार में हानि हो जाय तो दुःख होता है अतः धन प्राप्ति होने पर सुख मिलता रहे यह सातावेदनीय का फल हैं। इसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्यों का मतभेद बताना भी निजी कल्पना है। जो शास्त्रों से सर्वथा विपरीत है।

जाति वर्ण स्पृश्या स्पृश्य व्यवस्था का भी खण्डन

पं० फूलचन्द जी शास्त्री ने पंचाध्यायी की अपनी हिन्दी टीका में जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था और स्पृश्या स्पृश्य भेद व्यवस्था का का भी खंडन किया है उनकी पंक्तियां इस प्रकार हैं–

इस समय आत्म धर्म की अपेक्षा रूढ़ि धर्म को विशेष प्रमुखता मिल गई है। आम जनता आत्म धर्म का बिचार न कर मात्र रूढ़ि धर्म का बिचार करने लगी है। तत्वोपदेश, पूजा, खानपान और सामाजिक व्यवहार में ऐसे तत्व प्रविष्ट हो गये हैं जो स्पष्टतः धर्म विरोधी हैं पर उनका समर्थन करने का प्रयत्न किया जाता है और जो इस प्रवृत्ति का विरोध करते हैं उन्हें धर्म द्रोही कहा जाता है। जैन धर्म सामाजिक व्यवहार में ऊंच नीच के कल्पित भेद को वास्तविक नहीं मानता, कल्पित जाति, और कुल के अहंकार को छोड़ने की बात कहता है। भोजन किस के हाथ से मिला है इसका विचार न कर मात्र भोजन शुद्ध का बिचार करना है आदि।

(उनकी पंचाध्यायी टीका पेज ४२)

इन बातों के समाधान में हम इतना ही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि जिन बातों को रूढिवाद एवं धर्म विरुद्ध कहा जाता है वे न तो धर्म के विरुद्ध हैं और न रूढ़िवाद हैं किन्तु आत्म शुद्धि की साधक और मोक्ष साधक हैं। उनका विरोध करना ही धर्म विरुद्ध एवं शास्त्र विरुद्ध है।

ऊंच नीच भेद कल्पित नहीं है। तत्वार्थ सूत्र महाशास्त्र में "उच्चैर्नीचैश्च" यह सूत्र ऊंच नीच का भेद सिद्ध करता है हरिवंश पुराण आदि पुराण आदि शास्त्रों के अनुसार समवसरण में द्रव्य मिथ्या दृष्टि, अभव्य और शूद्र नहीं जाता है यह भी ऊंच नीच का भेद साधक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीक्षा योग्यास्त्रयो वर्णाः यह आगम वाक्य भी दीक्षा के योग्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को पात्र बताता है। शूद्र वर्ण को मुनि दीक्षा का पात्र नहीं बताता है। पं० फूलचन्द जी शास्त्री के मन्तव्य हास्योत्पादक भी है "भोजन किसके हाथ से मिला है इस बात का बिचार तो नहीं करना चाहिये किन्तु मात्र भोजन शुद्धि का बिचार करना चाहिये।" जो कोई व्यक्ति शौचालय से आकर बिना स्नान किये, उन्हीं अशुद्ध वस्त्रों से आहार देता है तो उसका बिचार नहीं करके शुद्ध भोजन मात्र का क्या स्वरूप है ? कार्य कारण शून्य बातों का विद्वत्समाज में कोई मूल्य नहीं होता हैं। क्या एक रजस्वला स्त्री के हाथ का तथा घृणित पेशा करने वाले के हाथ का भोजन भी शुद्ध माना जायगा ? ऐसे बिचार वालों की समझ से बाह्य संसर्ग की कोई अशुद्धता नहीं है। और शुद्धि अशुद्धि का कोई भेद भी नहीं है।

जाति को भी कल्पित लिखा गया है यह भी आगम विरुद्ध लिखना है शास्त्रों में 'जातयोऽनादयः सिद्धाः" ऐसा स्पष्ट कथन है। आदि पुराण में सज्जाति के स्वरूप वर्णन में लिखा है–

पितु रन्वय शुद्धि स्तु तत्कुलं परिभाष्यते
मातुरन्वय शुद्धिर्या सा जातिरुप वर्ण्यते

अर्थात् पिता के वंश परम्परा की शुद्धि को कुल कहते हैं और माता के बंश परम्परा की शुद्धि को जाति कहते हैं तथा दोनों को सज्जाति कहते हैं।

वर्ण और जाति दोनों हीं अनादि से हैं। इस सम्बन्ध में पूर्वाचार्यों के अनेक प्रमाण हैं। कुछ प्रमाण इस प्रकार हैं—

सज्जातिः सत्गृहित्वं च पारिव्राज्यं सुरेंद्रता
साम्राज्य परमार्हन्त्यं पर निर्वाण मित्यपि

(आदि पुराण पर्व ३८ श्लोक ८४)

१–सज्जाति, २–सद्ग्रहस्थ, ३–दीक्षा, ४–सुरेंद्र, ५–साम्राज्य, ६–अर्हंत पद, ७–निर्वाण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन सात परम स्थानों में पहला स्थान श्रेष्ठ जाति है उसके विना आगे के कोई स्थान नहीं हो सकते हैं। अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का साधक दीक्षा है और सज्जाति के बिना दीक्षा लेने का पात्र नहीं होता है। प्रमाण देखिये—

विशुद्ध कुलगोत्रस्य सद्वृत्तस्य वपुष्मत:
दीक्षायोगत्व मात्म्नातं सुमुखस्य सुभेधस:
(आदि पुराण पर्व ३८ श्लोक १५८)

आचार्य शिरोमणि जिनसेनाचार्य कहते है—

जिसका कुल (वर्ण और जाति) विशुद्ध हों, ऊंचा गोत्र हो, आचरण जिसका श्रेष्ठ हो, बुद्धिमान् और शरीर जिसका उत्तम हो-हीनांग विकलांग नहीं हो ऐसा पुरुष दीक्षा लेने का पात्र होता है।

आचार्य मुकुट उमा स्वामि तत्वार्थ सूत्र महा शास्त्र में कहते हैं—

"उच्चै नीचैश्च" इस सूत्र की सर्वार्थसिद्धिराजवार्तिक में व्याख्या लिखी है कि जो उच्च कुल में–लोक पूजित कुल में उत्पन्न हो वह उच्च गोत्र वाला होता है और जो नीच कुल लोक निंदित कुल में पैदा हो वह नीच गोत्र वाला होता है।

"आर्याम्लेक्षाश्च" इस तत्वार्थ सूत्र के सूत्र में मनुष्यों के दो भेद बताये गये हैं एक आर्य एक म्लेक्ष। आर्यों के अनेक भेद हैं एक क्षेत्रार्य हैं एक जात्यार्य है। जो उत्तम कुल में उत्पन्न हों उन्हें जात्यार्य कहते हैं यह व्यवस्था अनादि से है। यदि जाति अनादि से नहीं होती तो इक्षाकुवंश, सोसवंश,, हरिवंश काश्यप आदि भेद कर्म भूमि के पहले से ही क्यों प्रसिद्ध हैं ?

और भी जाति की अनादिता में प्रमाण

जातयोऽनादय: सर्वा: तन् क्रियापि तथा विधा
(आचार्य सोमदेव कृतयश स्तिलक चंपू आठवां उल्लास)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् जातियां अनादि सिद्ध है। और उनके अनुसार ही उनकी क्रिया होती है।

वर्ण व्यवस्था भी अनादि से हैं

इसी प्रकार वर्ण भेद भी अनादि सिद्ध है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। तीर्थंकर सभी क्षत्रिय वर्ण में उत्पन्न होते हैं यह कथन शास्त्रों का झूठा है क्या ? भगवान भरत महाराज ने क्षत्रियों में से ही तो विवेक एवं व्रतधारियों की विशेषता से ब्राह्मण वर्ण की रचना की थी आदिनाथ भगवान ने तीन वर्णों का विधान भी नवीन नहीं किया था किंतु उन्होंने यह कहा कि जैसी तीन वर्णों की रचना विदेह क्षेत्र में चालू है उसी प्रकार हम भी करते हैं। अर्थात् यह तीन वर्णों की रचना नवीन नहीं हैं अनादि सिद्ध है। यह शंका हो सकती है कि—

वर्ण और जाति यदि अनादि सिद्ध है तो भोग भूमियों में और पहले आदि कालों में क्यों नहीं थी भगवान आदिनाथ ने उनका प्रारंभ किया है अतः अनादि नहीं है। इस शंका का समाधान यह है कि वर्ण और जाति भोग भूमिया और प्रथमादि कालों में भी रहती है परन्तु वहां पर उनका क्रियात्मक कोई उपयोग नहीं होता है इसीलिये वहां पर अव्यक्त एवं अनुपयोगी बनी रहती हैं। यही कारण है वहां पर पूरा मोक्ष मार्ग भी चालू नहीं होता है मोक्ष मार्ग का मुनिपद श्रावक पद एवं व्रताचरण-सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र का यथा विधि परिपालन वहां नहीं होता है। जब कर्म भूमि का प्रारम्भ होता है तभी मोक्ष मार्ग चालू होता है और तभी वर्ण एवं जाति व्यवस्था का प्रचलन चालू होता है। विना जाति वर्ण की मर्यादा के मोक्ष मार्ग का चलना अशक्य एवं असंभव है। आदिनाथ भगवान जन्म से ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि, और अवधि ज्ञानी थे वे तीर्थंकर प्रकृति के वंध के कारण परमपुण्यातिशायी थे। "पुण्ण फला अरहंता,, इस कुंदकुंद स्वामी के वचनानुसार महान् पुण्य का फल अर्हंत पद है। भगवान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदिनाथ ने अपने निर्मल मति श्रुत अवधि ज्ञान के द्वारा मोक्ष मार्ग और विदेह क्षेत्र की मर्यादा का अनुभव साक्षात् करके वर्ण और जाति का प्रचलन चालू करादिया जो भोग भूमि में वंद था। इसलिये जाति और वर्ण दोनों ही अनादि सिद्ध हैं। कर्म भूमि में उनका उपयोग धर्म साधन में एवं मोक्ष मार्ग में अनिवार्य सहायक है। विना वर्ण जाति के वाह्य एवं अंतरंग शुद्धता नहीं आसकती है। शुद्धता के बिना श्रावक और मुनिपद तथा मोक्ष मार्ग की प्राप्ति सर्वथा असंभव है।

वर्ण और जाति में भेद एवं उनका फल

वर्ण से तो वहिरंग शुद्धि अथवा अशुद्धि आती है और जाति से अन्तरंग शुद्धि अथवा अशुद्धि आती है उसका खुलासा इस प्रकार है—

वर्ण चार हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य, शूद्र अध्ययन अध्यापन यजन याजन एवं सन्तोषवृत्ति से रहना ब्राह्मणों का कर्तव्य है। शूरता वीरता एवं शस्त्रादि के द्वारा शासन करना क्षत्रियों का कर्तव्य है। व्यापार, वही खाता, खेती आदि वैश्यों का कर्तव्य है। और सेवा करना अथवा अनेक प्रकार की शिल्प कला द्वारा आजीविका करना यह शूद्रों का कर्तव्य है इन चारों में अपने अपने कर्तव्यों के अनुसार उच्चता और नीचता आती है। हिंसात्मक कार्य और अपने पेशे के अनुसार शरीर एवं आत्मा में मलिनता आती है।

आजकल देश काल एवं शासन तथा परिस्थिति के अनुसार वर्ण व्यवस्था अमर्यादित एवं अव्यवस्थित होगई है। उच्च वर्ण वाले भी नीच पेशा करने लगे हैं और नीच वर्ण वाले ऊंचा पेशा करने लगे हैं। कोई ब्राह्मण जूते का व्यापार करता है तो कोई जाटव (चमार) कपड़े की दुकान करता है इस अस्त व्यस्त अव्यवस्था में खान पान में भी अशुद्धता बढ़ती जाती है। चौके की मर्यादा एवं शुद्ध भोजन के स्थान में चाहे जिसके हाथ का चाहे जैसा भक्ष्य अभक्ष्य भोजन होटलों में प्रमादी एवं शिथिलाचारी लोग खाने लगे हैं। ऐसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोगों को उन नवीन विचारधारा वाले स्वतन्त्र मन्तव्यों के प्रचारकों का प्रोत्साहन भी मिलता है जो इस हीन खान पान और हीनाचरण को जड़ शरीर की परिणति बताते हैं और इन शारीरिक क्रियाओं का आत्मा से कोई संबंध नहीं मानते हैं। परन्तु ऐसी मान्यता आगम, अनुभव एवं प्रत्यक्ष से वाधित है।

प्रसंगवश एक दृष्टान्त देना उपयोगी है। एक क्षत्रिय जूतों की दुकान करता था और एक चमार कपड़े की दुकान करता था। दोनों पहलवानी भी करते थे। एक दिन दोनों की कुस्ती होगई। चमार ने क्षत्रिय को दवोचदिया और उसके ऊपर बैठ गया। तब नीचे पड़ा हुआ क्षत्रिय जोश में आकर वोला क्योंरे ! चमार मेरे ऊपर बैठ गया है ऐसा समझते ही उस क्षत्रिय में स्फूर्ति एवं पराक्रम आगया, उसने तुरन्त उस चमार को पटक दिया और स्वयं उसके ऊपर बैठ गया। इसका तात्पर्य यही है कि परम्परा के संस्कार निमित्त पाकर प्रगट हो जाते हैं। भले ही क्षत्रिय जूतों का जघन्य व्यापार करता है परन्तु उस हीन व्यापार को छोड़ देवें तो शुद्ध संस्कारी बनकर मुक्ति भी पा सकता है। वाह्य शारीरिक अशुद्धि दूर करने पर शरीर-पिंड शुद्ध माना जाता है। गोम्मटसार में कहा गया है–

संताण कमेणागय जीवायरणस्स गोदमिदि सण्णा
उच्चं णचिं चरणं उच्चं णीचं हवे गोदं।

अर्थ–संतान परंपरा से आये हुए जीव के आचरणों का नाम ही गोत्र है। जीव उच्च या नीच जैसा आचरण करता है उसी के अनुसार उच्च या नीच गोत्र कहा जाता है। अर्थात् वर्ण के अनुसार आचरण में मलिनता तथा निर्मलता अवश्य आती है।

शूरोसि कृत विद्योसि दर्शनीयोसि पुत्रकः यस्मिन कुले त्व मुत्पन्नः गज स्तत्र न हन्यते। एक शेरनी ने सृगाल के बच्चे को पालकर शेर सरीखा बना दिया, किंतु उसके पराक्रमहीन संस्कारों को देखकर शेरनी को कहना पड़ा कि तुझे मैंने शेर सरीखा बना दिया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है किंतु जिस कुल में तू पैदा हुआ है उस कुल में हाथी नहीं पछाड़े जासकते हैं। कुल के संस्कार असर लाते हैं।

जाति अंतरग शुद्धि अशुद्धि का मूल कारण है।

वर्ण से जाति भिन्न है। वह शरीर की रचना से संबंध रखती है। कर्मवर्गणा का भेद जो आहारवर्गणा है उससे शरीर बनता है। अर्थात् माता पिता के रजोवीर्य ही गर्भ धारण करने वाले जीव का आहार है। उसी से शरीर वृद्धि पाता है। इसी आधार पर शरीरों में पात्रता अपात्रता आती है। मुनिपद एवं मोक्ष प्राप्ति का पात्र शरीर द्वारा ही हो सकती है। क्योंकि भावों की विशुद्धि पात्रानुसार ही हो सकती है। परमाराध्य आचार्य पूज्यपाद सर्वार्थ सिद्धि आदि सिद्धान्त शास्त्रों के रचयिता जाति कुल के विषय में लिखते हैं–

"श्रीमज्जातिकुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽजसा,,
(दशभक्तनादिसंग्रह चारित्रभक्ति)

अर्थ–तीर्थंकर भगवान ने ज्ञानाचारका निरूपण किया है भगवान तीर्थंकर के लिये कहा गया है कि वे जाति और कुल का प्रकाश करने के लिये चंद्रमा के समान है। इसका तात्पर्य यह है कि दीक्षायोग्य सम्यक् चारित्र की प्राप्ति के लिये जाति और कुल की पात्रता परमावश्यक है।

सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य वीरनंदि वर्ण और जाति के विषय में कितनी महत्वपूर्ण बात लिखते हैं—

प्राज्ञ न ज्ञात लोक व्यवहृति मतिना तेन मोहोज्झितेन प्राग् विज्ञात सुदेशो द्विज नृपति वणिकवर्णं वर्ण्योङ्ग पूर्णः। भूमृल्लोको विरुद्धः स्वजन परिजनोन्मोचितो वीत मोहश्चित्रास्मार रोगाद्यपगत् इति च जातिसंकीर्तनाद्य: (११)

आचारसार अध्याय १) पृ० १८

इस श्लोक में यह स्पष्ट किया गया है कि जो लोक व्यवहार में दक्ष हैं वीतराग हैं ऐसे आचार्य यदि किसी शिष्य को मुनि दीक्षा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवे तो पहले दीक्षा लेने वाले मे यह अच्छी तरह जान लेवें और पूछ लेवें कि दीक्षा लेने वाला पुरुष ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य इन तीन वर्णों में से कौन वर्ण वाला है और उसकी जाति कुल आदि शुद्ध हैं या नहीं।

स्पष्टार्थं यह है कि उत्तम वर्ण और जाति कुल जिसका शुद्ध हो वही पुरुष दीक्षा ग्रहण करने का पात्र है।

जो विद्वान् वर्ण और जाति को काल्पनिक बताते हैं उन्हें सिद्धान्त चक्रवर्ती आचार्य वीरनन्दि महाराज आदि के वचनों को पढ़कर अपनी विपरीत समझ को सुधार लेना चाहिये।

विदेह क्षेत्र में वर्ण जाति व्यवस्था सदैव रहती है

विदेह क्षेत्र में सदैव कर्म भूमि रहती है। इसलिये वहां से सदैव मोक्ष गमन होता रहता है। भरत क्षेत्र और ऐरावत इन दो क्षेत्रों में छह कालों का परिवर्तन होता रहता है। पहले दूसरे तीसरे कालों में भोग भूमि रहती है। चौथे काल में कर्म भूमि होती है चौथे काल में मोक्ष गमन भरत क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में चालू रहता है। पंचनकाल में भी कर्म भूमि है मोक्ष मार्ग भी चालू रहता है परन्तु हीन संहनन होने से मोक्ष गमन भरत क्षेत्र से ऐरावत से पंचम काल में नहीं होता है छठा काल तो धर्म विहीन है।

आदिनाथ भगवान ने अपने गृहस्थ जीवन में जहां असिमसि कृषि वाणिज्य सेवा शिल्प ये छह कर्म बताये थे उसी समय उन्होंने अपने अवधि ज्ञान से प्रत्यक्ष जानकर विदेह क्षेत्र के समान भरत क्षेत्र में भी वर्ण और जाति की मर्यादा बताकर, कुलाचार की विशुद्धता का भी विधान बताया था, प्रमाण–

पूर्वापर विदेहेषु या स्थितिः समर्वणिता
साद्य प्रवर्तनीयात्र ततो जीवन्त्यमूः प्रजाः
(आदि पुराण पत्र ५१७ श्लोक १४३)

अर्थः-पूर्व विदेह अपर विदेह क्षेत्रों में जो वर्ण जाति की व्यवस्था थी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसी की प्रवृत्ति प्रजा के कल्याण के लिए भगवान आदि तीर्थंकर ने बताई और षट कर्मों की व्यवस्था भी प्रजा के जीवन के लिए बताई।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि वर्ण जाति की व्यवस्था अनादि सिद्ध है। और उच्च वर्ण तथा उच्च जाति (सज्जाति) वाले पुरुष ही मोक्ष प्राप्ति के अधिकारी होते हैं।

और भी प्रमाण

पिंड शुद्धि समूलैका कुलजात्योर्वि शुद्धता
सन्तान क्रमेणायाता सा सज्जातिः प्रगद्यते

(स्मृतिसार पृष्ठ २८)

अर्थः— मूल में तो पिंड शुद्धि हो, और सन्तान परम्परा से कुल और जाति की विशुद्धता हो, उसी को सज्जाति कहते हैं।

वर्ण और जाति शुक्ल ध्यान के कारण हैं

जाति गोत्रादि कर्माणि शुक्ल ध्यानस्य हेतवः
येषु ते स्युस्त्रयो वर्णाः शेषाः शूद्राः प्रकीर्तिताः

अर्थः— उत्तम जाति उत्तम गोत्र और उत्तम कर्म ही शुल्क ध्यान के कारण हैं। ये तीनों बातें जिनमें पाई जाती हैं वे ही ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जिन लिंग धारण योग्य हैं। बाकी शूद्र हैं।

विशुद्ध कुल जात्यादि संवत् सज्जाति रुच्चते
उदितोदितवंशत्वं यतोभ्येति पुमान कृती

(आदि पुराण)

अर्थः— जिनका कुल और जाति दोनों शुद्ध हैं वे ही सज्जाति वाले कहे जाते हैं। इन दोनों से ही वंश का अभ्युदय एवं मोक्ष की पात्रता आती है।

अशुद्ध शरीर पिंड में महाव्रतादि धारण करने की निर्मलता नहीं आ सकती है। जब शुद्ध शरीरधारी पुरुष भी वस्त्र भूषण आदि वाह्य वस्तुओं से सहित रहता है तब तक वह सातवें या छठे गुणस्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के भावों को नहीं प्राप्त कर सकता है। उसी प्रकार जहां उस पर्याय से संलग्न शरीर ही अशुद्ध है वहां मुनि पद के योग्य भाव उत्पन्न ही नहीं हो सकते हैं। इसीलिये अवधि ज्ञानी मनः पर्यय ज्ञानियों ने साक्षात् प्रत्यक्ष जानकर शास्त्रों में सज्जातित्व आदि का विधान बताया है अतः शरीर शुद्धि (पिंड शुद्धि) का होना मुनिपद के लिये अनिवार्य आवश्यक है। यही जाति शुद्धि है। वाह्य शुद्धि भी आवश्यक है। भावों की विशुद्धि, कहने मात्र से नहीं होती है किन्तु सभी वस्तुओं की शुद्धि होने पर ही आत्मा में अशुद्धता आती है। जो व्यक्ति मद्यमांसादि अभक्ष्यों का भक्षण करता रहें और कहे कि मेरे सम्यग्दर्शन होगया है तो उसका ऐसा कहना और समझना झूठा है। बिना अष्ट मूल गुण धारण किये एवं कर्म स्थिति आदि लब्धियों के प्राप्त किये सम्यग्दर्शन कभी नहीं होगा। जो व्यक्ति हिंसा चोरी आदि करता रहे वह कहे कि मेरे भाव शुद्ध है तो यह उसका कहना झूठा है। नग्न दिगम्बर मुनिपद धारण किये बिना कोई वस्त्र धारी व्यक्ति कहे कि मेरे भाव वीतराग हैं परम शुद्ध हैं तो ऐसा कहना और समझना मिथ्या है। शास्त्रों में कहा गया है–

"द्रव्यस्य शुद्धि मधिगम्य यथानुरूपंभावस्य शुद्धि मधिका मधिगंतुकामः,,

अर्थात् पहले द्रव्य शुद्धि प्राप्त करके ही भाव शुद्धि की चाहना की जाती है। जब बाहरी शुद्धि के बिना अंतरंग में शुद्धि नहीं आसकती हैं तब जाति शुद्धि एवं वर्ण शुद्धि आत्म शुद्धि एवं भाव नैर्मल्य में अनिवार्य आवश्यक है।

भगवान की पूजा का भी निषेध

अपनी लिखी पंचाध्यायी की हिन्दी टीका में श्री पं० फूलचन्दजी शास्त्री ने भगवान की पूजा को ईश्वर वाद की छाया बताकर उसे धर्म विरुद्ध लिखा है उनके वाक्य इस प्रकार हैं–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'जैन धर्म जी हजूरी उपदेशों में ईश्वर वाद की छाया होने से उन्हें जीवन शुद्धि में प्रयोजक नहीं मानता है और पूजन में द्रव्य की उठाधरी की अपेक्षा परिणामों की शुद्धि पर अधिक जोर देता है फिर भी वर्तमान समय में इससे सर्वथा विरुद्ध प्रवृत्ति होरही है और उसे धर्म समझकर उसका समर्थन किया जाता है,,

(पंचाध्यायी शास्त्री जी की हिंदी टीका पेज ४२ प्रस्ता०)

भगवान की अष्ट द्रव्य से जो भक्ति एवं श्रद्धा के साथ पूजा की जाती है उसको भी द्रव्यों की उठाधरी बताकर उस द्रव्य पूजा का वे निषेध करते हैं और धर्म विरुद्ध बताते हैं। इन शास्त्री जी से पूछा जाय कि भगवान के दर्शन, और अष्ट द्रव्य से पूजन किये बिना परिणामों की शुद्धि क्या आकाश से टपक पड़ेगी ? फिर तो जिन मंदिर बनवाना और देव दर्शन भी अनावश्यक हैं। विना जिन देवका और अष्ट द्रव्य का अवलंबन लिये चंचल मन की प्रवृत्ति आत्मविशुद्धि में कैसे सहायक हो सकती है ? कभी नहीं हो सकती है। जिनेन्द्र देव की परमवीतरागशांत मुद्रा और भक्ति पूर्ण अष्ट द्रव्य पूजन ही आत्मा के भावों में सम्यग्दर्शन उत्पन्न कर सकती है। जो जिनेन्द्र देव के दर्शन और पूजा नहीं करता है उसे मिथ्यादृष्टि शास्त्रों में बताया गया है। "दाणं पूजा मुक्खो सावय धम्मोहि,, अर्थात् मुनियों को दान देना और जिनेन्द्र पूजा करना श्रावक धर्म है यह कुंदकुंद स्वामी का वचन है।

गृहस्थ श्रावक के लिये अष्ट द्रव्य से पूजन करने का विधान कुंदकुंद स्वामी, समन्तभद्र, जिनसेन, सोमदेव, अकलंक देव पूज्यपाद, पद्मनंदि धरषेण भूत बलि पुष्पदंत आदि सभी आचार्यों ने बताया है। यदि प्रमाण दिये जांय तो पचासों पृष्ठ लिखे जांयगे। संस्कृत पूजन पाठ और हिंदी पूजनपाठ सबों के सामने हैं और सभी जिनेन्द्र भक्त श्रावक उन्हें करते हैं। पं० प्रवर आशाधरजी ने नित्य पूजन, चतुर्मुख पूजन, मुकुट वद्ध राजाओं द्वारा पूजन चक्रवर्ती द्वारा की जाने वाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजन, इंद्रध्वज पूजन आदि पूजनों में अष्ट द्रव्य का ही विभूति पूर्ण विधान बताया है। अत्यंत खेद की बात है कि पं० फूलचदजी शास्त्री द्रव्य पूजा को धर्म विरुद्ध बताकर उसका निषेध करते हैं ? मुनियों के पास द्रव्य नहीं है और वे किसी से द्रव्य की चाहना भी नहीं कर सकते हैं इसलिये वे भी भावों में अष्ट द्रव्य की कल्पना करके भावात्मक अष्ट द्रव्य से जिन पूजन करते हैं जैसी कि सिद्ध पूजा है–

नवग्रह पूजा का भी विरोध

पं० फूलचंदजी शास्त्री ने नवग्रह पूजन को भी देव मूढता मिथ्यात्व बताया है। उनकी पंक्तियां इस प्रकार हैं–

"जैन परंपरा में इस मूढता ने अनेक प्रकार से अपना अड्डा जमा लिया है नवग्रह की पूजा यहां होने लगी है। शासन देवता की स्थापना और मान्यता यहां की जाती है,,

(पंचाध्यायी की उक्त शास्त्री कृत हिंदी टीका पेज २४८)

उक्त पं० जी नवग्रह पूजा को देव मूढ़ता और मिथ्यात्व बताते हैं जैसी कि उनकी आगे की पक्ति हैं—

"यदि सच कहा जाय तो वर्तमान में सर्वत्र सकाम पूजा का ही बोलवाला है और जिनकी ऐसी पूजा में श्रद्धा नहीं है या इसे मिथ्वात्व मानते हैं उसका परिहास किया जाने लगा है।"

(उनकी हिन्दी टीका पेज २४८)

पंचाध्यायी ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन के प्रकरण में देव मूढ़ता गुरु मूढ़ता का कथन है। पंचाध्यायी के श्लोक ६०० और ६०१ हैं। उसमें नवग्रह पूजन का नाम और उल्लेख या उसका निषेध कुछ नहीं है। पं० फूलचन्द जी ने अपने उत्सूत्र स्तवन्त्र मन्तव्य अपनी हिन्दी टीका में भर दिये हैं। ऐसी दशा में पंचाध्यायी की उनकी लिखी टीका किस प्रकार ग्रन्थानुकूल मानी जाय ? या प्रमाण मानी जाय ?

नवग्रह पूजन में नवग्रहों की शान्ति के लिए जिनेन्द्र भगवानों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की पूजा का विधान है। क्या पं० फूलचन्द जी सूर्यचन्द्र मंगल बुध वृहस्पति शुक्र शनि राहु केतु इन जन्म कुण्डली में पड़े हुए ग्रहों के फलों को भी मानते हैं या नहीं ? जो ज्योतिष शास्त्रानुसार फल देते हैं। उन नवग्रहों की शान्ति के लिए जनहित के लिए शास्त्रकारों ने जिनेन्द्र देवों की पूजा लिखी है। सूर्य ग्रह अरिष्ट निवारक पद्मप्रभ की पूजा की जाती है। चन्द्र ग्रह अरिष्ट निवारक चन्द्रप्रभ की पूजा की जाती है इसी प्रकार मंगल ग्रह की शान्ति के लिए पद्मप्रभ बुधग्रह की शान्ति के लिए विमलनाथ अनन्तनाथ धर्मनाथ शान्तिनाथ कुंथुनाथ अरहनाथ, नमिनाथ, वर्धमान इन आठ भगवानों की पूजा की जाती है। वृहस्पति गृह की शान्ति के लिए ऋषभ अजित संभव अभिनन्दन सुमति सुपार्श्व शीतल श्रैयान् इन आठ भगवानों की पूजा की जाती है। शुक की शान्ति के लिए पुष्प दन्त की, शनि की शान्ति के लिए मुनि सुव्रत भगवान की, राहु की शान्ति के लिए नेमिनाथ की, केतु की शान्ति के लिए मल्लिनाथ भगवान की पूजा की जाती है।

इन जिनेन्द्र पूजनों में भी उक्त पं० जी को मिथ्यात्व और मूढ़ता दीख रही है। आश्चर्य की वात है। गृहस्थ अपने संकट और आपत्तियों को दूर करने के लिए कामना करता है और जिनेन्द्र भगवान की भक्ति श्रद्धा पूर्वक पूजन करता है इसे मिथ्यात्व बताना ही वास्तव में मिथ्यात्व है। वादिराज, समन्तभद्र मानतुंग आदि महर्षियों पर भी आपत्तियां आईं थीं उन्हें उन्होंने जिनेन्द्र भक्ति से रचे हुए स्तोत्रों से ही दूर किया था। गृहस्थ यदि मिथ्यादृष्टि देवता दुर्गा भवानी आदि की पूजा करके संकट दूर करना चाहता है तब तो कुदेवाराधना रूप मिथ्यात्व है परन्तु जिनेन्द्र देव की पूजा में पूर्ण श्रद्धा और भक्ति करता है उसे भी मिथ्यात्व समझना अविचारित रम्य है।

इसी प्रकार ऋषि मण्डल पूजा ऋषि मण्डल यन्त्र पूजा ऋषि मण्डल स्तोत्र आदि भी संकट दूर करने के लिए किये जाते हैं जिनमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महान् ऋषियों की भक्ति श्रद्धा की जाती है वह भी उक्त पंडित जी की दृष्टि में मिथ्यात्व है। प्रति दिन पूजन के प्रारम्भ में 'स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः" इस उच्चारण के साथ महान् ऋद्धिधारियों मुनीश्वरों से स्वस्ति (मंगल) कामना की जाती है वह सब उनकी समझ से मिथ्यात्व ही होगा ऐसी बातों पर अधिक लिखना व्यर्थ है।

श्री पं० फूलचन्द जी शास्त्री ने पंचाध्यायी की हिन्दी टीका लिखकर जैनाचार्यों द्वारा प्रदर्शित विधान का ही विरोध किया है। और समस्त धार्मिक क्रिया काण्ड का भी विरोध कर अपने स्वतन्त्र मन्तव्यों को हिन्दी टीका में रख दिया है।

सकाम पूजा का बोलबाला कहाँ है ?

पं० फूलचन्द जी ने भगवान की पूजा को सकाम पूजा का बोलबाला और उसे मिथ्यात्व बताया है। सर्वत्र दि० जैन समाज मोक्ष की अभिलाषा से ही भक्ति में तन्मय होकर भगवान की पूजा करता है। और अष्ट द्रव्यों में भी जन्मजरा मृत्यु के विनाश के लिए जलधारा देता है काम वासना को दूर करने के लिए पुष्प चढ़ाता है। क्षुधा दूर करने के लिए नैवेद्य, अज्ञान को दूर करने के लिए दीप अष्ट कर्म नष्ट करने के लिए धूप मोक्ष फल प्राप्ति के लिए फल चढ़ाता है इन द्रव्यों के पाठ को बोलते हुए उन्हीं सब बातों को चाहता है जो ऊपर बताई गई हैं। इनमें सकाम पूजा (सांसारिक प्रयोजन की चाहना) न तो उन पद्यों में है और न पुजारी की वैसी भावना है और न वैसे संस्कार हैं। यदि कोई श्रावक आपत्तियों को तथा विघ्न बाधाओं को दूर करना चाहता है और आकुलित एवं अशांत कारणों को दूर कर शांत एवं निराकुल बनकर धर्म साधन करना चाहता है। उस प्रयोजन की सिद्धि के लिए पूर्ण श्रद्धा भक्ति से भगवान की पूजा करता है तो भी उस पूजा में मिथ्यात्व नहीं है। क्योंकि मिथ्या देवों को पूजा को वह स्वयं मिथ्यात्व समझता है। अपने प्रयोजन के लिए भी भगवान की पूजा में ही दृढ़ता एवं विश्वास रखता है। घर से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाहर जाते समय णमोकार मंत्र का जपन गृहस्थ करता है। भगवान के दर्शन करके ही जाने में निर्विघ्न कार्य सफलता की भावना करता है।

भगवान की पूजा परम्परा मोक्ष साधक है ऐसा सभी शास्त्र बताते हैं। ऐसी धार्मिक क्रियाओं का भी विरोध पं० फूलचन्द जी शास्त्री करते हैं और ऐसी धर्म विपरीत बातें पंचाध्यायी ग्रन्थ की टीका में लिखते हैं।

पं० फूलचन्द जी सिद्धान्त शास्त्री की इस प्रकार की निरर्गल विचारधारा को समय की बलिहारी के सिवा और क्या कहा जाय? केवल लौकिक प्रयोजन के लिए धर्म तत्व और आत्म हित के विपरीत दिशा में जाना स्व-पर बंचना है।

शासन देवों की मान्यता का विरोध

शासन देवों की मान्यता में भी पं० जी को मिथ्यात्व दीख रहा है। जैसा कि उन्होंने लिखा है—

"शासन देवता की स्थापना और मान्यता यहां की जाती है जो इसे मिथ्यात्व मानते हैं उनका परिहास किया जाता है।"

(उनकी पंचाध्यायी हिन्दी टीका का पेज २४८)

शासन देवों के सम्बन्ध में हम इतना स्पष्ट कर देना पर्याप्त समझते हैं कि वे सम्यग्दृष्टि हैं। चतुर्थ गुण स्थानवर्ती अविरत सम्यग्दृष्टि हैं। उनकी अष्ट द्रव्य से जिनेन्द्र पूजन के समान पूजा नहीं की जाती है किन्तु वे जिनेन्द्र भगवान के श्रद्धालु सेवक हैं एवं अहोरात्र भगवान की आराधना एवं भक्ति करने वाले है इसीलिये उन्हें साधर्मी समझ कर उनका अर्ध्य देकर उनका सत्कार किया जाता है।

धर्म कार्यों में प्रतिष्ठा आदि महोत्सवों में दशदिकपाल देवों की स्थापना की जाती है अर्थात् उन्हें आदर पूर्वक बुलाया जाता है। यह विधान सभी प्रतिष्ठा पाठों में है। उसका भी कारण यह है कि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बड़े-बड़े धार्मिक कार्यों में मिथ्यादृष्टि देवी देवताओं द्वारा विघ्न आ सकते हैं उन्हें सम्यग्दृष्टि देव (शासन देव) ही दूर करने में समर्थ हैं। उदाहरण यह है दक्षिण में एक नगर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा हो रही थी उसके दीक्षा कल्याण के समय मेघ की भारी घटा उठी और बादल बड़े जोर से गड़-गड़ाने लगा। सबों को यह आभास हो गया कि जोर का पानी और ओले पड़ने वाले हैं। उसी समय विद्वान् एवं संयमी प्रतिष्ठाचार्य ने कार्य को रुकवाकर एक घण्टा तक एकांत में जाप्य किया। शासन देवों का स्मरण किया, उसका फल यह हुआ कि प्रतिष्ठा के क्षेत्र में पानी ओले नहीं पड़े किन्तु आधा मील के वाहर पानी ओले बहुत ज्यादा पड़े। अकलंक देव ने बौद्ध गुरुओं के साथ ६ माह तक शास्त्रार्थ किया परन्तु विजय नहीं हो रही थी तब उन्हें चिंता हुई। रात्रि में उन्हें स्वप्न में शासन देवता ने कहा कि शास्त्रार्थ बौद्ध गुरु नहीं कर रहा हैं किंतु पट के भीतर तारा देवी (मिथ्यादृष्टि देवता) की स्थापना की गई है वही देवता शास्त्रार्थ कर रही है। घट में स्थापना है पट उठा कर घट को लात मार कर फोड़ दो वह भाग जायगी। प्रातः श्री अकलंक देव ने ऐसा ही किया फिर बौद्ध गुरु को शास्त्रार्थ में परास्त होना पड़ा जैन धर्म की विजय हुई।

आचार्य समन्तभद्र को राजा शिव कोटि ने आज्ञा दी कि यातो हमारे देव को नमस्कार करो या तुम्हारा तलवार से शिर अलग कर दिया जायगा। उस समय समन्तभद्र स्वामी ने ज्वाला मालिनी देवी का स्मरण किया। वह आगई उस देवी ने अपने आराध्य देव भगवान चन्द्रप्रभ को रत्न जड़ित सिंहासन रचकर उस पर बिराजमान कर दिया, स्वामी समंतभद्र ने वृहत्स्वयंमूस्तोत्र रच कर चौबीसों भगवानों की महान् स्तुति की। चन्द्रप्रभ की स्तुति में उन्होंने अपनी संकट जन्य दशा का उल्लेख इस प्रकार किया है—

यः सर्वं लोके पपमेष्ठितायाः पदं वभूवाम्दुत कर्म तेजाः
अनन्त धामाक्षर विश्व चक्षुः समन्त दुःख क्षय शाशनश्च

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् हे भगवान् ! आप सर्व लोक में परमेष्ठी पदधारी आप ही हो आपका अद्भुत तेज है अविनश्वर अनन्त धाम (मोक्ष) वाले हो, जगत् के नेत्र हो समंतभद्र के दुःख का क्षय करने वाला आपका शासन है। उसी समय समंतभद्र ने अपना मस्तक भगवान के चरणों में रख कर उन्हें नमस्कार किया। चन्द्रप्रभ भगवान की प्रतिमा प्रगट होते ही समंतभद्र स्वामी ने इस श्लोक को पढ़ते हुए भगवान को मस्तक झुका कर नमस्कार किया–चन्द्र प्रभं चद्रं मरीचि गोर चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कांतं वन्दे भिबंद्यं महता मृषीन्द्रं जिनं जितः स्वान्त कषायवन्धम्। यह सब भगवान की अटल श्रद्धा और भक्ति का ही फल है। भगवान तो वीतराग हैं वे तो कुछ करते नहीं हैं किन्तु उनकी दृढ़ भक्ति देख कर शासन देव भक्त की भावना को सफल बना देते हैं।

आचार्य पात्र केसरी (विद्यानंदि स्वामी) कट्टर वैष्णव जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे। परन्तु पद्मावती देवी ने स्वप्न में उनसे कहा कि प्रातः जिनं मन्दिर में जाकर भगवान पार्श्वनाथ की भक्ति करो उनके फण पर दो श्लोक लिखे मिलेंगे उनसे आपकी हेतुवाद सम्बन्धी शंका दूर हो जायगी। विद्यानंदि महाराज ने पार्श्वनाथ के दर्शन कर के उनके फण पर लिखे दो श्लोकों को पढ़ा तभी उनकी शंका दूर हो गई वे श्लोक ये हैं—

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्रयेण वा
नान्यथानुपपन्नवत्वं यत्र किं तत्रयेणवा
अन्यथानुप पन्नत्वं यत्र किं तत्र पञ्चभिः
नान्यथानुप पन्नत्वं यत्र किं तत्र पंचभिः (आप्तमीमांसा)

इन श्लोकों का हेतु साध्य से सम्बन्ध है कठिन है और विस्तार से लिखा जायगा तभी समझ में आ सकेगा इसलिये अर्थ नहीं किया गया है। फल यह हुआ कि विद्यानंदि आचार्य बने उन्होंने अष्ट सह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्री श्लोक वार्तिक जैसे महान् गंभीर एवं कठिन ग्रन्थों की रचना की यह सब जिनेन्द्र स्तवन-(आत्म मीमांसा) सुनने एवं पद्मावती देवी के द्वारा सम्बोधित करने का ही परिणाम है।

कुन्दकुन्द स्वामी जब गिरनारि की यात्रा को गये थे वहां पर श्वेताम्बर साधुओं के साथ विवाद हो गया था। तब भगवत्कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा कि यह अंबिका देवी (पाषाण मूर्ति) जो कहदे वही प्रमाण माना जाय। उसी समय अंबिकादेवी ने कहा-आदि दिगम्बर आदि दिगम्बर, आदि दिगम्बर तीन वार कहने पर दिगम्बर धर्म की विजय विपक्ष को स्वीकार करनी पड़ी।

कविवर विन्द्रावनदास जी ने गुरु अष्ठक में कहा है—

संघ सहित श्री कुन्दकुन्द गुरु बंदन हेतु गये गिरनारि
बाद परो तंह संशय मतिसों साक्षी वदी अंबिकाकार
सत्य पंथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर कही सुरी तहं प्रगट पुकारि
सो गुरु देव बसौ उर मेरे विघन हरण मंगल करतार

धर्म द्रोह के कारण राजा ने आचार्य माततुंग को जब ४८ कोठों के भीतर बन्द कर दिया था, ताले लगवा दिये थे। तब आचार्य महाराज ने भक्तामर स्त्रोत्र की रचना करके ४८ श्लोकों में भगवान आदि नाथ की स्तुति की। उसी दृढ़ भक्ति से प्रेरित हो कर भगवान आदि नाथ की आराधिका चक्रेश्वरीदेवी ने ४८ तालों को तोड़ कर आचार्य मानतुंग को वाहर लादिया उसके प्रभाव से जैन धर्म एवं दिगम्बर गुरुओं का सर्वोपरि महत्व हुआ। यह सब धर्म प्रभावक अतिशय शासन देवों द्वारा हुआ है।

कविवर ने कहा है—

श्रीमत मानतुंग मुनिवर पर भूप कोप जब कियो गंवार
बंद कियो ताले में तब ही भक्तामर गुरु रच्यौ उदार
चक्रेश्वरी प्रगट तहं होकर बंधन काट दियो जयकार
सो गुरु देव बसौ उर मेरे विघन हरण मंगल करतार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महासती सीता जव अग्नि कुण्ड में भगवान का स्मरण कर कूदने को तैयार हुई उसी समय शासनदेव ने आकर अग्नि के स्थान में सरोवर कमलों की सुगन्धि से विभूषित तुरन्त बनादिया और सती सीता के उज्वलशील धर्म का माहात्म्य इतिहास में अंकित कर दिया। इसी प्रकार रयण मंजूषा के (श्रीपाल कोठीभट की महाराणी) शील की सुरक्षा शासनदेवी ने तुरन्त की। धवल सेठ को उस महा सती के चरणों में ला दिया। प्रथमानुयोग शास्त्रों के पढ़ने से हजारों कथाऐं ऐसी मिलेंगी जिनमें देवों ने सहायता की है और और धर्म की प्रभावना बढ़ाई है।

भगवान आदिनाथ जव दीक्षा धारण कर छह माह के लिये ध्यानस्थ होगये तब उनके भानजे नमि विनमि दौनों भगवान के दौनों ओर उनके चरणों को पकड़ कर बैठ गये और कहने लगे कि हम को आप कुछ नहीं देकर जंगल में आगये हो जव तक आप हमें कोई विभूति नहीं देंगे तब तक आपके चरणों को नहीं छोड़ेंगे बैठे ही रहेंगे। उनकी अटूट अपार भक्ति को देख कर इन्द्र की आज्ञा से शासनदेव ने तुरन्त नमि और विनमि से कहा कि भगवान की आज्ञा से तुम दौनों को विजयार्थ की दक्षिण श्रेणी और उत्तर श्रेणी का राज्य दिया जाता है। विद्याधरों पर शासन करते रहो, दोनों ही प्रसन्न हो कर भववान की भक्ति कर चले गये।

यद्यपि ये सब कार्य जिनेन्द्र भगवान की दृढ़ भक्ति के ही परि-चायक हैं परन्तु शासनदेवों द्वारा ही धर्म की रक्षा और धर्म की प्रभावना के लिये किये जाते हैं।

चौबीस तीर्थंकरों के सेवक चौबीस यक्ष चौबीस यक्षिणी होती हैं। वे सब सम्यग्दृष्टि हैं। पद्मावती देवी भगवान पार्श्वनाथ को अपने सिर पर विठाये हुए हैं। सदैव धर्म कार्यों में सहायक बनती हैं वह सम्यग्दृष्टि है। इसी प्रकार तीर्थंकर की माता की सेवा करने वाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवियाँ भी सम्यग्दृष्टि होती हैं।

संस्कृत मंगलाष्टक

संस्कृत में मंगलाष्टक जिनवाणी संग्रह में छपा है उस मंगलाष्टक में पंचपरमेष्टी, चौवीस तीर्थंकर सिद्ध क्षेत्र त्रेसठ शलाका पुरुष आदि मंगलमयों से मंगलकामना की गई है उसी मंगलाष्टक में ऋद्धिधारी मुनीश्वरों से भी मंगलकामना की गई है। उसी में यह श्लोक भी है–

देव्याष्टौच जयादिका द्विगुणिता विद्यादिका देवता:
श्री तीर्थंकर मातृकाश्च जनका: यक्षाश्च यक्ष्यस्तथा
द्वात्रिशंत्रिदशाधिपास्थिति सुरा: दिक्कन्यकाश्चाष्टधा
दिक् पाला दश चैत्यमी सुरगणा: कुर्वन्तु ते मङ्गलम्

यह प्राचीन संस्कृत मंगलाष्टक है। इस ऊपर के श्लोक में जयाविजया आदि आठ देवियाँ, विद्यादिक देवता, तीर्थंकरों की माताएं और उनके पिता यक्ष यक्षिणी बत्तीस इंद्र आठ दिक्कन्यकाएं और भी देवगण सवों से मंगलकामना की गई है। ये सभी सम्यग्दृष्टि हैं।

हमारे शास्त्र भंडार में बहुत प्राचीन गुटका है उसमें विद्यानुशासन ग्रन्थ भी है उसमें पद्मावतीदेवी जयाविजया आदि देवियों तथा दशदिकपाल आदि देवों को सम्यग्दृष्टि बताया गया है। उनके मंत्रजाप्य भी हैं। ऐसे मंत्रों को कैसा पुरुष जपने का अधिकारी है उसका निर्देश इस प्रकार है–

भवतेऽस्माभिर्दत्तो मंत्रोयं गुरु परंपरायात:
साक्षीकृत्य हुताशनरविशशि तारांवराद्रि गणान्
किन्तु भवतापि न दातव्यं सम्यग्दृष्टि वर्जिताय पुरुषाय
किंतु गुरु देव समयेभक्तिमते गुण समेताय

अर्थात् पद्मावती आदि के मन्त्रों को जो गुरुओं की परंपरा से चले आये हैं ऐसे पुरुष को देना चाहिये जो देव शास्त्र गुरु का भक्त हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो सम्यग्दृष्टि हो। जो सम्यग्दृष्टि नहीं है उस पुरुष को ये मंत्र नहीं देना चाहिये। अग्नि सूर्य चन्द्रमा आदि की साक्षी से मिथ्या दृष्टि पुरुष को कदापि नहीं देना चाहिये। किंतु देव शास्त्र गुरु में पूर्ण भक्ति रखने वाले सद्गुण सहित पुरुष को ही देना चाहिये। आगे और भी श्लोकों द्वारा सम्यग्दृष्टि देव देवियों के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है।

जो ऐसी प्रतिज्ञा कराते हैं वे क्या मिथ्या दृष्टि देव देत्रियों को मान्यता कभी दे सकते हैं? कभी नहीं।

पंच कल्याणक प्रतिष्ठा पाठों के अनुसार प्रतिष्ठाचार्य महान् धर्म कार्यों में संभावित विघ्नों की शान्ति के लिए मिथ्या देवों की स्थापना कभी करेंगे क्या? अतः शास्त्रानुसार यह सिद्ध है कि पद्मावती ज्यालामालिनी चक्रेश्वरी आदि शासन देव देवियां सम्यग्दृष्टि हैं और भगवान के शासन की रक्षा करते हैं प्रभावना करते हैं। धर्म की विजय कराते हैं। और धर्म पर आने वाले संकटों को तथा धर्मात्माओं पर आने वाली आपत्तियों को दूर करते हैं। पूज्य भट्टारकों ने यवन बादशाहों से अपने मन्त्रों द्वारा धार्मिक विजय पाई थी, इतिहास इसका साक्षी है। दिल्ली के बादशाह ने जैनियों को वाध्य किया था कि या तो अपने धर्म का प्रभाव पूर्ण चमत्कार बताओ या यवन (मुसलमान) बनो। ऐसी भारी भयंकर आपत्ति में दिल्ली के जैनियों ने दक्षिण में जाकर भट्टारक महाराज की शरण ली। समय एक दिन का ही बाकी रहा था भट्टारक जी ने मन्त्र विद्या के बल से दक्षिण से दिल्ली में एक रात में ही जैनियों को उपस्थित कर दिया। वादशाह के दरवार में जब श्री भट्टारक जी पधारे तब उनके कमंडल में मंत्रवादी मौलवी ने मछली पैदा करदी और बादशाह से कहा कि देखो जैन साधु कमण्डल में मछली रखते हैं। उसी समय भट्टारक जी ने दिखा दिया कि कमण्डल में मछली नहीं है किन्तु सुगन्धित पुष्प

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। दरबार में यह पूछने पर कि आज कौन तिथि है। भट्टारक जी के शिष्य के मुंह से निकल गया कि आज पूर्णिमा है किन्तु उस दिन अमावस्या थी। दरबार में उपस्थित जन समूह हसने लगा तब भट्टारक जी ने एक चांदी की थाली पर केसर से मंत्र लिखकर आकाश में उसे फेंक दिया। रात भर वह थाली पूर्ण चन्द्रमा के रूप में सबों को दीख रही थी उन्होंने पूर्णिमा समझीं।

जिस दिन बादशाह की सवारी बाजार से निकली उसी दिन उसी बाजार से दूसरी ओर से भट्टारक जी की पालकी निकली। बादशाह ने आज्ञा दी कि सामने की सवारी को लौट जाने को कहदो उसी समय भट्टारक जी ने कहारों मे कहा कि तुम लोग पालकी छोड़ दो वे हट गये पालकी बिना आदमियों के कन्धा लगाये स्वयं आकाश में बादशाह के ऊपर से निकल गई। इन चमत्कारों को देखकर बादशाह ने जैनियों का बहुत सत्कार किया और पूज्य भट्टारक जी से क्षमा मांगते हुए धार्मिक संरक्षण के लिए सनद (प्रतिज्ञा पत्र) दी। अजमेर की प्रसिद्ध दरगाह (मसजिद) के सामने से जैनियों के रथ (भगवान की यात्रा) को मौलवियों ने नहीं जाने दिया तब भट्टारक जी के चमत्कार से मौलवी नत मस्तक हो गये, रथ वहीं से निकलने लगा यह सब शासन देवों के द्वारा होने वाले कार्य हैं।

परम पूज्य श्री १०८ आचार्य महावीर कीर्ति महाराज पद्मावती का आदर करते थे। आचार्य महाराज महान् विद्वान् महान् तपस्वी महान् आगमनिष्ठ निरपेक्ष साधु थे। धर्म की रक्षा एवं धर्म की प्रभावना शासन देवों द्वारा विशेष रूप से होती है। इसी धार्मिक वात्सल्य से पद्मावती क्षेत्रपाल आदि के शिर पर पीछी रखकर उन्हें आशीर्वाद देते थे।

शासन देवों की सर्वत्र मान्यता

दक्षिण में सर्वत्र मन्दिरों में पद्मावती क्षेत्रपाल की मूर्तियां हैं। हुमच (मैसूर) में तो पद्मावती के चमत्कार से प्रभावपूर्ण कार्य होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देहली के लाल मन्दिर में, जवलपुर, सिवनी, नागपुर के प्रसिद्ध मंदिरों में पद्मावती क्षेत्रपाल है। श्री महावीर जी पद्मपुरी आदि अतिशय क्षेत्रों में भी हैं। जयपुर आदि नगरों में भी हैं। परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी से लेकर सभी आचार्यों ने शासन देवों की मान्यता का विरोध नहीं किया है। पुरातन आचार्य परंपरा में पद्मावती क्षेत्रपाल आदि शासन देवों का कहीं किसी शास्त्र में विरोध नहीं है।

मिथ्यात्व ग्रसित कौन है ?

पद्मावती क्षेत्रपाल आदि शासन देवों को जो कोई भगवान अर्हंत के समान मानकर उनकी पूजा करता है वह मिथ्यात्व ग्रसित है। कहां वीतराग सर्वज्ञ अर्हंत भगवान और कहां अविरत सम्यग्दृष्टि शासन देव। आकाश पाताल जैसा भेद है। इसी प्रकार जो उन धर्म रक्षक जिनेन्द्र भक्त सम्यग्दृष्टि शासन देवों को मिथ्यादृष्टि समझते हैं और उनका आदर सत्कार नहीं करके उनका तिरस्कार करते हैं वे भी मिथ्यात्व ग्रसित हैं।

राजा और भृत्य के समान अर्ध्यदान

जिस प्रकार हमारे घर पर एक राजा आता है तो उसके लिए अनेक सुन्दर सुरुचिकर व्यंजन (भोजन) हम तैयार करते हैं और बड़े आदर से उस राजा को परोसते हैं। उन्हीं व्यंजनों में से राजा के साथ आये हुए उसके सेवक भृत्य को भी परोसते हैं। परन्तु दृष्टि भेद है राजा का आदर सत्कार राजा समझ कर किया जाता है। और उसके सेवक का आदर सेवक समझ कर किया जाता है। ठीक यही दृष्टान्त यहां लागू होता है जिनेन्द्र भगवान की पूजा बड़ी श्रद्धा भक्ति से अष्ट द्रव्य से की जाती है और पद्मावती क्षेत्रपाल आदि शासन देवों की पूजा नहीं की जाती है किन्तु जिनेन्द्र भक्त सम्यग्दृष्टि भगवान के चरण सरण में रहने वाले उनके सेवक समझकर शासन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देवों को उसी अष्ट द्रव्य में से अर्घ्य दिया जाता है। यही साधर्मी वात्सल्य एवं धर्मोपकार का आदर है यही बात पूजन के अन्त में विसर्जन में कही गई है।

आहूता ये पुरा देवाः लब्धभागा यथा क्रमम्
ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यान्तु यथा स्थितिम्

इसी विसर्जन पाठ का हिन्दी में अनुवाद यह है—

आये जो जो देव गण पूजे भक्ति प्रमाण
सो अब जावो कृपा कर अपने अपने थान

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान का पूजन करते समय जिन शासन देवों को हमने बुलाया है और जिनके सत्कार में अष्ट द्रव्य में से एक भाग दिया है वे शासन देव अब कृपा कर अपने अपने स्थान को चले जाइये।

इस श्लोक से ऊपर के श्लोक– ज्ञान तोऽज्ञान तो वापि आदि जिनेन्द्र देव की भक्ति में कहे गये हैं। भगवान को तो हृदय में हमने विराजमान किया है। किन्तु शासन देवों को अपने अपने स्थान पर जाने के लिए कहा है।

शासन देवों की मान्यता में आचार्यों के प्रमाण

अभिषेक पाठ संग्रह ग्रन्थ वीर सं० २४६२ में सेठ वनजीलाल ठोलिया दि० जैन ग्रन्थ माला समिति की ओर से छपा है उसमें अनेक आचार्यों द्वारा रचित पंचामृताभिषेक पाठों का संग्रह है। कुल १५ अभिषेक पाठों का संग्रह है। संस्कृत के कुछ पाठ पांचवीं शताब्दि से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक के हैं। जिन आचार्यों ने इन महाभिषेक पाठों को रचा है उन आचार्यों में कुछ नाम इस प्रकार हैं-

आचार्य पूज्य पाद स्वामी, भगवद्गुणभद्राचार्य, आचार्य सोम देव सूरि, भगवत् अभयनन्द सूरि, आचार्य इन्द्रनन्दि, आचार्य सकल कीर्ति, आचार्य देवसेन, आचार्य जिनसेन, आचार्य बसुनन्दि, आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन सभी प्रसिद्ध पूर्वाचार्यों ने अपने अपने पंचामृताभिषेक पाठों में शासन देवों का आव्हान एवं अर्ध्यदान का विधानकिया है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने लिखा है–

पूर्वाशा देशहव्यासन महिषगते नैऋते पाशपाणे वायो यक्षेन्द्र चन्द्राभरण फणिपते रोहिणी जीवितेश सर्वे प्यायात यानायुध युवति जनैः साधमों भूभुर्वःस्वः स्वाहा गृहणीत चार्घ्यं चरुममृतमिदं स्वस्तिकं यज्ञभागे।

(महाभिषेक पाठ पृ० ५ श्लोक ११)

इस श्लोक के नीचे लिखा है—

ॐ ह्रीं क्रों प्रशस्त वर्णासर्वं लक्षण सम्पूर्ण स्वायुधवाहन वधू चिन्ह सपरिवारा इन्द्राग्नियमन्नैक्रत वरुण वाहन कुवेरैशानधरणेंद्र सोम नाम दशलोकपालाः आगच्छत आगच्छत संवौषट्, स्वस्थाने तिष्ठत तिष्ठत ठः ठः, ममात्र सन्निहिताः भवत भवत वषट् इदमर्घ्यं पाद्यं गृहीध्वं गृहीध्वं ॐ भूर्भुवः स्वः स्वाहा स्वधा

इन मंत्रों से यह भी परिचय हो जाता है इन शासन देवों को यथा स्थान में बिठाया गया है और मेरे निकट बैठो ऐसा भी कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि उन्हें अविरत सम्यग्दृष्टि देव माना गया है। भगवान के परम सेवक माना गया है। तभी तो अपने पास बैठने को कहा गया हैं। इसी प्रकार सभी आचार्यों ने शासन देवों को महाभिषेक विधि में बुलाकर उनका सत्कार किया है। किसी भी आचार्य प्रणीत शास्त्र में शासन देवों का निषेध या उन्हें मिथ्यादृष्टि नहीं लिखा है।

आचार्य गुणभद्र भदन्त प्रणीत वृहत्स्नपन में लिखा है–

स्फूर्जत्पवित्र प्रहरणं रमणी समेतं इंद्रं जिनेंद्र सवने हमिहाह्वयामि

ॐ इंद्र आगच्छ आगच्छ इंद्राय स्वाहा, इंद्रपरिजनाय स्वाहा इंद्रानुचराय स्वाहा, इंद्रमहत्तराय स्वाहा, अग्नये स्वाहा, अनिलाय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, सोमाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा, ओं स्वाहा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भू-स्वाहा, भुवः स्वाहा स्व स्वाहा ओंभूर्भुवः स्वः स्वधा स्वाहा ॐ इंद्र देवाय स्वगणपरिवृताय इदमर्घ्यं पाद्यं गंधं पुष्पं दीपं धूपं चरुं वलि फलं स्वस्तिक मक्षतं यज्ञभागं च यजामहे प्रतिगृह्यतां प्रतिगृह्यतां प्रति गृह्यतामिति स्वाहा।

इसी प्रकार भिन्न भिन्न आचार्यों द्वारा प्रणीत महाभिषेक विधान में शासन देवों का आह्वान किया गया है और उन्हें यज्ञ भाग दिया गया है।

अतः पूर्वाचार्यों के पाठों से स्पष्ट सिद्ध है कि ये शासन देव सम्यग्दृष्टि हैं और जिनेंद्र देव के परमाराधक हैं धर्म रक्षणं में धर्म कार्यों में आने वाली विघ्नवाधाओं को दूर करने में सदैव तत्पर रहते हैं।

प्राचीन प्रतिमाओं के चरणों में यक्ष यक्षी

प्राचीन प्रतिमाओं के साथयक्ष यक्षी आदि देवगण पाये जाते हैं, सिद्ध क्षेत्रों और अतिशय क्षेत्रों में सर्वत्र प्राचीन प्रतिमाओं के साथ उनके चरण सान्निध्य में यक्ष यक्षिणी आदि देवताओं की मूर्तियां भी उकेरी हुई मिलती हैं। ये देव देवियां आभूषण पहने हुए हैं। पद्मावती देवी के सिर पर भगवान पार्श्वनाथ सदैव विराजमान रहते हैं। जो देव देवियां भगवान के चरण सानिध्य में भगवान की भक्ति में तत्पर रहते हैं उन्हें मिथ्यादृष्टि समझना ही मिथ्यात्व है। मिथ्यादृष्टि देव भगवान के चरणों में नहीं रह सकते हैं। अतः ये सब देव देवियां सम्यग्दृष्टि हैं।

व्यंतर देव भवन वासी देव और ज्योतिषी देव और देवियां उत्पत्ति के समय मिथ्यादृष्टि ही रहते हैं। सम्यग्दर्शन को साथ लेकर उक्त तीन प्रकार के देव देवियां उत्पन्न नहीं होते हैं परंतु उस पर्याय में उत्पन्न होने के बाद पर्याप्त होनेपर उनमें सम्यग्दर्शन भी प्रगट होजाता है, किन्ही में होता है किन्हीं मेंन हीं होता है, जिनमें सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है वे ही जिनेन्द्र भगवान के सेवक होते हैं। जो भगवान के सेवक हैं जो धर्म संकट को दूर करते हैं उन्हीं देव देवियों को शास्त्रकार पूर्वाचार्यों ने सम्यग्दृष्टि बताया है और उन्हीं का आदर सत्कार साधर्मी के नाते किया जाता है।

आचार्य समंतभद्र स्वामी ने देव मूढ़ता का निषेध करते हुए कहा है—

वपोपलिप्सयाशावान् राग द्वेष मलीमसा
देवता यदु पासीत देवतामूढमुच्यते
(रत्नकरंड श्रावकाचार)

मिथ्यात्वमोह-राग द्वेष से मलिन मिथ्यादृष्टि देवों की किसी वर (मनोरथ) की चाहना से

जो सेवा पूजा करता है वह देव मूढ़ता वाला मिथ्यादृष्टि है। इस श्लोक में राग द्वेष चारित्र मोहनीय संबधी नहीं लिया गया है। इसी के समर्थन में उन्होंने यह भी कहा है—

भयाशास्नेह लोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम्
प्रणामं विनयं चैव न कुर्युः शुद्धदृष्टयः (रत्नकरंड श्रा०)

अर्थ—भय से आशा से, स्नेह से लोभ से किसी भी स्वार्थ से सम्यग्दृष्टि, कुदेव कुशास्त्र और कुगुरु को प्रणाम विनय आदर नहीं करेगा। उन्हीं आचार्य समंतभद्र स्वामी ने चंद्रप्रभ भगवान की परमभक्त ज्वाला मालिनी देवी के द्वारा चंद्रप्रभ भगवान की प्रतिमा प्रगट कराकर महान् भयंकर धर्म संकट को दूर कराकर धर्म की भारी प्रभावना ही केवलनहीं कराई किंतु शिव कोटिराजा को जैन बनाने के साथ आचार्य पद तक प्राप्त करा दिया। पक्ष व्यामोह से शासन देवों का विरोध करना शास्त्र सम्मत नहीं है।

दिक्पाल देवों का आह्वानन

इन्द्राग्नि दंड धर नैऋत पाशपाणि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वायूत्तरेश शशिमौलि कर्णींद्र चन्द्राः
आगत्य यूय मिह सानुचराः सचिन्हाः
स्वं-स्वं प्रतीच्छत वलिं जिनपाभिषेके

अर्थ—जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के प्रारम्भ में इन्द्र अग्नि दंडधर नैऋत आदि दश दिक्पाल देवों को बुलाया जाता है और कहा जाता है कि दश दिशाओं के देवगण आप अपने-अपने चिन्हों से सहित और और अपने-अपने अनुचरों को साथ लेकर आओ और जिनेन्द्र भगवान के अभिषेक के महान् महोत्सव में सामिल हो जाओ तथा भेट ग्रहण करो। ये दश दिक्पाल सम्यग्दृष्टि होते हैं। भगवान के परमभक्त होते हैं। इनका आह्वान निर्विघ्न धर्म महोत्सव के साधन के लिये किया जाता है।

यक्षादि देवों की मान्यता का और भी उल्लेख

आचार्य पद्मनंदि जिन्होंने सिद्ध पूजा रची है फल पूजा के समर्पण में लिखते हैं—

सिद्धासुराधि पति यक्ष नरेन्द्र चक्रैः ध्येयं सकलभव्यजनैः सुवंद्यं नारिंग पूग कदली फल नारि केलैः सोहं यजे वर फलैः वर सिद्ध चक्रम।

अर्थ—प्रसिद्ध असुरकुमार भवन वासी देवों के इन्द्र, यक्ष—व्यंतर देवों के इन्द्र और मनुष्यों के इन्द्र चक्रवर्ती आदि जिनका ध्यान करते हैं पूजते हैं। समस्त भव्य जन जिन्हें बड़ी भक्ति से बन्दना करते हैं उन सिद्ध परमेष्ठी भगवान की मैं नारंगी, सुपारी, केला और नारियल आदि फलों से पूजा करता हूं।

इस श्लोक से यह बात स्पष्ट होजाती है कि धरणेन्द्र और यक्ष आदि शासनदेव सम्यग्दृष्टि हैं वे ही भगवान की पूजा करते हैं मिथ्यादृष्टि देव तो भगवान दी पूजा करना तो दूर रहा उनकी पूजा में विघ्न डालते हैं। आचार्य पद्मनंदि ने उन यक्ष और धरणेन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि देवों का पूजा विधान में उल्लेख किया है यदि यक्षादि देव मिथ्यादृष्टि होते हैं तो ऐसे मिथ्यादृष्टि देवों का वे उल्लेख नहीं करते और न उनके द्वारा पूजा का उल्लेख करते।

यह भी समझ लेना चाहिये कि यक्षादि देवों में मिथ्यादृष्टि भी होते हैं और सम्यग्दृष्टि भी होते हैं।

और भी प्रमाण

नित्य पूजन में प्रति दिन यह पाठ बोला जाता है–

"इच्छामिभंते चेयभत्ते काओसग्गो कओ तस्सालोच्चे ओ अह लोय तिरियलोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमा क्रिट्टिमाणि जाणि जिणचेयाणि ताणि सव्वाणि तीसवि लोयेषु भवण वासिय वाणवितर जोयसिय कप्पवासित्तिय चहुव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं अज्जंति पुज्जंति वंदंति णमंसंति"

अर्थात् तीनों लोकों में जितने भी कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय हैं और चैत्य हैं उन सबों को तीनों लोकों में भवनवासी, व्यंतर देव ज्योतिषी देव कल्प वासी देव चारों प्रकार के देव अपने परिवार सहित दिव्य गंध, दिव्य पुष्प, दिव्य धूप, दिव्य चूर्ण आदि पदार्थों से नित्य पूजा करते हैं बन्दना करते और नमस्कार करते हैं।

इस कथन से यह बात भली भांति सिद्ध है कि भवन वासी व्यंतर ज्योतिषी और कल्पवासी देव कृत्रिम अकृत्रिम चैत्य चैत्यालयों की वंदना पूजा करते हैं इसलिये वे सम्यग्दृष्टि हैं। यदि सभी देव मिथ्या दृष्टि होते तो न तो वे भगवान की पूजा करते और न उन्हें नमस्कार करते। और न आचार्य उनका उल्लेख करते। अत: धरणेन्द्र यक्ष आदि जो सम्यग्दृष्टि होते हैं उन्हीं का आदर सत्कार और अर्घ्य दान किया जाता है। और धर्म कार्यों में कोई विघ्न वाधा नहीं आने पावे ऐसी सहायता की उनसे चाहना की जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन दर्शनाचार्य-श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ की पं० फूलचंदजी सिद्धांत शास्त्री
द्वारा बनाई गई पंचाध्यायी की हिंदी टीका में
मूलग्रन्थ का परिवर्तन तथा आगम विरुद्ध
उनके स्वतंत्र विचारों के कथन
का प्रतिवाद निरूपक

ग्यारहवां अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ बारहवां अध्याय

स्याद्वाद अथवा कथंचित् वाद के विषय
में जो भ्रम एवं विपरीत पद्धति का
प्रयोग किया जाता है तथा
व्यावहारिक कार्यों में स्याद्वाद
के नाम का सहारा लेकर उसका
दुरुपयोग किया जाता है
उन सब बातों का
समाधान
तथा
मिथ्या दर्शनों का समूह स्याद्वाद है ऐसी
समझ भी भूल भरी और मिथ्या है
स्याद्वाद केवल वस्तु स्वरूप है
इसी का निरूपण इस
अध्याय में है।

स्याद्वाद केवल द्रव्यस्वरूप का विधायक है

कथंचित् का प्रयोग व्यवहारी बातों में नहीं हो सकता है

(ध्यान पूर्वक पढ़िये)

जैन सिद्धांत में द्रव्य स्वरूप का निरूपण करने वाला स्याद्वाद ही एक अमोघ, अकाट्य एवं यथार्थता का द्योतक है। इसी एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्याद्वाद से सभी अन्य दर्शनों का द्रव्य स्वरूप मिथ्या कल्पित सिद्ध हो जाता है। अनेक जैन बन्धु भी एवं विद्वान् भी स्याद्वाद के स्वरूप के विषय में भ्रमशील हैं। वे स्याद्वाद अथवा कथचित् वाद का प्रयोग लौकिक व्यवहारी बातों में भी करते हैं। सभाओं में उपदेशों में प्रवचनों तक में यह कहा जाता है कि–जैन धर्म स्याद्वाद है इसलिये उसी के अनुसार सभी बातें बन जाती हैं।

जैसे–प्रातः प्रति दिन जिनेन्द्र भगवान का दर्शन करना आवश्यक है परन्तु यदि समय नहीं मिले तो प्रातः नहीं करके शाम को कर लेना चाहिये दिन में भोजन करने का विधान है परन्तु समय नहीं मिलने पर कभी रात्रि में भी भोजन करलेना चाहिये। क्योंकि जैन धर्म स्याद्वाद है इसलिये रात्रि में भोजन करने में कोई दोष नही है। पानी छान कर पीना चाहिये कभी बिना छाने पीने में भी कोई दोष नहीं है। इसी प्रकार मर्यादा पूर्वक शुद्ध वस्त्रों से भोजन करना चाहिये कभी बिना शुद्धता के भी करलेना चाहिये।

इसी स्याद्वाद के द्वारा समाज के विवाद एवं घरेलू झगड़े भी दूर करने का प्रयास किया जाता है। परन्तु यह सब पूरी अज्ञानता है और स्याद्वाद का पूरा दुरुपयोग है और वस्तु स्वरूप से सर्वथा विपरीत है।

कोई विद्वान् तो यहां तक कहते हैं कि जितने भी मिथ्या दर्शन (मिथ्या मत) हैं उन सबों का समूह ही अनेकान्त अथवा स्याद्वाद है। परन्तु ऐसा समझना नितान्त अज्ञानता है।

उपर्युक्त भ्रम का समाधान और स्याद्वाद का स्वरूप

स्याद्वाद कथंचित् अनेकांत, ये सभी एक अभिप्राय के सूचक हैं। स्याद्वाद केवल द्रव्य का स्वरूप द्योतक शब्द है। उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

द्रव्य का लक्षण सभी शास्त्रों में एक ही है वह यह है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"गुणपर्ययवद्द्रव्यम्" अर्थात् गुणों का और पर्यायों का समूह (पिंड) ही द्रव्य है। गुण पर्यायों से भिन्न कोई द्रव्य नहीं है। और द्रव्य से भिन्न कोई गुण पर्याय नहीं है। इस रूप में द्रव्य के दो अभिन्न अंश हैं एक गुणों का अंश दूसरा पर्यायों का अंश। गुण नित्य हैं, पर्यायें अनित्य हैं अतः दोनों का समूह द्रव्य कथंचित् नित्य हैं और कथंचित् अनित्य है। गुण सदैव रहते हैं अतः द्रव्य नित्य हैं। पर्यायें नष्ट हो जाती हैं अतः द्रव्य अनित्य है। गुणों का पिंड द्रव्य एक है और उत्पन्न तथा नष्ट होने वाली पर्यायें अनेक हैं अतः द्रव्य कथंचित एक है और कथंचित् द्रव्य अनेक हैं। गुणों का समूह द्रव्य सत है– सदैव रहता है अतः द्रव्य सत् है। और पर्यायें नष्ट हो जाती हैं अतः द्रव्य कथंचित् असत् भी है। इसी प्रकार गुणों का पिंड रूप द्रव्य सदैव वही है अर्थात् जैसा का का तैसा है और पर्यायों की दृष्टि से वह द्रव्य बदल जाता है अर्थात् वह द्रव्य दूसरे रूप में परिणत हो जाता है तव वह द्रव्य वही नहीं रहता है दूसरा कहलाता है।

इस गहन दृष्टि भेद अथवा द्रव्य स्वरूप को समझ लेने से द्रव्य की यथार्थता का पूरा परिज्ञान हो जाता है इसी दृष्टि भेद को ध्यान में रखकर द्रव्य का दूसरा लक्षण–सद्द्रव्यलक्षणम् तथा उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तंसत् यह कहा गया है। अर्थात् गुणों का पिंड द्रव्य सदैव सत्रूप रहता है किन्तु उसमें नवीन नवीन पर्यायें उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती है। इसलिये द्रव्य असत् अथवा अनित्य है। इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि "गुण पर्ययवद्द्रव्यम्" यह सूत्र और सद्द्रव्य लक्षणम् उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तंसत् इन तीनों सूत्रों का एक ही आशय सिद्ध हो जाता है अर्थात् द्रव्य कथंचित् नित्य कथंचित् अनित्य कथंचित् एक कथंचित् अनेक सिद्ध हो जाना है।

दृष्टान्त से समझ लोजिये

ज्ञान दर्शन गुण लक्षण वाला जीव है। वह जीव किसी भी गति में चला जाय परन्तु ज्ञान दर्शन वाला नित्य रहता है। जैसे एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव मनुष्य है वह मरकर देव हो गया। वह देव बनकर तिर्यंच वन गया। वह तिर्यंच मरकर नारकी होगया। एक ही जीव चारों गतियों में अनन्तवार भ्रमण करता रहा परन्तु जीव द्रव्य तो वही एक है। देव मनुष्य आदि पर्यायें तो उसने बदली किंतु जीव द्रव्य तो सभी पर्यायों में वही है इसलिए यह स्पष्ट सप्रमाण सिद्ध हो जाता है कि द्रव्य सदैव नित्य रहता है। वह द्रव्य अनादि काल से अनन्त काल तक किसी भी पर्याय में रहे किन्तु वह सदैव रहता है अतः द्रव्य नित्य है।

जव यह बिचार किया जाता है कि जोव द्रव्य जो देव पर्याय में है वह वैक्रियक शरीर वाला है उसका ज्ञान सुख सामर्थ्य विभूति ऐश्वर्य महान् है। वही जीव देव पर्याय से निकल कर जब मनुष्य हो जाता है तब उसका ज्ञान सुख सामर्थ्य विभूति वहुत ही परिमित रह जाती है। वही जीव तिर्यंच हो जाता है तो वह सर्वथा पराधीन दुःखी बन जाता हैं वही जीव नरक में जाने पर घोर दुःखों का पात्र बन जाता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि देव मनुष्य तिर्यंच नारकी सभी भिन्न भिन्न हैं। इसलिए पर्याय दृष्टि से जीव द्रव्य अनित्य है।

इसी प्रकार पुद्गल द्रव्य भी कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है। एक ही परमाणू (पुद्गल) कभी पृथ्वी, कभी जल, कभी अग्नि कभी वायु कभी वनस्पति में नाना प्रकार का रंग रूप, स्पर्श. रस गन्ध आदि बदलता रहता है इसलिए पुद्गल अनित्य हैं किन्तु किसी भी पर्याय में बदलने पर भी परमाणु नष्ट कभी नहीं होता है। इसलिये वह परमाणु पुद्गल नित्य है। मिट्टी खाद के रूप में बीज पानी के सयोग से वनस्पति बन जाती है। वही वनस्पति आग में जलकर अग्नि बन जाती है अग्नि राख बनकर पृथ्वी बन जाती है। इसलिए पुद्गल द्रव्य नाना पर्यायें बदलता है अतः उसे पर्याय की दृष्टि से अनित्य ही कहा जाता है। परन्तु बार २ बदलने पर भी पुद्गल परमाणु नष्ट कभी नहीं होता है अतः वह द्रव्य दृष्टि से नित्य ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शंकराचार्य समझ नहीं पाये

आज से सैकड़ों वर्ष पहिले अन्य दर्शनों में शंकराचार्य एक बहुत विद्वान् मठाधीश हो गए हैं। उन्होंने जैन धर्म का खण्डन करते हुए यह लिखा है कि जैन दर्शन का माना हुआ स्याद्वाद सर्वथा बाधित और मिथ्या है। क्योंकि एक ही वस्तु में नित्य धर्म और अनित्य धर्म दो विरोधी धर्म नहीं रह सकते हैं। अतः स्याद्वाद कपोल कल्पित मत है। उन्होंने लिखा है "नैकस्मिन्न संभवात्" अर्थात् एक वस्तु में दो विरोधी धर्मों का रहना असंभव है।

उनके कथन से विदित होता है कि वे जैन धर्म द्वारा प्रतिपादित द्रव्य के स्वरूप से सर्वथा अनभिज्ञ थे। शंकराचार्य तो कितने विद्वान थे उनसे वढ़कर महा विद्वान इन्द्रभूति थे, वे भी निमित्त पाकर सम्यज्ञानी बनकर स्याद्वाद के रहस्य को समझ सके और चार ज्ञानधारी गणधर वन गये।

स्याद्वाद कभी उसी वस्तु को नित्य और अनित्य नहीं कहता है किंतु वह सुमेरु पर्वत के समान सर्वथा एक रूप में ही वस्तु को कहता है। परन्तु द्रव्य के स्वरूप को समझने की आवश्यकता है। द्रव्य, गुण पर्याय रूप है। अतः द्रव्य का लक्ष्य रखने पर तो यही कहा जाता है कि द्रव्य नित्य ही हैं और पर्यायकालक्ष्य रखने पर यही कहा जाता है कि द्रव्य अनित्य ही है। अपने अपने दृष्टिकोण से ही "शब्द का प्रयोग करना सर्वथा सत्य है! किन्तु द्रव्य या पर्याय दोनों का समन्वय रूप सामान्य द्रव्य स्वरूप का लक्ष्य रखकर यही कहा जाता है कि द्रव्य कथंचित नित्य भी है कथंचित अनित्य भी है। यहां पर "भी" शब्द का प्रयोग ठीक सत्य है।

स्याद्वाद का लक्षण इस प्रकार है–

अनेक धर्मात्मै कैकस्मिनन् वस्तुनि अविरोधेन विधिप्रति षेध विवक्षा। स्याद्वाद लक्षणम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् प्रत्येक द्रव्य अनन्त धर्म स्वरूप है। उसमें अनेक धर्म भाव रूप हैं और अनेक धर्म अभाव रूप हैं। भाव धर्म अनुजीवी कहे जाते हैं अभाव धर्म प्रतिजीवी कहे जाते हैं। यहां पर यह शंका हो सकती है कि अभाव रूप धर्म कैसे ? जिनकी सत्ता नहीं है वे धर्म क्यों कहे जांय ? इसका समाधान यह है कि यदि अभाव रूप धर्म नहीं माना जाय तो किसी भी वस्तु का निर्णय करना अशक्य हो जायगा। जैसे मनुष्य को कोई हाथी बतावे या घोड़ा बतावे या खम्मा बताये तो उत्तर में कहा जायगा कि यह मनुष्य है यह हाथी या घोड़ा या खम्मा नहीं है। क्योंकि इसमें मनुष्य के गुण धर्म हैं। हाथी या घोड़ा मा खम्मा के गुण धर्म इसमें नहीं हैं इसलिए इस मनुष्य में हाथी घोड़ा खम्मा आदि सभी का अभाव है। एक वस्तु में दूसरी सभी वस्तुओं का अभाव मानना अनिवार्य है अन्यथा एक वस्तु को दूसरी वस्तु बताने से कैसे रोका जायगा। अतः जैसे एक वस्तु में अनन्त भावात्मक अनन्त गुणों की सत्ता (सद्भाव) है उसी प्रकार उसमें अनन्त वस्तुओं का अभाव धर्म भी है। इस कथन से स्याद्वाद का यह स्वरूप सिद्ध हो जाता है कि वस्तु अपने स्वरूप से है और पर स्वरूप से नहीं है। यदि पर स्वरूप से भी वस्तु मानी जाय तो एक वस्तु अनेक रूप बन जायगी। मनुष्य अपने मनुष्य स्वरूप से है किन्तु हाथी घोड़ा आदि स्वरूप से नहीं हैं तभी उसे मनुष्य ही कहा जाता है हाथी घोड़ा नहीं कहा जाता है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि एक ही वस्तु में अस्तित्व और नास्तित्व दोनों विरोधी धर्म एक ही समय में रहते हैं। किन्तु भेद इतना समझ लेना चाहिये कि अस्तित्व धर्म अपने स्वरूप की अपेक्षा से रहता है। और नास्तित्व धर्म पर पदार्थ की अपेक्षा से रहता है इसलिये कोई विरोध नहीं आता है। यदि जिस अपेक्षा से अस्तित्व है उसी अपेक्षा से नास्तित्व भी माना जाय तो परस्पर विरोधी धर्म एक वस्तु में सिद्ध नहीं हो सकते हैं इस नय विवक्षा को अथवा दृष्टि भेद को शंकराचार्य जैसे विद्वान् समझने में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असमर्थ रहे। जैन धर्म का स्याद्वाद अकाट्य है उसका खण्डन प्रत्यक्ष अनुभव आगम हेतु युक्ति किसी से नहीं हो सकता है। वस्तु स्वरूप का वही एक मात्र स्याद्वाद ही साधक है। बिना स्याद्वाद के वस्तु स्वरूप सिद्ध नहीं हो सकता है। द्रव्य गुण पर्याय एवं उत्पाद व्यय ध्रौव्य ही वस्तु स्वरूप है। वह द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नयों से सिद्ध होता है उन्हीं दोनों नयों का द्योतक स्याद्वाद है।

मिथ्यामतों के समूह को अनेकांत कहना सर्वथा मिथ्या है

सभी मिथ्या मतों का समूह ही अनेकाँत या स्याद्वाद है ऐसा कोई विद्वान् कहते हैं, उनका ऐसा कहना या समझना सवथा मिथ्या एवं सर्वथा वाधित है। यदि मिथ्या मतों का समूह ही अनेकाँत-स्याद्वाद है तो जैन धर्म का वस्तु स्वरूप का प्रतिपादक स्याद्वाद भी मिथ्या ठहरता है। क्योंकि चोरों के समूह को चोर ही कहा जायगा, चोरों के समूह को ईमानदार शाह कहना प्रत्यक्ष वाधित है। दौनों परस्पर विरोधी हैं जो चोर हैं वह शाह नहीं है। जो प्रामाणिक शाह है उसे चोर नहीं कहा जा सकता है।

सोचिये—कोई झूंठा आदमी एक असत्य बात को सत्य बताता है तो उसका वैसा कहना झूंठ ही माना जाता है यदि सौ झूंठे आदमी मिलकर एक असत्य बात को सत्य बतावें तो वह उनका कहना झूंठा नहीं मान कर सत्य मान लिया जायगा क्या? कभी नहीं। असत्य बात तो सदैव असत्य ही मानी जायगी। क्योंकि वह वस्तु स्वरूप से विपरीत है। कोई विद्वान् मिथ्या मतों के समूह को अनेकांत अथवा वस्तु स्वरूप कहें तो यहनितान्त अनभिज्ञता है।

मिथ्या मत अनेकाँत क्यों नहीं हो सकते ?

मिथ्या मतों का समूह भी मिथ्या ही कहा जायगा। मिथ्या मतों का समूह अनेकांत क्यों नहीं हो सकता इसकी सिद्धि इस प्रकारहै—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सांख्य मत एक प्राचीन मत है वह मूल में दो पदार्थ मानता है एक जीव (पुरुष) और प्रकृति (कर्म) उसकी यह मान्यता है कि जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध अवश्य है परन्तु जीव पर कर्म का किसी प्रकार का कोई असर नहीं है वह सदैव शुद्ध रहता है। जैसे जल में रहता हुआ भी कमल जल से भिन्न ही रहता है। जब प्रकृति का सम्बन्ध हट जाता है तब जीव की मुक्ति (मोक्ष) हो जाती है।

क्या जैन धर्म कर्मों से सम्बन्धित संसारी जीव को सर्वथा शुद्ध मानता है? कभी नहीं किन्तु राग द्वेषादि विकारी पर्यायें वैभाविक भाव और नरक स्वर्ग मनुष्य देव ये गतियां सब कर्मोदय से होती हैं ऐसी दशा में साँख्य मत का समावेश जैन धर्म में किसी प्रकार नहीं हो सकता है दूसरी बात यह भी है कि सांख्य मत पदार्थ को सर्वथा नित्य ही मानता है। जैन धर्म द्रव्य दृष्टि से ही नित्य मानता है पर्याय दृष्टि से पदार्थ को अनित्य ही मानता है ऐसी दशा में सांख्य मत का समावेश अनेकांत में कैसे हो सकता है? कभी नहीं हो सकता है। क्योंकि सांख्य मत में नय का तो कोई भेद ही नहीं है वह तो पदार्थ को सर्वथा नित्य ही मानता है। फिर जैन धर्म से सांख्य मत का समन्वय कर के अनेकांत बताना सर्वथा विपरीत है।

एक बात यह भी है कि साँख्य मत में संसार और मोक्ष व्यवस्था भी नहीं बन सकती है क्योंकि जीव शुद्ध एवं नित्य ही है तब परिवर्तन हुऐ बिना संसार का अभाव और मोक्ष कैसे सिद्ध होगी। यहां पर हम लंबा विचार नहीं करते हैं केवल प्रकरण वस संक्षेप में उस मत का मूल तत्व का दिग्दर्शन करा रहे हैं।

बौद्ध मत की मान्यता

बौद्धमत जीव और अन्य सभी पदार्थों को सर्वथा अनित्य ही मानता है। यह मान्यता भी जैन सिद्धान्त-अनेकांत से सर्वथा विपरीत है। जैन धर्म सभी द्रव्यों को नित्य मानता है। बौद्धमत में द्रव्यदृष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोई नहीं है। समूचे पदार्थ को अनित्य मानने से उसके मत में संसार मोक्ष पुण्य पाप आदि कुछ भी नहीं वन सकता है। जब जीव अनित्य ही है तब पुण्य या पाप करने पर उसका फल कौन भोगेगा जीव तो नष्ट हो जाता है। संसार भ्रमण या मोक्ष किसको होगी। ऐसी अवस्था में जैन धर्म के अनेकांत में उसका ऐकी भाव कैसे हो सकता है। बौद्ध यदि नयरूप से अंशरूप में अनित्यन्ता मानता होता तब तो अनेकान्त में समन्वय की बात किसी प्रकार घटित हो सकती है।

वेदान्तवाद

वेदान्तमत सिवा एक परब्रह्म के और कोई वस्तु नहीं मानता है। उसका सिद्धान्त है।

एक मेवा द्वितीयं ब्रह्म नेहनानास्ति कश्चन
आरामं तस्य पश्यन्ति न तत्पश्यति कश्चन

अर्थात् एक ब्रह्म ही जगत है और कोई वस्तु नहीं है। उसको कोई नहीं देख सकता है यह जगत् उसकी ही छाया मात्र है अथवा जगत् सब भूठ है। इस मत की सिद्धि ही असंभव है। ब्रह्म स्वयं उपस्थित होकर अपना रूप बता नहीं सकता दूसरे जो उस मत के मानने वाले वेदान्त वादी हैं वे स्वयं कुछ नहीं है सब भूठे कल्पना रूप हैं तब उनके द्वारा ब्रह्म की सिद्धि किसी प्रकार नहीं हो सकती है।

फिर नाना प्रकार के जीव, और अन्य पदार्थ जो प्रत्यक्ष हैं उनका लोप करना और कहना कि ये सब कुछ नहीं है ब्रह्म की माया है ऐसी बात किस आधार पर कौन मान सकता है। इस वेदान्तवाद को मिथ्या समझते हुए भी उसको अनेकांत में सामिल कर सत्य बताना सर्वथा विरुद्ध है।

नैयायिक वैशेषिक मत की मान्यता

नैयायिक वैशेषिक मत वाले पदार्थ का स्वरूप जैसा बताते हैं। वैसा सिद्ध नहीं हो सकता है उनका आगम है–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवायाभावास्प्त पदार्था:
(गौतम सूत्र)

अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष समवाय, अभाव ये सात पदार्थ हैं ऐसी मान्यता अथवा सिद्धान्त नैयायिक वैशेषिक मत का है।

परंतु ऐसी उनकी मान्यता प्रत्यक्ष अनुमान, अनुभव आदि से वाधित है।

इस मान्यता का खंडन यदि संक्षेप में भी किया जाय तो भी दश पत्र लिखने पड़ेंगे। उस जटिल विवाद को छोड़कर हम यहां पर संकेत मात्र से उन सात पदार्थों की मान्यता को असिद्ध ठहरा देते हैं।

देखिये–जीव द्रव्य है उसका स्वरूप ज्ञान दर्शन गुण रूप है। जीव में जो हलन चलन क्रिया होती है वह क्रिया (कर्म) जीव से भिन्न नहीं है। जीव को छोड़कर उसका केवल हलन चलन स्वतन्त्र कहां कैसे संभव है ? नहीं है।

जीव का अस्तित्व (सामान्य) जीव से भिन्न कोई पदार्थ नहीं है। यदि जीव का अस्तित्व जीव से जुदा हो तो जीव स्वयं अभाव रूप ठहरेगा अभाव में अस्तित्व का संबंध हो नहीं सकता है यदि अभाव में अस्तित्व (भाव) का संबंध होता हो तो गधे के साथ सींगों का संबंध जुड़ जाना चाहिये। असंभव कभी संभव नहीं हो सकता है। इसी प्रकार जीव में जो वालकपन, युवापन, वृद्धापन आदि पर्यायें क्रम से होती हैं वे उस जीव से जुदी हों और जीव उनसे (भिन्न) अलग हो ऐसा मानना तर्क संगत नहीं है। सर्वथा मिथ्या है।

जीव को जुदा(अलग)मानना और उसमें रहने वाले ज्ञान दर्शन आदि गुणों को जीव से अलग (भिन्न) मानना सर्वथा विपरीत है और जीव और उसके ज्ञान दर्शन आदि गुणों का जीव के साथ समवाय संबंध जोड़ना बन नहीं सकता है। क्योंकि समवाय संबंध को नैयायिक नित्य मानते हैं जव वह नित्य है तो जीव के साथ गुणों का संबंध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सदैव अनादि से अनंतकाल तक नित्य ही रहेगा ऐसी अवस्था में जीव भिन्न और उसके ज्ञान दर्शन भिन्न तथा उन दौनों का समवाय संबंध कहना ही स्व वचन वाधित है क्योंकि दौनों का संवंध नित्य ही रहेगा जैन धम उसे तादात्म्य संवंध कहता है।

इसी प्रकार अभाव भी कोई पदार्थ सिद्ध नहीं होता है। अभाव मानना और उसे पदार्थ कहना दौनों ही विरोधी हैं। जो शून्य रूप अवस्तु है वह पदार्थ कैसा ?

जैन सिद्धान्त ने अभाव को पर्यायान्तर माना है अर्थात् एक पर्याय का नष्ट होना नई पर्याय है जैसे मिट्टी का घड़ा फूटने पर घड़े का अभाव माना जाता है वह घड़े का अभाव उसके दो टुकड़े रूप ही है। अग्नि के बुझ जाने पर अग्नि का अभाव माना जाता है। वह अग्नि का अभाव राख (भस्म) के सिवा और क्या है ? कुछ नहीं है। इसलिये नैयायिक वैशेषिकों का माना हुआ अभाव पदार्थ भी सिद्ध नहीं होता है।

इस प्रकार नैयायिकों के माने हुए नव पदार्थ– द्रव्य गुण कर्म सामान्य विशेष समवाय और अभाव ये सात पदार्थ वास्तव में नव सिद्ध नहीं होते हैं किन्तु जैन सिद्धान्त के अनुसार ये नौ पदार्थ एक द्रव्य के ही स्वरूप हैं। अर्थात् जिन को नौ पदार्थ जुदे जुदे माना गया है वे एक द्रव्य रूप हैं। गुण कर्म (क्रिया) सद्भाव, पर्याय तादात्म्य सम्बन्ध और एक पर्याय से पर्यांतांतर ये सब मिलकर अभेद विवक्षा से एक पदार्थ रूप हैं। भेद विवक्षा से नौ नाम भले ही कहे जांय किंतु एक अखण्ड पिंड रूप एक द्रव्य ही है।

और भी अनेक प्राचीन दर्शन (मत) हैं जैसे जैमिनी, भट्ट, प्राभाकर आदि कोई शब्द मय जगत मानता है कोई कुछ मानता है।

क्या ईश्वर सृष्टिकर्ता है ?

वहुभाग दर्शन एक ही ईश्वर मानते हैं। और उसे सृष्टि का रचने वाला और नष्ट करने वाला मानते हैं। उसी ईश्वर पर अपने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भले बुरे कामों का भार डाल देते हैं। बुरे काम स्वयं करते हैं परन्तु कहते हैं कि ईश्वर की ऐसी ही मर्जी (इच्छा) थी साथ ही यह भी मानते हैं कि संसार के सभी जीव जैसा भी जो करते हैं उनके कर्मों के (कर्तव्यों) अनुसार ईश्वर उन्हें फल देता है। उनका सिद्धांत है–

अज्ञो जन्तु रनीशोय: लात्मन: सुखदु:खयो:
ईश्वर प्रेरितो गच्छेस्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा

अर्थात् यह जगत का प्राणी अज्ञानी है और असमर्थ है अपना सुख दुख स्वयं नहीं भोग सकता है। अत: ईश्वर उसे स्वर्ग या नरक भेज देता है। परन्तु भगवान राम के परम भक्त रामायण के रचयिता तुलसीदास जी ने लिखा है कि– कर्म प्रधान विश्व करि राखा। जो जैसा करहि वैसा फल चाखा। अर्थात अपनी अपनी करनी के अनुसार जीव स्वयं फल भोगता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्राय: सभी प्राचीन दर्शन इस प्रकार के ईश्वर वाद में विवेक रहित अन्ध विश्वासी वने हुए हैं। परन्तु यह ईश्वर वाद कोरी कल्पना और तर्क हीन विचार शून्य एवं वाधक है हेतुवाद पूर्वक विचार करने पर यह ईश्वर वाद बालू पर दीवार की तरह टिक नहीं सकता है। प्रत्युत: ईश्वर ही संसारी सिद्ध हो जाता है। इस विषय पर ही अधिक लिखना अनावश्यक है दो शब्दो में हम इतना खुलासा कर देना पर्याप्त समझते हैं कि ईश्वर को जगत का कर्ता हर्ता मानने वाले, ईश्वर को सर्वज्ञ और राग द्वेष रहित (वीतराग) मानते हैं। जब ईश्वर सर्वज्ञ है और वीतराग है और सर्व शक्तिमान है वही जगत को बनाता है तव उसने चोर, डाकू, वैश्या, कसाई, शिकारी आदि क्यों बनाये? वह सर्वज्ञ होने से सबों को जानता है। और शक्तिमान् होने से सबों को बुरे कामों से रोक भी सकता है। यह तो बुद्धिमत्ता या विवेक नहीं है कि बुरे एवं हिंसा आदि पाप कार्य करने वालों को पूर्ण रूप से जानते हुए और पूर्ण सामर्थ्य होने से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाप करने वालों को रोकना नहीं पीछे उन्हें नरक आदि दुर्गतियों में भेजना यह तो विचारशीलों की दृष्टि में सर्वथा अनुचित है। जब ईश्वर सर्वज्ञ और सर्व शक्ति वाला है तो दुर्भिक्ष (अकाल) को क्यों होने देता है। वह समय पर वर्षा करा सकता है। कहीं भी अग्नि से या बाढ़ों से मनुष्य पशुओं का अकाल मरण नहीं होने देंवे। जिस राजा के राज्य में चोरी हिंसा मारकाट आदि अनर्थ होते रहें तो वह राजा और उसका राज्य अन्यायी एवं कर्तव्य विमूढ़ माना जाता है फिर ईश्वर तो सब कुछ करने में समर्थ है फिर जगत को बनाना पीछे नष्ट करना फिर नये रूप में बनाना ऐसा वह क्यों करता है यह तो वालकों जैसी वाते हैं।

ईश्वर संसारी ठहरता है

ईश्वर जगत् को बना भी कैसे सकता है क्योंकि वह अशरीरी है अमूर्तिक है। उसके इच्छा भी नहीं है और जगत् को वनाने के साधन भी नहीं हैं। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि कुम्हार घड़ा तभी बनाता है जव कि उसके घड़ा बनाने की इच्छा होती है और उसके पास मिट्टी, जल, चाक, डण्डा आदि साधन होते हैं साथ ही हाथों को घुमाता है अतः उसके शरीर भी है। इसी प्रकार जगत् के सभी कार्य इच्छा, साधन और शरीर इन तीनों कारणों से ही बनाये जा सकते है। कारणों के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता है यह नियम है। ईश्वर के पास शरीर, इच्छा, साधन आदि कुछ भी नहीं हैं फिर जगत् कैसे वना सकता है?

अन्तिम बात यह है कि ईश्वर के इच्छा मानी जाय तो इच्छा लोभ की पर्याय है चाहना है ईश्वर तो बीतराग है। उसके इच्छा मानने से बीतरागता नहीं हो सकती है। अतः ईश्वर का स्वरूप कर्म रहित शरीर, रहित इच्छादि विकारों से रहित परम वीतराग रूप हैं वह सर्वज्ञ है इसलिये अपनी पूर्ण शक्ति से जगत् की सभी चराचर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तुओं को देखना और जानता है। यदि ईश्वर को सृष्टिकर्ता हर्ता माना जायगा तो ईश्वर, ईश्वर नहीं रहेगा वह संसारी ठहरेगा। जैन धर्म ईश्वर को परम शुद्ध परमात्मा मानता है। सर्वज्ञ वीतराग एवं आत्मीय स्वरूप में स्थित मानता है। जगत् का दृष्टा ज्ञाता मानता है ऐसा ईश्वर एक मात्र नहीं है किन्तु जिन आत्माओं ने अपने तपश्चरण तथा वीतराग भावों से रागद्वेषादि विकारों को सर्वथा नष्ट कर दिया है। कर्मों को तथा शरीर को सर्वथा आत्मा से हटा दिया है वे सभी आत्माएं परमात्मा ईश्वर बन गई है। जैन धर्म प्रत्येक आत्माओं में ईश्वर पद पाने की योग्यता मानता है। इसलिये ईश्वर अनन्त हो चुके हैं और आगे भी होते रहेंगे। यह जगत् स्वयं अनादि है और अनंत काल सदैव बना रहेगा। इसका बनाने वाला बिगाड़ने वाला कोई नहीं है। संसारी आत्माएं अपने भले बुरे कार्यों से स्वयं अपने-अपने कर्मों का अच्छा बुरा फल भोगते हैं। और जो संसार और भोगों से विरक्त हो जाते हैं वे कर्मों का नाश कर ईश्वर बन जाते हैं।

वस्तु स्वरूप बताना दोष नहीं है

जैन सिद्धान्त किसी अन्य दर्शन की निंदा या तिरस्कार करना नहीं वताता है। हां वस्तु स्वरूप में हेतु पूर्वक तर्क की कसौटी पर निष्कषाय एवं निष्पक्ष भाव से विवेक पूर्ण-यथार्थता का विचार करना प्रत्येक प्रज्ञाशील मानव का कर्तव्य है। पूर्वाचार्यों ने भी शुद्ध वीतराग मार्ग का उपदेश दिया है।

प्रकरण गत बात यह है कि जो कोई विद्वान् यह घोषणा करते हैं कि सभी मिथ्या मतों का समूह ही जैन सिद्धान्त अथवा अनेकांत है वे किस आधार पर ऐसी सर्वथा विपरीत वात कहते हैं ?

किसी मत के किसी स्वरूप की तुलना अथवा समानता जैन धर्म से नहीं हो सकती है। नित्य अनित्य आदि धर्मों से भी नहीं हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकती है। क्योंकि अन्य दर्शन वस्तु में एक नित्य धर्म और एक अनित्य धर्म नहीं मानते हैं किंतु कोई समूची वस्तु को नित्य ही मानते हैं और कोई समूची वस्तु को अनित्य ही मानते हैं।

प्रमाण और नय ऐसे भेद भी वे नहीं मानते हैं जैन धर्म तो यहां तक कहता है कि-निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तुतेथंकृत् अर्थात् नय भी निरपेक्ष मिथ्या है। सापेक्ष नय ही समीचीन है। अर्थात् जो केवल द्रव्य को ही मानकर वस्तु को नित्य कहता है पर्याय की दृष्टि को सर्वथा छोड़ देता है वह मिथ्या ज्ञानी है। और द्रव्य तत्व की नित्यता का लक्ष्य सर्वथा छोड़ कर केवल पर्याय दृष्टि रख कर पदार्थ को सर्वथा अनित्य कहता है वह भी मिथ्या ज्ञानी है।

इसी प्रकार जो व्यवहार नय को छोड़कर केवल निश्चय नय को ही यथार्थ मानता है वह मिथ्यादृष्टि है और जो निश्चय नय को छोड़कर केवल व्यवहार नय को ही यथार्थ मानता है वह भी मिथ्यादृष्टि है।

इस समस्त कथन से और अन्य मतों के अति संक्षिप्त निदर्शन से यह बात भलीभांति सिद्ध होजाती है कि जैनमत अथवा जैनमत का माना हुआ वस्तु धर्म-अनेकांत अन्य मिथ्यामतों का समूह नहीं है। उन सबों से भिन्न सर्वज्ञ द्वारा प्रकाशित यथार्थ धर्म है।

जैन धर्म का प्रमाण स्वरूप और समीचीन नय चक्र ही अनेकांत है। वही अनेकांत समस्त विरोधों को दूर कर परस्पर नय सापेक्ष विवक्षा से वस्तु तत्व का यथार्थ दर्शन कराने वाला सम्यज्ञान रूपी निर्मल नेत्र हैं।

आचार्य मुकुट अमृतचंद्र सूरि महत्वपूर्ण शब्दों में अनेकांत का दिग्दर्शन कराते हुए समस्त मिथ्या मतों के खंडन में लिखते हैं—

अत्यन्त निशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नयचक्रम्
खंडयति धार्यमाणं मूर्धानं झटिति दुर्विग्धानाम्
(पुरुषार्थसिद्धयुपाय)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान का बताया हुआ नय चक्र तीक्ष्ण धार वाला अकाट्य एवं अमोघ शस्त्र है सम्यग्ज्ञानी पुरुष ही उसे प्राप्त कर सकते हैं। वह नय चक्र रूपी सर्व विजयी असाधारण महान् शस्त्र समस्त मिथ्या मतों का तत्काल खंडन कर देता है।

ऐसा तो आचार्य अमृतचंद्र सूरि कहते हैं परंतु कोई एक विद्वान् मिथ्यामतों के समूह को अनेकान्त कहते हैं। उनका ऐसा कहना जैन सिद्धान्त प्रणीत अनेकांत से सर्वथा विपरीत है।

श्री सिद्धसेन दिवाकर के सन्मति तर्क की नीचे लिखी गाथा का अर्थ नहीं समझकर समस्त मिथ्यामतों के समूह को जैन धर्म का अनेकांत कहा जाता है गाथा यह है—

भद्दं मिच्छगदंसण समूहमइयस्स अमयलारस्स
जिण वयणस्स भगवओसंविग्ग सुहाइगम्मस्स
(आचार्य सिद्धसेन)

इस गाथा में— "महियस्स" यह प्राकृत शब्द पड़ा हुआ है उसका संस्कृत शब्द 'मथितस्य' बनता है। यह जिन वचन का विशेषण है, इसका स्पष्ट एवं निर्विवाद अर्थ यही होता है कि जिनेंद्र भगवान के वचनों से सभी मिथ्यामतों का समूह मथित हो जाता है। अर्थात् सभी मिथ्यामतों का तीर्थंकर भगवान के वचनों से मंथन हो जाता है विश्व लोचन कोष में मंथन का अर्थ खंड खंड होजाना लिखा है। जैसे दही का मंथन-दही के स्कन्ध का खंड खंड होजाना है। भगवान के वचन ही अमृतमय हैं। वस यही आशय मथित शब्द का कोष से सिद्ध होता है। मिथ्यामतों का समूह ही जैन अनेकान्त है ऐसा विपरीत अर्थ तो किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं होता है।

आज तो अपनी अपनी मान्यतावश भिन्न भिन्न दर्शनों (मतों) की शाखा प्रशाखा अनेक होगई हैं। ऊपर तो हमने प्राचीन प्रसिद्ध दर्शनों का थोड़ासा दिग्दर्शन किया है उनका किसी प्रकार का कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक अंश भी जैन दर्शन से नहीं मिलता है। आकाश पाताल जैसा अंतर है। अतः मिथ्या समूह स्तु मिथैव। मिथ्या समूहः समीचीन इति कदापि न भवितु महंति अर्थात् मिथ्या समूह तो मिथ्या है वह समीचीन (यथार्थ) कभी सिद्ध नहीं हो सकता है। यही तथ्य सत्य है। आचार्य वचन वीतराग है पढ़िये।

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपलादिषु
युक्ति मद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः

अर्थात् आचार्य कहते हैं कि न तो भगवान महावीर स्वामी के वचनों में हमारा कोई पक्षपात है और न सांख्य वौद्ध नैयायिक मीमांसक आदि के वचनों में कोई द्वेष है किन्तु जिनके वचन युक्ति युक्त हैं, सद्धेतु, अनुभव प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से अकाट्य एवं अवाधित सिद्ध हैं उन्हीं को ग्रहण करना चाहिये।

चारित्र और व्यवहारी कार्यों में स्याद्वाद लगाना मिथ्या है

स्याद्वाद का उपयोग जैन समाज के अनेक लोग चारित्र में भी करते हैं और व्यवहारी कार्यों में भी उसका उपयोग करते है जैसे–दिन में भोजन करना अच्छा है परन्तु कार्य वश कभी रात्रि में भी भोजन करना ठीक है। प्रति दिन भगवान के दर्शन करना ठीक है कभी नहीं तो भी ठीक है क्योंकि जैन धम स्याद्वाद रूप है। इस प्रकार चारित्र में भी स्याद्वाद को लगाना न तो स्याद्वाद का स्वरूप है और न वह धर्म ही है। चारित्र धार्मिक क्रियाऐं शास्त्राधार से एक रूप में ही नियत हैं प्रति दिन देव दर्शन, देव पूजन करने का श्रावक के लिये विधान है जो इन धार्मिक क्रियाओं का पालन नियमित रूप से नहीं करते हैं वे नाम मात्र के जैन हैं। वास्तव में जैन नहीं हैं। स्याद्वाद चारित्र में नहीं घटित होता है। क्योंकि दो विरोधी धर्म (अस्ति नास्ति आदि) वस्तु के स्वरूप में ही घट सकते हैं दौनों विरोधी धर्म एक समय में साथ रहते हैं। चारित्र में वे कैसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घटेंगे दिन में भोजन करना रात में भोजन करना यह क्रिया है वस्तु धर्म नहीं है और दौनों का भिन्न-भिन्न समय है। स्याद्वाद के अनुसार दौनों का एक समय होना अनिवार्य है। जो आदमी पूर्व को जारहा है वह पूर्व में जाने वाला ही प्रत्यक्ष सिद्ध है वह उसी क्षण में पश्चिम में जाने वाला नहीं कहा जा सकता है। दौनों दिशाओं में एक समय में गमन क्रिया असम्भव है अतः वह आदमी कथचित् पूर्व दिशा में कथचित् पश्चिम दिशा में जाने वाला कभी नहीं कहा जा सकता है। अतः स्याद्वाद केवल वस्तु के एक समय में विद्यमान परस्पर विरोधी धर्मों में ही द्रव्य पर्याय की भेद विवक्षा से घटित होता है।

प्रध्वस्त घाति कर्माण: केवल ज्ञान गोचरा:
कुर्वन्तु जगतः शान्तिं वृष भाद्या जिनेश्वरा:

अनादि काल से अनन्त चौवीस तीर्थंकर और अनंत मुनिगण मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं वर्तमान युग के चौबीस तीर्थंकरों में भगवान वृषभनाथ (आदिनाथ) पहले और भगवान महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर हैं। इन चौबीस तीर्थंकरों के बीच-बीच में करोड़ों मुनिगण मोक्ष गये हैं। और आगे भविष्यत् काल में भी चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते रहेंगे। इसलिये जैन धर्म अनादि निधन है। सदैव से है सदैव रहेगा।

ये वर्तमान चौबीस तीर्थंकर और करोड़ों मुनिगण चारों घातिया कर्मों को नष्ट कर बीतरागता और केवल ज्ञान (सर्वज्ञता) को प्राप्त कर चुके हैं वे जगत् के सभी प्राणियों को शांति प्रदान करें ? अर्थात् उन बीतराग सर्वज्ञ भगवानों के दर्शन स्मरण, जपन, स्तवन, स्वरूप, चिंतन आदि महान् पुण्य वर्धक शुभ भावों से सभी संसारी जीवों को शान्ति लाभ हो इसी सद्भावना के साथ हम इस आगम मार्ग प्रकाशक ग्रन्थ को समाप्त करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5202.

हमारी एवं प्रत्येक श्रावक की भावना

इस ग्रन्थ के अन्त में हम अपनी भावना प्रगट करते हुए जिनेन्द्र भगवान के चरणों में प्रति दिन जिन पूजन के अन्त में यह प्रार्थना करते हैं और यही प्रार्थना सभी जिनेन्द्र भक्त श्रावकों को करना आवश्यक है--

जिने भक्तिर्जिनेभक्तिर्जिनेभक्तिः सदास्तु मे
सम्यक्त्व मेव संसार वारणं मोक्ष कारणम्
श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्ति सदास्तु मे
सज्ज्ञानमेव संसार वारणं मोक्ष कारणम्
गुरौ भक्तिः गुरौ भक्तिः गुरौ भक्ति सदास्तु मे
चारित्रमेवं संसार वारणं मोक्ष कारणम्

अर्थः— जिनेन्द्र पूजन के अन्त में, मैं भगवान के चरणों में यह प्रार्थना करता हूं कि भगवन् ! जिनेन्द्र भगवान में मेरी भक्ति सदा बनी रहे। आपकी भक्ति से सम्यग्दर्शन मेरी आत्मा में प्रगट हो सकता है। और सम्यग्दर्शन ही संसार को नष्ट करने वाला मोक्ष दायक है।

इसी प्रकार हे भगवन ! मेरी जिनवाणी में भक्ति सदा बनी रहे जिससे मुझे सम्यज्ञान की प्राप्ति हो जाय, सम्यज्ञान ही संसार को नष्ट कर मोक्ष देने वाला है।

इसी प्रकार हे भगवन ! मेरी दिगम्वर जैन मुनियों में सदैव भक्ति बनी रहे। परमपूज्य मुनिराजों की भक्ति से सम्यक् चारित्र प्राप्त हो सकता हैं। सम्यक् चारित्र ही संसार को नष्ट कर मोक्ष देने वाला है।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्ग इति शुभम्

जैन दर्शनाचार्य-श्री मक्खनलाल शास्त्री तिलक
विरचित इस ग्रन्थ का स्याद्वाद वस्तु स्वरूप
का निरूपक करने वाला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बारहवां अध्याय समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीर प्रार्थना

रचयिता–विद्वत्तिलक न्यायालंकार श्री पं० मक्खनलाल जी शास्त्री

हे सर्वज्ञ वीर जिन देवा चरण शरण हम आते हैं।
ज्ञान अनंत गुणाकर तुमको चरणों शीश नवाते हैं ॥१॥
कथन तुम्हारा सबको प्यारा, कहीं विरोध नहीं पाता।
अनुभव बोध अधिक जिनके है, उन पुरुषों के मन भाता ॥२॥
दर्शन ज्ञान चरित्र स्वरूपी, मारग तुमने दिखलाया।
वही मार्ग हितकारी सबका, पूर्व ऋषीगण ने गाया ॥३॥
रत्नत्रय को भूल न जावें, इसीलिये उपनयन करें।
ब्रह्मचर्य को दृढ़तम पालें, सप्तव्यसन का त्याग करें ॥४॥
नीति मार्ग पर नित्य चलें हम, योग्याहार विहार करें।
पालें योग्याचार सदा हम, वर्णाचार विचार करें ॥५॥
धर्म मार्ग अरु वैध मार्ग से देशोद्धार विचार करें।
आर्ष बचन हम दृढ़तम पालें, सत्सिद्धांत प्रचार करें ॥६॥
श्री जिन धर्म बढ़े दिन दूनो, पंच आप्तनुति नित्य करें।
सत्संगति को पाकर स्वामिन्, कर्म कलंक समूल हरें ॥७॥
फलें भाव ये सभी हमारे यही निवेदन करते हैं।
'लाल' बाल मिल भाल बीर के चरणों में हम धरते हैं ॥८॥

नोट–यह वीर प्रार्थना छात्रों के संस्कारों को उद्बोधन करने वाली है। देव, शास्त्र, गुरु में अटल श्रद्धा पैदा करने वाली है, तथा नैतिक मार्ग का दिग्दर्शन कराने वाली है। इसलिये समस्त धार्मिक संस्थाओं में इस वीर प्रार्थना को छात्रों से बुलवाना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री ब्र. [illegible] श्राविकाश्रम
१३७, बुधवार पेठ, सोलापूर.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi